याग चयन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज
के
योगमुद्रा में प्रकथित वैदिक प्रवचनों का सङ्कलन

याग चयन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

के

योगमुद्रा में प्रकथित वैदिक प्रवचनों का सङ्कलन

॥ ओ३म् ॥

याग चयन

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

के

योगमुद्रा में प्रकथित वैदिक प्रवचनों का सङ्कलन

वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जीकृत)

२५१, दिल्ली गेट, नयी दिल्ली-११० ०२

दूरभाष : ३२८२०८८, ३२८५०००

प्रकाशक : वैदिक अनुसन्धान समिति (पञ्जीकृत)
२५१, दिल्ली गेट, नयी दिल्ली-११० ००२
दूरभाष : ३२८२०८८, ३२८५०००

प्रतियाँ : ११००

मूल्य : २५.00 रुपये

प्रथम संस्करण : फरवरी, २०००

शब्द संयोजक : सिटी कम्प्यूटर्स
गंगा विहार, दिल्ली-९४
दूरभाष : २१८८५२२

मुद्रक : नवप्रभात प्रिंटिंग प्रैस
बलबीर नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२
दूरभाष : २२८५७५३

प्राक्कथन

वेद, ऋषियों और यागों की पावन भूमि, आर्यावर्त में परम्परागतों से समय-समय पर दिव्यात्माओं का अवतरण होता रहा है। अवतरण प्रायः पूर्व संस्कारों से जुड़े विश्व-कल्याण के उद्देश्यों से बंधा होता है। ज्ञान और प्रयत्न के क्षेत्र में पूर्व-जन्म-संगृहीत ऋषि-संस्कारों के महान् आश्चर्य ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज (आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य, शृंगी ऋषि की आत्मा) के रूप में एक दिव्यात्मा, वेदज्ञान, दर्शन, वैदिक इतिहास, याग और योग के दिग्दर्शन के लिए अवतरित हुई। इन्होंने एक विलक्षण प्रक्रिया में, योगावस्थित मुद्रा में, अन्तरिक्षस्थ योगसिद्ध-आत्माओं को सम्बोधित करते हुए सहस्रों वैदिक प्रवचन किये। इनके प्रवचनों में मानव मात्र के कल्याण के लिये अनूठा साकल्य उपलब्ध है। अधिकांश प्रवचन अनेक प्रकाशित पुस्तकों के रूप में उपलब्ध हैं। इसी शृंखला में, 'याग चयन' विषय पर यह पोथी प्रस्तुत है।

इनके एक-एक प्रवचन में 'गागर में सागर भरण' की कल्पना चरितार्थ होती है और दिव्यामृतमयी ज्ञान-धारा निस्यन्द होती है, जिसमें अवगाहन कर जिज्ञासु, अविद्या-अंधकार, दुःख-दारिद्र्य, प्रमाद और अकर्मण्यता

आदि दोषों का निवारण कर उत्साह, सुख-समृद्धि, मानवीयता, 'ज्ञान-कर्म-उपासनाकाण्ड' और यौगिकवाद से युक्त होकर 'पुरुषार्थ चतुष्ट्य' को प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है। प्रस्तुत पोथी, 'याग चयन' तो उनके बारह प्रवचनों का संग्रह है, जिसमें मानव जीवन से जुड़े यागों की चयन प्रेरणा से प्ररित होकर साधक यज्ञ का और अग्नि का मान करते हुए अमृतमान बन सकता है।

साधना में भौतिक और आध्यात्मिक यागों की ऊर्ध्वगतियों से शरीररूपी यज्ञशाला को सिद्ध बनाते हुए उससे इस संसाररूपी यज्ञशाला का समन्वय करके अमृत-गतियों में रमण करने की प्रक्रिया का विषय इस पोथी में सङ्कलित प्रवचन रूपी मनकों का सूत्र बनकर प्रकट हुआ है। पोथी के प्रथम भाग में आध्यात्मिक 'प्रकाश' के द्वारा संसार में ही स्वर्ग की कामना करते हुये ब्रह्म की चरि में अमृती तत्वों की पहचान करने का संकेत है। ध्रुवा से ऊर्ध्वा में और ऊर्ध्वा से ध्रुवा में, एक-दूसरे में लय होते हुए प्रजापति के पात्रों (देवताओं) द्वारा ध्रुवा-कला का विशद अन्वेषण हुआ हैं। भौतिक याग की सतोगुणी ऊर्ध्वगतियों को वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध करते हुये हमारे पूर्वजों ने पिण्ड और ब्रह्माण्ड के समन्वय को किस प्रकार साकार किया था, यह विषय द्वितीय भाग में ओत-प्रोत हुआ है। द्वितीय भाग में ही भौतिक यागों के परिचय के साथ-साथ भौतिक-विज्ञान, योग-विद्या, इन्द्रिय-अनुशासन और वेद-मन्त्रों में प्रतिपादित 'ज्ञान-कर्म-उपासना' के क्षेत्र में

ऋषि-मुनियों के अनुसन्धान की आभा में गोमेध-याग को मापते हुये आत्म-सखा को प्राप्त करने हेतु 'अन्नों' को पान करने की प्रक्रिया का वर्णन हुआ है।

इस पोथी में वेद के ऋषि ने मानव को परमपिता परमात्मा के इस संसार रूपी कर्म-क्षेत्र में व्यवहार करने से पूर्व याग और योग द्वारा योग्य बनने के लिये तप के विषय पर दिव्य प्रकाश डाला है। **प्रवचनों में, वैदिक विचारों में पुनरावृत्ति को रूढ़ि न मानते हुए एक ही विषय को गो-मेधाविनी विविधता के द्वारा ऋषि-मुनियों के शब्दों में गूढ़ से गूढ़ विषय को सरल और सहज बनाकर प्रस्तुत करने में ऋषि ने 'इदं न मम' भाव को क्रियात्मक रूप में अङ्गीकार किया है।** संकलित प्रवचनों में महर्षि याज्ञवल्क्य, महर्षि अंगिरस, गार्गी, महर्षि वशिष्ठ, विश्वामित्र, महाराज प्रजापति, महर्षि शिकामकेतु उद्दालक, महर्षि पिप्पलाद, माता मदालसा, महर्षि विभाण्डक, महर्षि काकभुषुण्ड, महर्षि लोमश, महर्षि महानन्द, सत्यकाम, महाराज अश्वपति, महर्षि अर्द्धभाग, महात्मा कुक्कुट, वैशम्पायन, भारद्वाज, चाक्रायण, महर्षि वर्तेन्तु, शौनक, भगवान राम, महाराजा जनक, महर्षि रेवक, महर्षि जमदग्नि, सुनीति मुनि, यमाचार्य-नचिकेता, नारद महर्षि आदि अनेक ऋषि-मुनियों द्वारा तृतीय यज्ञशाला (भौतिक याग) के माध्यम से शरीर रूपी यज्ञशाला और ब्रह्माण्ड रूपी यज्ञशाला के क्रियात्मक समन्वय से जुड़े संवादों और विचार-विनिमय की ऋषि ने अपनी मनोहारी शैली में स्तुति की

है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में 'यागों का चयन' करते हुए याज्ञिक मानव अपने में अपनेपन का दर्शन करता हुआ तप-सम्भावना का क्रियात्मक अनुभव कर सकता है।

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज का सारा जीवन क्रियात्मक यागों के प्रचार-प्रसार में लगा रहा। उन्होंने ग्राम-ग्राम, नगर-नगर भ्रमण कर हज़ारों वेद-पारायण यागों का आयोजन करवाया। अनेक श्रद्धालुओं को पञ्चयागों में योजित किया और अनेकों के हृदय में याग और योग की भूमिका बनाई। उन्होंने, बरनावा, मेरठ में 'लाक्षागृह आश्रम' को एक दिव्ययाग-स्थली का रूप प्रदान किया, जहां समय-समय पर वर्ष भर चतुर्वेद और वेद-पारायण यागों का आयोजन होता रहता है। परम्परानुसार, इस वर्ष होलिका पर्व से पूर्व आयोजित चतुर्वेद पारायण याग के शुभ अवसर पर यज्ञ-प्रेमियों के स्वाध्याय के लिये यह पोथी प्रस्तुत है।

वैदिक अनुसन्धान समिति उन सभी महापुरुषों के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती है, जिन्होंने प्रस्तुत पोथी के प्रकाशन के लिये सात्विक सहयोग प्रदान किया। समिति प्रभु से उनके दीर्घ-जीवन में सर्वविध समृद्धि और संवृद्धि की कामना करती है!

ज 3/293

अनुक्रमणिका

पूज्यपाद गुरूदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज

पूज्यपाद ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज

उत्तर प्रदेश के ग़ाज़ियाबाद जनपद में मुरादनगर के निकट स्थित खुर्रमपुर-सलीमाबाद गाँव में, एक निर्धन, अशिक्षित, कबीर पन्थी जुलाहे के घर इनका जन्म हुआ। उल्टी प्रक्रिया में, अर्थात् उल्टे पैरों पैदा होने पर नाम रखा गया कृष्णदत्त। गाँव के अशिक्षित परिवेश में इनके जन्म समय का कोई निश्चित सङ्केत नहीं मिलता। फिर भी उनके परिवार के सदस्यों, उनके गाँव के समवायी शिक्षित महानुभावों के सङ्केतों और अन्य तथ्यों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जन्म सन् १९४२ के उत्तर चातुर्मास्यकाल में हुआ।

कहते हैं, जब पूज्य ब्र० जी लगभग दो मास की अवस्था के ही थे, एक दिवस उनकी माता ने उन्हें शवासन में लेटा दिया। कुछ समय उपरान्त शिशु की गर्दन दोनों ओर हिलने लगी और होंठ फड़फड़ाने लगे। इस अवस्था में शिशु को पाकर परिवार के सदस्य चकित हुए। इस क्रिया की पुनरावृत्ति होने पर गाँव के ओझा-पण्डित का सहारा लिया गया और भूत-प्रेत का प्रभाव मानकर तदनुरूप शिशु का उपचार प्रारम्भ हो गया और अनेक प्रकार से यातनाएँ दी जाने लगीं। परन्तु उस विशेष अवस्था में जाने की घटनाएँ बढ़ती रहीं। आयु बढ़ने के साथ वाणी स्पष्ट होने पर बाल्य ब्र० जी उस विशेष अवस्था में जाते तो मन्त्र-पाठ और कथा-वाचन स्पष्ट सुनाई देते। आश्चर्य चकित ग्रामवासी गर्दन हिलने और कथा सुनने के इस विचित्र अनुभव को अपने-अपने आधार पर ग्रहण करने लगे।

छः वर्ष की आयु में उन्हें भयानक चेचक निकली। उन्हें शवासन में लिटाये रखा जाता और उस विशेष अवस्था में जाकर उनके प्रवचन होते ही रहते थे। दोनों ओर गर्दन हिलने से उनका पूरा मुख-मण्डल और सिर छिल-छिल कर फोड़े की तरह बन गये थे। पड़ौस के बूढ़े लोगों को अभी भी वह समय याद है और कोई यह नहीं कहता था

कि बालक कृष्णदत्त बच जायेगा। परन्तु प्रभु की कृपा से उसकी अमूल्य निधि मानव-कल्याण के लिए सुरक्षित रही।

सामान्यतः, उन्हें करवट से ही सुलाया जाता था, लेकिन जब कभी शवासन की स्थिति बनती तो कुछ समय के पश्चात् उसी प्रकार गर्दन हिलने लगती और कथा प्रारम्भ हो जाती। धीरे-धीरे गाँव के लोगों को उनकी कथाएँ समझ आने लगीं। उनके पिता उनकी इस अवस्था में जाने से बहुत चिन्तित रहते थे। जब वे ७ वर्ष की अल्पायु के ही थे, तो उनके पिता ने अपने गाँव के चौधरी खचेड़ू सिंह और चौधरी इन्द्रराज सिंह त्यागी के यहाँ उन्हें नौकर रख दिया। वहाँ ब्र० जी, पशुओं को जङ्गल में चराना, घास लाना, पशुओं का चारा, पानी भरना मेहमानों की सेवा करना, हुक्का भरना, पैर दबाना, कोल्हू में गन्ना डालना, गुड़ बनाना आदि काम करते थे। वहाँ भी जब कभी वह विशेष अवस्था बनती तो कथा प्रारम्भ हो जाती थी। इस प्रकार उनका सामान्य जीवन औपचारिक शिक्षा से वञ्चित रहा।

पशु चराते हुए साथी ग्वाले, बालक ब्र० की इच्छा न होते हुए भी बल से, हाथ, पैर तथा सिर पकड़कर सीधा लेटाते और अपेक्षित रूप में गर्दन हिलने एवं कथा सुनने का मनोरञ्जन करते थे। धीरे-धीरे गाँव के आसपास के अन्य गाँवों में विचित्र बालक का तथाकथित परिचय बढ़ने लगा। ग्राम के विवाहादि उत्सवों में विचित्र बालक को बुलाया जाने लगा और दिव्य प्रवचन क्रिया को मनोरञ्जन का साधन बनाया जाने लगा।

अन्य लोगों की तरह ब्र० जी भी इस अवस्था को व्याधि अथवा अन्य प्रभाव ही मानते थे। उनके परिवार के सदस्य अनेक प्रकार से उन्हें प्रताड़ित करते थे। ब्र० जी कष्टों से परिपूर्ण अपने जीवन को भार रूप में व्यतीत कर रहे थे। एक दिवस, इनकी कथा-प्रक्रिया के पश्चात् पिता द्वारा अत्यधिक पिटाई किये जाने पर इनके मन में विचार आया कि यहाँ कष्ट पाते रहने से तो अच्छा है कहीं जाकर अपना

इलाज कराया जाये, अन्यथा जीवन समाप्त कर दिया जाये। लगभग १५ वर्ष की अवस्था में, शीत काल की मध्य रात्रि में, लगभग एक बजे, अपने परिवार और गाँव को छोड़कर भाग खड़े हुए। उपचार की आशा में एक-डेढ़ मास इधर-उधर भटकते हुए, बरनावा में श्री धर्मवीर त्यागी के घर जा पहुँचे। त्यागी जी उनके पूर्व नियोक्ता इन्द्रराज सिंह से सम्बन्धित थे और उनका परिवार इन्हें जानता था। वहाँ उनकी कथा होती रहती। कई मास कथा चलती रही। ग्रामीण लोग आते और सुनते रहते थे। कुछ श्रद्धा से समझते हुए सुनते और अन्य कौतुहल से।

बरनावा (वारणावत) मेरठ-जनपद में हिण्डन और काली नदी के सङ्गम पर स्थित है। यहीं महाभारत काल का ऐतिहासिक 'लाक्षागृह' (लाखामण्डप) का टीला है, जहाँ कौरवों ने पाण्डवों को अग्नि में जलाने का षड्यन्त्र रचा था और सौभाग्य से पाण्डव वहाँ से बच निकले थे। यह टीला बड़े विशाल रूप में आज भी विद्यमान है। इसी स्थान से महर्षि महानन्दजी का सम्बन्ध ब्र० जी के भौतिक-पिण्ड से हुआ, ऐसा बरनावा निवासियों से मालूम हुआ। उनका कथन है कि जिस समय प्रारम्भ में यहाँ ५-६ मास तक कृष्णदत्त जी की कथा हुई तो कभी कथा में महानन्द मुनि का कोई सङ्केत, अथवा नामोच्चारण नहीं हुआ था। एक दिन ब्र० जी अपने चार साथियों के साथ घूमते हुए इस लाखामण्डप को देखने गये। थोड़ी देर घूम-फिर कर आ गये और उसी दिन रात्रि की कथा में महानन्द जी ने यह कहा कि गुरु जी आज तो आप हमारे आश्रम में गये थे। तब से उनके प्रवचनों में महानन्द जी के प्रश्नोत्तर होने लगे।

उनके प्रवचनों से स्पष्ट हुआ कि ब्र० कृष्णदत्त जी पूर्व जन्मों में शृंगी ऋषि रहे हैं और महानन्द जी उनके सूक्ष्मशरीरधारी, योगसिद्ध शिष्य रहे हैं। यह भी ज्ञात हुआ कि महाभारत की लाक्षागृह-अग्निकाण्ड-स्थली पूर्व समयों से महानन्द जी की तपोभूमि रही है। और पू० ब्र० कृष्णदत्त जी के यहाँ पदार्पण तक महानन्द जी श्राद्धरूप में तपस्या करते रहे।

ब्र० जी के हृदय में इस टीले को आश्रम में परिवर्तित करने की प्रेरणा बलवती होने लगी। लोग इनके प्रवचनों की सार्थकता समझने लगे और धीरे-धीरे इनकी लोकप्रियता बढ़ने लगी। समीपवर्ती गाँवों में उन्हें प्रवचन के लिये बुलाया जाने लगा। इन्हीं दिनों यज्ञों में उनकी रुचि बढ़ने लगी और जिस परिवार में प्रवचन/कथा करते, वहाँ यज्ञ करने की प्रेरणा भी देते। विशेष रूप से उनकी विदाई के समय यज्ञ होने लगे। तभी ब्र० जी ने लाक्षागृह टीले पर भी यज्ञों के आयोजन की प्रेरणा दी।

आर्य जगत् के अनेक प्रतिष्ठित विद्वान इस अशिक्षित ग्रामीण युवक की विचित्र अवस्था, दिव्य प्रवचन-शैली और विलक्षण वैदिक प्रभाव को देखकर इनकी ओर आकर्षित हुए। उत्तर प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित आचार्य सुरेन्द्र शर्मा गौड़ जी, श्री ब्र० कृष्णदत्त जी की विलक्षण प्रवचन क्रिया एवं प्रवचन शैली से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने साप्ताहिक पत्र, 'आर्यमित्र' में इनके विषय को प्रकाशित कराया। सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा को लिखा और वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन करते हुए स्पष्ट किया कि उनकी यह अवस्था योग की दिव्य मुद्रा है, समाधि है।

सन् १९५८-५९ ई० में, वैद्य, पं० प्रकाश चन्द्र जी शास्त्री ने विनय नगर के आर्य समाज प्रधान को ब्र० जी के विषय में बताया और इस प्रकार ब्र० जी को दिल्ली बुलाने की योजना बनने लगी। अन्ततः शास्त्री जी, आकाशवाणी के डॉ० बनवारी लाल जी शर्मा एवं अन्य महानुभावों के प्रयत्न से दिनाङ्क २८ दिसम्बर ,१९६१ को ब्र० कृष्णदत्त जी महाराज आर्यसमाज, विनय नगर में पधारे। अगले दिन, वहाँ, भारत सेवा समाज के स्थान पर इनका प्रवचन लगभग २५० जिज्ञासुओं ने सुना और मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की। दिल्ली में कई दिन तक प्रवचनों के कार्यक्रम होते रहे। आत्मा-परमात्मा, प्राण की महत्ता, अनावृष्टि-अतिवृष्टि आदि अनेक विषयों पर इनके दिव्य प्रवचन हुए। अनेक प्रतिष्ठित विद्वानों,

दार्शनिकों और मनोवैज्ञानिकों ने इनके प्रवचनों को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से सुना और गम्भीर विश्लेषण हुआ।

१ जनवरी, १९६२ को इनके प्रवचन को प्रथम बार टेप रिकॉर्ड किया गया। प्रत्येक दिन नवीन् विषय होता था। धीरे-धीरे प्रवचनों को सुनने वालों की संख्या बढ़ने लगी। ७ जनवरी को एक विशेष यज्ञ के पश्चात् लगभग दस हज़ार लोगों की भव्य उपस्थिति में प्रवचन हुआ। सौल्लास निर्णय लिया गया कि इनके बहुमूल्य प्रवचनों की निधि को रिकार्ड किया जाना चाहिये और इनकी यौगिक क्रिया एवं प्रवचन-सामग्री पर अनुसन्धान होना चाहिये। शीघ्र ही 'वैदिक अनुसन्धान समिति, नई दिल्ली' का गठन किया गया। इस प्रकार प्रवचन टेप होने लगे और प्रकाशन कार्य प्रारम्भ हो गया। उधर ब्र० जी के लिये देश के कोने-कोने से निमन्त्रण आने लगे और ब्र० जी का जीवन यज्ञों और प्रवचनों में अत्यन्त व्यस्त हो गया।

ब्र० जी की प्रेरणा से लाक्षागृह टीले पर एक यज्ञशाला का निर्माण कराया गया और लाक्षागृह को एक आश्रम का रूप दिया गया। तदनन्तर, बरनावा आश्रम में, हर वर्ष शिवरात्रि एवं होलिका पर्व के मध्य दिनों में लगातार आठ दिनों का पूज्य ब्र० जी की प्रेरणा से एवं जनता जनार्दन के सहयोग से, चतुर्वेद पारायण यज्ञों का आयोजन हो रहा है। और इसी प्रकार रक्षाबन्धन के दिवस सामवेद परायण यज्ञ सम्पन्न होता है। पिछले कुछ वर्षों से आश्विन मास के कृष्णपक्ष की तृतीया को पूज्य ब्र० जी के जन्म-दिवस के रूप में मनाया जा रहा है और इस दिन भी सामवेद पारायण यज्ञ का आयोजन होता है। आजकल आश्रम में पाँच भव्य यज्ञशालाएँ हैं, जहाँ हज़ारों-हज़ारों की संख्या में वैदिक श्रद्धालु यज्ञ एवं प्रवचनों के दिव्यामृत से लाभान्वित होते हैं।

ब्र० जी की ही प्रेरणा से लाक्षागृह आश्रम में निःशुल्क वैदिक शिक्षा के लिए एक संस्कृत विद्यालय की स्थापना हुई। ब्र० जी के योग सिद्धात्मा शिष्य ही के नाम पर विद्यालय का नामकरण हुआ। सन् १९६५ में

लाक्षागृह-आश्रम में यज्ञों एवं शिक्षण के प्रबंधन के लिए 'श्री गांधी धाम समिति' नाम से एक समिति का गठन हुआ। शनै-शनै, यथापेक्षा, यहाँ पर्याप्त कमरे, गऊशाला, खेती के लिए पर्याप्त भूमि तथा ट्यूबवेल और अन्य साधनों का प्रबन्ध हो गया।

सम्प्रति, इस संस्कृत महाविद्यालय में लगभग १५० छात्र, वैदिक शिक्षण-पद्धति के आधार पर, आचार्य स्तर तक विभिन्न विषयों में प्रबुद्ध अध्यापकों द्वारा शिक्षार्जन कर रहे हैं। आज भी यहाँ के विद्वान आचार्य, देश के कोने-कोने में याग करवा रहे हैं और ब्र० जी द्वारा वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को प्रभावी रूप से देदीप्त कर रहे हैं।

पूज्य ब्र० जी की योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया पर गम्भीर अनुसन्धान की आवश्यकता है। यूं तो इनके प्रवचनों में ही महर्षि महानन्द जी ने इस क्षेत्र में एवं पूज्य ब्र० जी से जुड़े सभी प्रश्नों पर व्यापक प्रकाश डाला है और यह एकदम स्पष्ट है कि पूज्य ब्र० जी आदि ब्रह्मा के वरिष्ठ शिष्य शृंगी ऋषि की आत्मा थे और इनका यह जीवन आदि ब्रह्मा जी के एक श्राप का परिणाम था। त्रेता काल में इनके ही द्वारा पुत्रेष्टि यज्ञ करवाने से भगवान राम अवतरित हुए थे। परन्तु उस विशेष समाधि अवस्था में दिये जाने वाले इनके प्रवचन, अन्तरिक्ष-स्थित ऋषि-मण्डल में सूक्ष्म शरीरधारी योगसिद्ध आत्माओं को सम्बोधित होते थे और उनका यह शरीर एक दिव्य-यन्त्र की भान्ति उस आकाशवाणी से पृथ्वीमण्डल पर हम लोगों को प्रेरणार्थ योजित करता था। उनकी यह प्रवचन-प्रक्रिया यौगिक थी, जिसे प्राणसत्ता को जानने वाले ही ग्रहण कर सकते हैं। अनेक लोगों ने इनकी यौगिक प्रक्रिया पर अनुसन्धान किये हैं।

१९६४ में, प्रतिष्ठित योग विद्वान् स्वामी योगेश्वरानन्द जी ने इनकी योग-मुद्रा एवं प्रवचन प्रक्रिया पर विशेष अनुसन्धान किये और अपने यौगिक बल से इनकी प्रतिभा को जाना। स्वामी प्रभु आश्रित जी, स्वामी सच्चिदानन्द सरस्वती, डॉ० रणवीर सिंह शास्त्री विद्यावाचस्पति, पण्डित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड, महान् वैयाकरण एवं दार्शनिक डॉ० श्री हरिदत्त

जी शास्त्री, विश्वनाथ प्रसाद जी, डॉ० देशमुख महोपाध्याय, श्री पं० वीरसेन जी वेदश्रमी आदि अनेक विद्वानों ने ब्र० जी की योग-मुद्रा एवं प्रवचन प्रक्रिया पर अनुसन्धान किये और अपनी शुभ सम्मतियां प्रकट कीं।

१९६६ में, माननीय विज साहब ब्र० जी को हैदराबाद ले गये। वहाँ तत्कालीन शिक्षामन्त्री एवं भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री नरसिंहाराव जी ने खण्डुराव देसाई एवम् अन्य राजनीतिज्ञों के साथ ब्र० जी के प्रवचनों का आयोजन करवाया। 'राजा का धर्म' विषय पर हुए एक प्रवचन को सुनकर सब आश्चर्य चकित रह गये। भूतपूर्व मन्त्री श्री बलराम जाखड़ एवं भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के सुपुत्र डॉ० मृत्युञ्जय प्रसाद जी ने भी इनके प्रवचनों को सुना है और आश्चर्यबद्ध होकर प्रशंसा की है।

इनकी योग मुद्रा में जाने की प्रक्रिया बड़ी विचित्र थी। प्रवचन से पूर्व इन्हें कोई ज्ञान नहीं होता था कि ये किस विषय पर प्रवचन करेंगे और प्रवचन के उपरान्त भी यही दशा बनी रहती थी। उन्हें ज्ञान नहीं रहता था कि उन्होंने कब और कैसे क्या कहा। प्रारम्भ में ब्र० जी चादर लेकर शवासन में लेट जाते थे। चादर ओढ़ने का उद्देश्य बाह्य अशान्त प्रभाव से बचना था। ४-५ मिनट तक उन्हें सामान्य रहने का आभास रहता था। उसके बाद उन्हें पूर्व स्थिति का कोई ज्ञान नहीं रहता था। योगविदों के अनुसार, इसके बाद इनके प्राण एकीकृत होकर ब्रह्मरन्ध्रोन्मुखी हो जाते थे, और समाधि लग जाती थी। पूज्य ब्र० जी अन्तरिक्ष के किसी ऐसे मण्डल से सम्बन्ध स्थापित कर लेते, जहाँ योगसिद्ध आत्माएँ उनके पूर्व जन्मों के दिव्य ज्ञान की अपेक्षा में सभा योजित होती थीं। इस प्रकार, लगभग दस मिनट तक उस अवस्था में लेटे रहने के पश्चात् वे दोनों हाथों से चादर को मुख से उतारते थे और हाथों को वक्षस्थल पर विचित्र पाठ-मुद्रा में लाते थे। गर्दन के ऊपर का भाग दायें-बायें, दोनों ओर तीव्र रूप से गति करने लगता था, सम्भवतः यह प्राणों का सङ्घात था, और अति मधुर ध्वनि में मन्त्र-गायन प्रारम्भ हो जाता था।

मन्त्र गायन में वेद-मन्त्रार्थों की प्रतिभा का भान तो होता ही है, साथ ही वैदिकोत्तर काल में विकसित होने वाली किसी वेद-भाष्यी भाषा का बोध भी होता है। सम्भवतः यह ब्राह्मी का प्राचीन रूप है। मन्त्र-गायन की समीक्षा से ऐसा बोध भी होता है, जैसे उस काल में ऐसे विशिष्ट विद्यालय, अथवा गुरुकुल प्रणाली रही हो, जहाँ अपने प्रकार की ऐसी समवैदिकी भाषा का विकास होता रहा था। गायन तो तत्सम छन्दोबद्ध ही रहा है, परन्तु शब्द-रूप एवं मन्त्र-विन्यासं अपनी अलग विधा का बोध कराते हैं। लगभग दस मिनट तक मन्त्रोच्चारण चलता था। मन्त्रोच्चार के उपरान्त मनोहारी एवं मधुर ध्वनि में आशीर्वचन (जीते रहो !) सुनाई पड़ता था। और, 'देखो, मुनिवरो !' सम्बोधन के साथ, एक मनोहारी और वृद्ध ऋषि-तुल्य भाषा में लगभग ४० मिनट का ज्ञानगर्भित एवं विज्ञान पुष्ट प्रवचन होता रहता था। कभी-कभी प्रवचन की अवधि अधिक भी होती थी।

प्रवचन की धारा-प्रवाहिता, विषय-विन्यास एवं दर्शन का स्तर इतना उत्कृष्ट एवं वैज्ञानिक होता था कि जिसे सुनकर आज भी बड़े-बड़े विद्वानों का मस्तिष्क कल्पना में नृत्य करने लगता है। प्रवचन में इतनी सरसता और सात्विकता होती है कि अल्पज्ञ श्रोता विषय-सामग्री के ग्रहण स्तर में न होता हुआ भी, बन्धा हुआ सा रहता है।

प्रवचनों की विषय सामग्री, ऋषि-मुनियों के वैदिक, यौगिक एवं व्यावहारिक अनुभवों, दृष्टान्तों, मानव-धर्म और मानवीयता के तथ्यों से ओतप्रोत रहती है। सम्पूर्ण मानवता के लिये ग्राह्य वैदिक ज्ञान और आचरण की ये अनूठी चर्चाएँ, न केवल इतिहास, विज्ञान एवं दर्शन से जुड़ी गुत्थियों को सुलझाती हैं, बल्कि सम्प्रदायों, रुढ़िवादिता, साहित्य एवम् इतिहास के प्रक्षेपों से भ्रमित, आज के मानव को जीवन के सभी क्षेत्रों में आचरण योग्य विशुद्ध साकल्य भी उपलब्ध कराती हैं। प्रवचन की भाषा सुमधुर तत्सम हिन्दी रही है। कभी-कभी प्रवचनों की भाषा, संस्कृत भी रही है। कुछ प्रवचन तो पूर्णरूप से संस्कृत में ही हैं।

इनके प्रवचनों में तीन और आत्माओं—आदि ब्रह्मा (इनके पूज्यपाद

गुरुदेव), इनके शिष्य महर्षि लोमश मुनि और महर्षि महानन्द मुनि की वार्ताएँ भी आती हैं। महर्षि महानन्द जी के तो इनसे प्रश्नोत्तर, प्रायः होते रहे हैं। यज्ञ की पूर्णाहुति के पश्चात् यजमान के लिए आशीर्वचनों और राष्ट्रवाद पर इनकी दिव्य टिप्पणियों से पूर्ण वार्ताएँ तो सर्व अपेक्षित रही हैं।

ब्र० जी की बढ़ती लोकप्रियता और प्रवचनों से पाखण्ड एवं रूढ़िवाद के युक्तियुक्त खण्डन के कारण अनेक बार उन पर शारीरिक हमले हुए। एक बार तो औषधि रूप में उन्हें कच्चा पारा खिला दिया गया, जिसके कारण उनका शरीर फोड़े-फोड़े हो गया और हृदय तथा फेफड़ों को गहरी क्षति पहुँची थी।

सामान्य अवस्था में, एक सामान्य से प्रतीत होने वाले ब्र० जी ने अपने छोटे से जीवन काल में ५००० के लगभग वेद पारायण यज्ञों का आयोजन करवाया, जिनमें लगभग ३५ चतुर्वेद पारायण यज्ञ हैं। आज के वाममार्ग काल में, ग्राम-ग्राम, नगर-नगर घूम कर इस महामानव ने महर्षि दयानन्द द्वारा पुनर्जागृत वेद एवं यज्ञ-प्रचार की ज्योति को हज़ारों-हज़ारों परिवारों में देदीप्यमान कर दिया। अनेक श्रद्धालुओं को 'दैनिक-यज्ञ' में योजित किया।

आजीवन ब्रह्मचारी रहकर सात्विक एवं सादा जीवन जीने वाले ब्रह्मचारी जी की निस्पृहता, निरभिमानता आदि सभी विचारशीलों को अत्यन्त प्रभावित करती थीं। उनकी विलक्षण स्मरण शक्ति और सबके प्रति अगाध प्रेम ने उन्हें 'सभी का अपना' बना दिया था।

यज्ञों के विस्तार की भूमिका बनाते हुए और अपने दिव्य यौगिक प्रवचनों द्वारा ब्रह्म-ज्ञान का प्रसारण करते हुए, यह दिव्यात्मा, १५ अक्तूबर १९९२ को ब्रह्म मुहूर्त के समय ५० वर्ष की अवस्था में, ब्रह्म-लोक के लिए महाप्रयाण कर गयी। यद्यपि, पूज्यपाद ब्र० कृष्णदत्त जी, आज हमारे मध्य नही हैं, लेकिन, उनकी वेदवाणी, यज्ञों की भूमिका और उनकी दिव्य-प्रेरणाएँ, सर्वदा-सर्वदा, मानव-मात्र का मार्गदर्शन करती रहेंगी!

पूज्यपाद गुरुदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज के प्रवचनों का साहित्य निम्न स्थानों पर उपलब्ध है—

१. श्री महानन्द संस्कृत महाविद्यालय लाक्षागृह, बरनावा।

२. श्री महावीर सिंह, २५१, दिल्ली गेट, नयी दिल्ली।

३. मैसर्स विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द,
४४०८, नयी सड़क, दिल्ली।

४. श्री सुशील कुमार त्यागी
मकान नं. ७७३, सेक्टर ८,
आर.के. पुरम, नयी दिल्ली।

५. श्री राजपाल त्यागी
१०६/४, पंचशील, गली नं. ४, गढ़ रोड, मेरठ।

६. श्री विवेक त्यागी,
मकान नं. १६, अशोक कालोनी, अल्कापुरी, हापुड़।

७. श्री सेवाराम जी,
दुकान नं. ई-२४, संजय नगर,
सेक्टर २३, ग़ाज़ियाबाद।

८. श्री सुमन शर्मा, कन्या गुरुकुल महाविद्यालय, चोटीपुरा,
प्रो.-रजबपुर, ज्योतिबा फूले नगर (अमरोहा) उ.प्र.

आध्यात्मिक-याग

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना मेरे देव की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गये हैं और जितना भी यह जड़-जगत् अथवा चैतन्य-जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात् आ रहा है। हम उस परमपिता परमात्मा की प्रायः महिमा का वर्णन करते रहते हैं, क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्र के द्वारा हम उस महामना जो हमारा पुरोहित है अथवा हमारा निर्माण करने वाला है और जगत् का नियन्ता है, उस महान् प्रभु की महिमा का गान गाते चले जा रहे थे।

अन्तरात्मा की पिपासा

आज का हमारा वेद-मन्त्र उस परमचेतना की महिमा का वर्णन कर रहा था, क्योंकि वह मेरा देव इस सर्वत्र ब्रह्माण्ड को चेतनित करने वाला है और उसकी जो चेतना है, यह प्रत्येक प्राणीमात्र में सदैव निहित रहती है और प्रत्येक मानव, बेटा! उस चेतना के आंगन में सदैव बने रहने की कामना करता रहता है। प्रत्येक वेदमन्त्र के द्वारा, मुनिवरो! हमारे ऋषि-मुनियों ने परम्परागतों से, बेटा! उसे प्रायः सखा रूप में स्वीकार किया है।

वह मेरा प्यारा प्रभु कैसा अलौकिक सखा है? बेटा! इसका वेदों ने सुन्दर रूपों से निरूपण किया है अथवा उसकी महिमा का गुण-गान गाया है। प्रायः मानव यह विचारता रहता है कि तू गान अपनी वाणी से गा रहा है। परन्तु वाणी का जो एक उद्‌गार होता है, वह अन्तरात्मा से चला करता है। क्योंकि अन्तरात्मा को पिपासा होती है और वह पिपासा होती है अपने प्यारे सखा के लिये। क्योंकि पुत्र की कामना सदैव होती रहती है कि मैं अपनी ममतामयी माता की लोरियों में जाने के पश्चात् अपनी इस पिपासा को शान्त करना चाहता हूँ। इसी प्रकार वह जो अन्तरात्मा है, जिसके अधीन सर्वत्र इन्द्रियाँ रहती हैं, उसकी एक पिपासा होती है कि आज मैं अपने प्यारे पिता और माता के समीप जाना चाहता हूँ।

परमात्मा का माता रूप

मुनिवरो! जो माता जननी है, जो माता जन्म देने के पश्चात् भी लालन-पालन करने वाली है, जिसकी ममता का कोई पार नहीं पाता, आज हम उस माता की लोरियों में आनन्द का पान करने के लिए पिपासु होना चाहते हैं। प्रत्येक मानव की, बेटा! एक पिपासा होती है, जागरूकता होती है, मन में देखो एक महत्ता की धारा होती है कि आज मैं अपनी उस प्यारी माता की उस मनोहर गोद में जाना चाहता हूँ जो हम सबका लालन-पालन करने वाली है। उस माता की कितनी सुन्दर लोरियां हैं, जिसके पान करने के पश्चात् एक परम-आनन्द की उपलब्धि होने लगती है! वह जो सोम है, जिसको पान करके प्रकृति अपने आंगन में रमण कर रही है। आज जिस सोमरस को पान करके ही मानव का

हृदय सोम बन जाता है, यह आत्मा की पिपासा ही है तो मुनिवरो! यह अपने प्यारे सखा के लिए सदैव याचना करती रहती है। जिस प्रकार बालक आसन पर विराजमान है और क्षुधा से पीड़ित हो रहा है, वह नाना प्रकार के संसार के वैभव को नहीं पुकारता, वह ममतामयी माता को पुकारता है, "माँ! आ, मुझे अपनी लोरियों का आनन्द पान करा जिससे मेरी क्षुधा शान्त हो जाये, जिससे मेरी पिपासा शान्त हो जाये।"

हे माता! वास्तव में तू कैसी माँ है? तेरा जो अनुकरण है, तेरी जो रचना है, तेरी जो महत्ता हमारे शरीरों में व्याप्त हो रही है, इस प्रकृति के कण-कण में व्याप्त है। हे माता! तू सबको अपने आँगन में धारण करने वाली है। हम भी तेरी उस आनन्दमयी लोरियों का पान करना चाहते हैं, जिस आनन्द को पान करने के पश्चात् मानव इस संसार में कुच्छ और पाने की कामना नहीं करता। माता! वह कौन-सा समय आयेगा जब मैं अपने में यह अनुभव करूंगा कि आज मैं सौभाग्यशाली बन गया हूँ, मेरा जीवन अमृतमयी बन गया है? वह कौन-सा समय होगा, जब मानव की इस प्रकार की पिपासा होती है, जागरूकता होती है, तो मानव अपने प्यारे प्रभु की गोद में चला जाता है?

अन्तरात्मा का गान

मुनिवरो! देखो, वेदों का जो गान है, वह मन और प्राण के द्वारा तो गाया ही जाता है। परन्तु उसका सम्बन्ध परमात्मा से होता है। इसीलिये आज संसार में प्रायः मानव को गान गाना चाहिये। परन्तु वह अपनी अन्तरात्मा से गाना चाहिये। जब मानव अपनी अन्तरात्मा से

अपने प्यारे प्रभु को पुकारता रहता है, अपने प्यारे सखा के लिए वह वन्दना करता रहता है। तो वह जो माता है, वह कैसी पवित्र है? संसार की माता अपने पुत्र को त्याग सकती है, परन्तु आत्मा की जो वह पवित्र माता है, जिसके द्वारा सब साधन प्राप्त होते हैं, जिसके द्वारा वायु प्राप्त होती है, अग्नि प्राप्त होती है, जल प्राप्त होता है, पृथ्वी प्राप्त होती है, सर्वत्र जो देवता है, जो देते ही रहते हैं उनकी जितनी भी सम्पदा है, वह मानव को प्राप्त होती रहती है। वह जो मेरी माँ है, वह सब कुछ अर्पित कर देती है। उसी को हमारे यहाँ आचार्यों ने, बेटा! गायत्री छन्दों में वर्णन किया गया है। उस माता का प्रायः वर्णन अन्तरात्मा से होता है। हमें उस अन्तरात्मा की मनोहरता को स्वीकार करना चाहिए।

आत्मा का द्यौ से सम्बन्ध

आज हम आये हैं कुछ वैदिक सम्पदा पर विचार-विनिमय करने के लिये। वैदिक सम्पदा क्या है? वैदिकता क्या है? इसके ऊपर हमें विचार-विनिमय करना है। वैदिकता कहती है कि मानव का अन्तरात्मा जब लोक में विचारने लगता है, जैसे मानव के शरीर में मस्तिष्क होता है और उस मस्तिष्क में भी ब्रह्मरन्ध्र होता है, यह इस शरीर रूपी यज्ञशाला का द्यौ कहलाता है। यहाँ हृदय की प्रतिभा भी मानी गई है। जब साधक उसका अनुमोदन करने लगता है, उनको जानने के पश्चात् द्यौ-लोक में ऐसी सुन्दर आभा विराजमान रहती है, जिस आभा को जानने के पश्चात् मानव का जीवन ऐसा नहीं रह पाता, जिसको मानव नहीं जानता। आध्यात्मिक यागी, बेटा! हृदय रूपी वेदी में याग करता है। यह कैसा सुन्दर यज्ञ है? द्यौ-लोक के मानव को कितनी सम्पदा

प्राप्त होती है? कितनी सुगन्धि प्राप्त होती है। जिस सुगन्धि को प्राप्त करने के पश्चात् मानव का जीवन सुगन्धिमय हो जाता है। वह स्वयं सुगन्धि बन जाता है।

आत्मा की अग्नि और साकल्य

बेटा! आज हम कुछ द्यौ-लोक की विवेचना कर रहे थे। जिस चर्चा के सम्बन्ध में हमारा जीवन एक अमृत बन करके महत्ता में परिणित हो जाता है। वैदिक विचार लोक-लोकान्तरों के सम्बन्ध में क्या कह रहा है? जैसे हमारे मानव शरीर में अग्नि है, जठराग्नि है, परन्तु उसको प्रदीप्त करने के लिए सुन्दर घृत की आवश्यकता होती है। जैसे मानव-शरीर में अग्नि प्रदीप्त हो रही है परन्तु उस अग्नि को प्रदीप्त करने के लिये, उत्तेजना देने के लिये मानव को समिधा व घृत की प्रायः आवश्यकता रहती है। **मानव की जो सुन्दर अग्नि है, वह ज्ञान स्वरूप है, जो ज्ञान में रमण करने वाली पवित्र आभा है।** आज उसके ऊपर हमें विचार करना है। परन्तु वह किस प्रकार पवित्र होगी? जबकि हम अपनी इन्द्रियों के विषयों को लेकर सामग्री बनाएंगे।

आत्मा की समिधा—तीन गुण

महर्षि दालभ्य,. महाराजा शिलभ और प्रवाहण यह तीनों ही मदालसा माता के पुत्र थे। तीनों का जीवन संसार में अग्रणी रहती था। इनका विचार-विनिमय हो रहा था, महाराजा शिलभ ने महर्षि दालभ्य से कहा कि "महाराज! हृदय की जो अग्नि है, समिधा है, वह क्या है?"

उस समय महर्षि दालभ्य ने कहा कि–"मेरे विचार में तो यह आता है कि मानव के शरीर की जो अग्नि है, वह तो 'प्राणं ब्रह्मः लोकाः'' "मानो वह तो आभा को कहा गया है। रहा यह कि इस अग्नि को कौन प्रदीप्त कर रहा है? समिधा क्या है?" तो उन्होंने कहा–"तीन गुणों को जब हम एकाग्र हो करके समिधा बना लेते हैं। रजोगुण, तमोगुण और सतोगुण इन तीनों की समिधा बना करके और घृत में लय कर देते हैं तो अग्नि प्रदीप्त होती रहती है।"

आत्मा का घृत–मन

मुनिवरो! घृत उस काल में बनता है जैसे गौ रूपी पशु के शरीर में नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान करने के पश्चात् प्रायः शरीर में मन्थन होता रहता है और मन्थन किया हुआ जो अमृतमय घृत होता है उस घृत को जब हम मन्थन कर लेते हैं तो वह घृत बन जाता है। बेटा! 'औषधियों का जो सूक्ष्म रस है, उसी का नाम घृत कहा गया है।' इसी प्रकार प्रभु के इस जगत् में प्रायः ऐसा होता रहता है। **मानो देखो, यह जो मन है वह प्रकृति का सूक्ष्म तत्त्व है, यह प्रकृति का जो औषध है, प्रकृति में जो नाना प्रकार की औषध है, उसका जो सूक्ष्म तन्तु है उसी का नाम मन कहा गया है।** महर्षि दालभ्य ने कहा कि–"वह जो सूक्ष्म रस है, उसी को हमारे यहाँ मन कहा गया है। मन प्रकृति की ऐसी-ऐसी सुन्दर आभा को रच देता है। ऐसा स्थूल शरीर बना देता है, निर्धन बन जाता है, धनवान बन जाता है, राजा बन जाता है, ऋषि और पत्नी बन जाता है, पति बन जाता है, परन्तु स्वप्न की दशा में जब मानव परिणित हो जाता है तो एक नवीन जगत् रच देता है।" इसका

मूल कारण यह है कि वह प्रकृति का सूक्ष्म तत्त्व है, क्योंकि प्रकृति का यदि कोई संसार में सूक्ष्म तत्व है, तो उसी को हमारे यहाँ मन कहा गया है।

अग्नि की ऊर्ध्वगति

बेटा! जब मन का प्राण के साथ में उसका सन्निधान होता है, जब मन और प्राण दोनों का सन्निधान होता है, सामग्री एकत्रित होती है, हम तीन गुणों की सामग्री बना लेते हैं तो उस समय मन और प्राण दोनों की आहुति दे करके इस मानव शरीर का जो हृदय है और हृदय में जो एक महान् अग्नि प्रदीप्त हो रही है, वह अग्नि ऐसे प्रदीप्त हो जाती है जिस प्रकार यज्ञशाला में घृत को प्रविष्ट करते ही अग्नि की ऊर्ध्वगति बन जाती है। इसी प्रकार उसकी ऊर्ध्वगति बन जाती है। यह प्रकृति का सूक्ष्म रहस्य माना गया है।

अन्य लोक-लोकान्तरों में यज्ञ का स्वरूप

आज जब हम मन और प्राण के द्वारा इस घृत से आहुति देते हैं तब एक विचार हमारे मस्तिष्क में और आता है कि प्रभु के ब्रह्माण्ड में, द्यौ-लोक में जो लोक-लोकान्तर हैं, उनमें कुछ लोक इस प्रकार के हैं, जिनमें केवल आत्मिक चिन्तन होता है। कुछ लोक इस प्रकार के हैं, जहाँ आत्मिक यज्ञ होता है और कुछ इस प्रकार के हैं जहाँ पदार्थों के द्वारा यज्ञ होता है। पदार्थों के यज्ञ का और आध्यात्मिकवादी यज्ञ दोनों का समन्वय कर लिया जाता है। इस प्रकार के लोक हैं, जहाँ विज्ञान में परमाणुवादमय यज्ञ होता रहता हैं। नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर, इस मेरे प्यारे प्रभु के ब्रह्माण्ड में हैं।

वैदिक ज्ञान की सार्वभौमिकता

मुनिवरो! देखो, जिस प्रकार हमारे यहाँ गौ रूपी पशु है, उसकी ही लोरियों से दुग्ध का जन्म होता है। वनस्पतियों का रस बनता है, रस बन करके उसका घृत बनाया जाता है। इसी प्रकार जब हम सूर्य मण्डल की यात्रा करते हैं, बृहस्पति में जाते हैं, आरूणी में जाते हैं, अरुन्धती मे जाते है, वशिष्ठ-मण्डल में जाते हैं, सप्तऋषि मण्डल में जाते हैं, ध्रुव-लोकों में जाते हैं, ज्येष्ठा नक्षत्रों में जाते हैं, अचङ्ग लोकों में जाते हैं, मानधूप लोकों में जाते हैं, आरुणी लोकों में जाते हैं, सोमभूत लोकों में जाते हैं, अश्विनी लोकों में जाते हैं, सौर मण्डलों में जाते हैं तो हमें यह प्रतीत होता है कि यहाँ कैसा पशु होता है, कौन-सा तत्त्व प्रधान होता है? वनस्पतियों का कैसा स्वरूप होता है? इसमें यज्ञ का कैसा साकल्य होता है? बेटा! वहाँ भी अपने रूपों में जैसा तत्व प्रधान होता है उसके अनुसार सभी पदार्थ पाये जाते हैं, क्योंकि वेद का ज्ञान सर्वत्र विद्यमान है। क्योंकि कोई ऐसी विद्या नहीं है, जो वेदों में प्रायः न हो।

वैदिक रहस्य का स्पष्टिकरण

जितना भी मस्तिष्क अविक्षिप्त होगा, पक्षपात् से रहित होगा, विचारक होगा, यौगिक मस्तिष्क होगा उतना ही मानव के हृदय में एक जानकारी की ऐसी अमूल्य निधि आने लगती है, जिससे मानव वास्तव में विभोर हो जाता है। वेदों के रहस्य को मानव रूढ़ि से नहीं जान सकता, उसको जब मन रूपी अपने घृत से उस मस्तिष्क को, अग्नि को प्रदीप्त करते हैं ज्ञान के द्वारा, हृदय की नाना प्रवृत्तियों को, ब्राह्य-प्रवृत्तियों

को जब आन्तरिक बना लेते हैं और मस्तिष्क में विचार-विनिमय प्रारम्भ हो जाता है उस विचार को ध्यानावस्थित कहते हैं। ध्यान की अवस्था होते ही उस वेद के मन्त्र में, परमात्मा की वाणी में, जो रहस्य होता है, वह समाप्त हो जाती है। उसका वास्तविक स्वरूप उसके समीप आ जाता है। क्योंकि हमारे यहाँ प्रायः ऐसा माना गया है कि वेदों में मन और प्राण दोनों की जो विशेषता है, जहाँ मन और प्राण का समन्वय हो जाता है, क्योंकि ध्यानावस्था हम उसी को कहते हैं, जहाँ मन और प्राण दोनों की सहकारिता होती है, वह जो ध्यानावस्थित है, उसमें वेद में रूढ़ि नहीं रहती। उसका मस्तिष्क उन रहस्यों को जानने लगता है। जहाँ रूढ़ि नहीं होती वहाँ वास्तविक ज्ञान होता है। वह ज्ञान से भरा एक महान् विज्ञान होता है। इसलिए वेद के रहस्यों को जानने वाला प्रायः योगी ही होता है। योगी ही वेद के रहस्य को जानता है। क्योंकि प्रकाश का प्रकाश से समन्वय कर देना जो जानता है, इनका निदान जानता है जैसे चतुर वैद्यराज होता है वह रुग्ण का अच्छी प्रकार निदान जानता है तो वह उसको औषध भी प्राप्त कराता है। इसलिए वेदों के अर्थों को, वेद की आभा को केवल वह योगी जानता है जो अपने प्राण और मन दोनों को समन्वय करना जानता है। वह मस्तिष्क और हृदय दोनों का समन्वय कर देता है। वह वेद के ऐसे प्रकाश में चला जाता है कि उसके जीवन में रात्रि अथवा अन्धकार नहीं होता।

लोक-लोकान्तरों में घृत की आभा

मेरे प्यारे ऋषिवर! महर्षि दालभ्य ने महात्मा शिलभ और प्रवाहण से कहा कि "हम नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों में जाते हैं तो वहाँ कैसी औषध हैं? कैसा घृत है? इसके ऊपर विचार-विनिमय करना है।

जब हम यह विचारते हैं कि वहाँ का घृत कैसा है? और औषध क्या है?" तो ऋषियों ने उत्तर दिया कि–"जिसका जैसा वायुमण्डल होता है वैसा ही वहाँ का औषध होता है। जहाँ जो तत्त्व प्रधान होता है, वहाँ उसी प्रकार का औषध और उसी प्रकार से मन्थन करके घृत भी उसी प्रकार का होता है। जैसे अग्नि का घृत क्या है? अग्नि का घृत विद्युत माना गया है। विद्युत में भी २८४ प्रकार की आभा होती है।

वायु में २८४ प्रकार की आभा के आचार्यों ने आरोपण किये हैं। अश्विनी कुमारों ने कहा, महात्मा दधीचि जैसे ऋषियों ने इसका निरूपण किया है। इसी प्रकार आपो (जलों) में भी इसी प्रकार की धारा मानी जाती है। अन्तरिक्ष में भी, पांचों तत्त्वों में २८४ प्रकार की गतियां और आभा होती हैं। इसी प्रकार जैसा लोक होगा जिसमें जो तत्त्व प्रधान होगा उसी प्रकार उसकी आभा बन करके वसुन्धरा में परिणित हो जाती है। इसीलिये हमारे आचार्यों ने इसके ऊपर बहुत ही गम्भीरता से विचार-विनिमय किया है, आज हमें इस गम्भीरता को विचार लेना चाहिए।

आज जब हम ध्रुव-मण्डल में जाते हैं, मंगल में जाते हैं, बृहस्पति में जाते हैं और भी नाना लोक-लोकान्तरों में परिणित होते हैं तो एक ही आभा दृष्टिपात् होने लगती है और हम घृतों को विचारने लगते हैं। उनका घृत एक नित्य कहलाया गया है। वास्तव में जैसे सर्वस्व प्रकृति का एक ऋत् और सत्य होता है। एक सत्य की ही उसमें आहुति प्रदान की जाती है। इसी प्रकार मानव को अपने जीवन में ऐसी आभा को अपना लेना चाहिये, जिसको वेद का पवित्र ज्ञान कहते हैं।

अहा! उदर की पूर्ति करना यह वेद का ज्ञान नहीं कहलाता। वेद का ज्ञान वह होता है, जिसका आत्मा से ही प्रायः सम्बन्ध रहता है। आत्मा का ही अनुमोदन किया जाता है। वहीं तो पवित्र ज्ञान होता है। आज हमें इस पवित्र ज्ञान को जानना चाहिये। नाना प्रकार के पशुओं पर विचार-विनिमय करना चाहिए। **बेटा! कहीं अग्नि तत्व की प्रधानता वाले पशु होते हैं, कहीं जल की प्रधानता वाले पशु हैं, कहीं वायु की प्रधानता वाले पशु होते हैं क्योंकि पंच महाभूत के बिना अप्रेत (विकास) नहीं होता, लोक नहीं होता। क्योंकि परमाणुवाद वहाँ भी होता है।**

मुनिवरो! विचार यह है कि जैसे पृथ्वी मण्डल में प्राण और मन का घृत बना करके यज्ञ करते हैं जैसे बृहस्पति मण्डल में प्राण की विशेषता है। क्योंकि वहाँ वायु की प्रधानता होने के नाते उसकी आभा विचित्र बन जाती है। परन्तु वहां वायु से मिश्रण होने वाला जल है, इन दोनों की प्रधानता होने के नाते वहां बहने वाला घृत बन करके जिसको हम औषध कहते हैं, वहां वायु औषध होती है, जल औषध होता है दोनों का पान किया जाता है। पशु भी उसी प्रकार के होते हैं। पान करते हैं, उनका घृत बनाया जाता है। जहां भी दृष्टिपात् करोगे वहीं तुम्हें आध्यात्मिकवाद प्राप्त होगा। क्योंकि आध्यात्मिक जो विज्ञान है उसमें मौलिकता है। जीव का जन्मसिद्ध अधिकार होता है। किसी लोक-लोकान्तक में रमण करने वाला प्राणी क्यों न हो, उसकी आभा एक विचित्रता में सदैव परिणित रहती है। इस सम्बन्ध में मुझे आज अधिक परिचय नहीं देना है।

मन और प्राण का समन्वय

आज हमें महर्षि दालभ्य के शब्दों पर विचार-विनिमय करना चाहिये। आज जो महर्षि दालभ्य तथा और विचारकों ने कहा है यह वेद का विचार है जिसके ऊपर हमारे ऋषि-मुनियों की टिप्पणियां चला करती हैं, वह टिप्पणी नाना प्रकार का विचार देकर ऋषियों की सभा में विचार-विनिमय होते रहते थे। जहां वैज्ञानिक भी हों, परमाणु वैज्ञानिक हों, ध्यानावस्थित रहने वाले हों, आत्म के दिग्दर्शन को पान करने वाले, जहां सभी विचारक पुरुष होते हैं, वहीं नाना प्रकार के विचारों का अप्रेत होता है, संशोधन होता है। देखो हमारे यहां जब मन का और प्राण का समन्वय हो जाता है तो उसकी जो प्रवृत्ति है वह मस्तिष्क में जाती है, मस्तिष्क की प्रवृत्ति हृदय में जाती है, हृदय रूपी गुफा में बैठा हुआ जो पवित्र अन्तरात्मा है वह इन विचारों का, उस सामग्री का, समिधा का संशोधन कर देता है।

मेरे प्यारे ऋषिवर! वह मन रूपी जो घृत है, प्राण रूपी जो घृत है दोनों का 'अस्वात' बना होता है। क्योंकि प्राण में यदि औषधियों का रोपण न होता तो इसमें तप न होता। प्राण जब श्वासों की गति प्रदान करता है, उस समय यह परमाणु लेकर चलता है, यह घृत को ले करके चलता है, मन के ऊपर जब इसका अप्रेत हो जाता है, मिलान हो जाता है तो यह मन भी एक ज्योति का घृत ले करके चलता है।

मन और अन्न का सम्बन्ध

प्रकृति का रहस्य होने के नाते, प्रकृति का सूक्ष्म तन्तु होने के नाते

ऋषि-मुनियों ने कहा है कि जो इस मन की उत्पत्ति है वह अन्न के ऊपर होती है। मन अन्न से ही निर्धारित रहता है। **क्योंकि मन की जो आभा है वह अन्न से उत्पन्न होती है। इसीलिये ऋषि-मुनियों ने कहा है कि—"अन्न जितना शोधन किया हुआ होता है, विचारकों का होता है, भोली माता जितना पवित्र अन्न पवित्र हृदय को देती है उतना ही बालक का हृदय बनता चला जाता है।** जब माता अन्न को पवित्र करके हृदय से देती है।" कैसा अन्न? जिससे मन की आभा उत्पन्न होती है। यदि मन के साथ में परमाणुवाद नहीं रहेगा अन्न के साथ में मन नहीं रहेगा तो अपना अन्न का कोई अस्तित्व नहीं रह जाता। इसीलिये ऋषि-मुनियों ने कहा है कि आज अन्न की ही पवित्रता होनी चाहिये। इसी को आचार्यों ने महर्षि गौतम इत्यादि ऋषियों ने इसके ऊपर अपना बहुत सुन्दर विचार दिया है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने तो इसको प्रत्यक्ष करके मानव के शरीर में प्रकट करने का प्रयास किया। मुझे स्मरण है जब कजली वनों में ऋषि-मुनियों का विचार-विनिमय होता रहता तो मन के ऊपर नाना प्रकार की टिप्पणियां चलती थीं।

संसार का जो घृत कहलाया गया है, लोक-लोकान्तरों का जो घृत है, उसके ऊपर मैं कई कालों में विचार दे चुका हूँ। आज मुझे समय इतना आज्ञा नहीं दे रहा है। आज हमें महान् ज्ञान को विचारना है जो हमें वेद देता है, वेद की जो आभा है, लोक-लोकान्तरों की चर्चा तो किसी काल में करूंगा। जब लोक-लोकान्तरों का विषय वेद-पाठ में आयेगा, वहां के पशु का वर्णन आयेगा। आज का विषय तो केवल यह है कि हमें उस महान् प्रभु के ज्ञान को विचारना है। यह आत्मा से सम्बन्धित है और वह अपनी मां को पुकारता रहता है, "हे मां! तू

कितनी पवित्र है, तू कितनी भोली है, तू कितनो महान् है, तू जब अपनी लोरियों को अपने प्यारे पुत्रों को पान कराती है तो तेरा पुत्र विभोर हो जाता है। संसार में उसे कुछ और प्राप्त करना शेष नहीं रहता है। इसी प्रकार ममतामयी जो माँ है जब वह मानव को सोमरस प्रदान कर देती है तो मानव का जीवन अमृतमयी बन जाता है, पवित्र बन जाता है। मानव ध्यानावस्थित हो करके एक महान् धारा को अपनाने लगता है। आज सूक्ष्म सा हमारा यह विचार है, इस विचार के ऊपर किसी और काल में अपने विचार प्रकट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त, अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

स्थान और दिनांक
अज्ञात

स्वर्ग-कामना

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेद्र-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में, उस महामना परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और उसका जो अनन्तमयी यह जगत् है, यह महान् और पवित्रतम् कहलाया जाता है।

पुरोहित, प्रेरक, ब्रह्म का गुणगान

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके और वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए, परन्तु कोई विज्ञानवेत्ता ऐसा नहीं हुआ, जो परमपिता परमात्मा के ज्ञान और विज्ञान को सीमाबद्ध कर सके। क्योंकि वह सीमा से रहित हैं और सीमा में आने वाले नहीं हैं इसीलिए हमारे यहाँ उस परमपिता परमात्मा की महती अथवा उसके अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान का हम सदैव गुणगान गाते रहते हैं। क्योंकि वह हमारा पुरोहित है और पराविद्या को देने वाला है इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन करते रहते हैं। वह हमारा पुरोहित कहलाता है।

आओ, मुनिवरो! देखो, वेद-मन्त्र हमें कुछ प्रेरित कर रहा है। क्योंकि मानव परम्परागतों से प्रेरणा का स्रोत रहा है और प्रेरणा को प्राप्त करता रहता है और वह नाना प्रकार के उद्गारमयी वाक्यों का प्रतिपादन भी करता रहा है तो इसीलिए हमारे आचार्यों ने उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में अपनी बड़ी विचित्र उड़ानें उड़ी हैं। आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें क्या प्रेरणा दे रहा है? क्योंकि हम प्रेरणा में ही रत रहते हैं, प्रेरणा को प्राप्त करना और अपने में उद्गीत गाना ही हमारा कर्त्तव्य है, इसीलिए हम गायन रूपों में परिणित होते रहे हैं।

आओ, मुनिवरो! देखो, वेद-मन्त्र हमारा कहता है, 'प्रणवं ब्रव्हा कृतं देवः' कि वह जो परमपिता परमात्मा है, वह 'क्रतो अस्वत प्रव्हा' वह सर्वज्ञ है और उसकी सर्वज्ञता, मुनिवरो! देखो एक-एक कण-कण में व्याप्त है। मानो देखो वह ऐसे ओत-प्रोत हो रहा है, जैसे अन्तरिक्ष में मानो जितने लोक-लोकान्तर हैं, वे सब उस ब्रह्म-सूत्र में पिरोये हुए से ही दृष्टिपात् आते हैं। क्योंकि यह एक अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड का वह स्वामित्त्व करने वाला है इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महती का गुणगान गाते रहते हैं।

नचिकेता-यमाचार्य के संवाद

आज का हमारा वेद-मन्त्र कुछ और प्रेरित कर रहा है। वेद-मन्त्र कहता है, 'गृह वर्णनं प्रवः वृत्तं गृह-पथ्यां भूः वर्णनं

ब्रह्मः'। मेरे प्यारे! मुझे वह काल पुनः से स्मरण आ रहा है, जब बालक नचिकेता यमाचार्य के द्वार पर अपने कुछ प्रश्न करना चाहता है और बाल्य नचिकेता ने कहा, "हे प्रभु! हम स्वर्ग की कामना करना चाहते हैं, स्वर्ग में जाना चाहते हैं"। मेरे प्यारे! देखो यमाचार्य ने कहा, "ब्रह्मचारी! तुम विराजमान हो जाओ और शान्त-मुद्रा में मुद्रित हो करके मेरे वाक्यों को श्रवण करो, मानो दखो तुम स्वर्ग में जाना चाहते हो, तो सुनो।"

स्वर्ग का रहस्य

" 'स्वर्ग' उसे कहते हैं, जहाँ मानव के गृह में, एक-दूसरे की सहमति में गृह का संचालन होता है। वह गृह 'स्वर्ग' कहा जाता है और विद्यालय में ब्रह्मचारी और आचार्य जब दोनों विद्यमान हो करके अपने में उद्गीत गाते हैं और ब्रह्म की गाथा का वर्णन करते हैं, वह अपने में 'स्वर्ग' कहलाता है।" मेरे प्यारे! देखो, यहाँ प्रत्येक मानव अपने में मानवीयता की आभा में रत होना चाहता है और यह एक अकाट्य विचारधारा बनी है कि हमारा स्वर्गीय जीवन होना चाहिए।

स्वर्ग के लिये तपोमयी अग्नि-चयन

बेटा! मैंने इससे पूर्व काल में तुम्हें बहुत सी चर्चाएं कीं हैं, परन्तु आज मुझे स्मरण आ रहा है कि जो 'याज्ञय वर्ण ब्रव्हा कृतं

देवः'? उद्दालक गोत्र के ऋषि, बेटा! देखो वाजश्रवा के पुत्र, बालक नचिकेता ने यमाचार्य से जब यह कहा कि "मैं स्वर्ग में जाना चाहता हूँ"। तो उन्होंने कहा कि, "तीन प्रकार की अग्नि हमारे समीप रहती है–एक अग्नि वह रहती है (गार्हपथ्य-अग्नि), जिसमें ब्रह्मचारी तपता है और द्वितीय अग्नि का नाम देखो (गृहपथ्य-अग्नि है), जिसमें गृह-आश्रम तपा करता है, गृह के माता-पिता अथवा पति-पत्नी जब गृह में प्रवेश होते हैं, उनका जीवन तपोमयी प्रारम्भ होता है और तृतीय अग्नि का नाम वैश्वानर अग्नि है,) जैसे याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा 'तपं ब्रह्मः तपं प्रव्हे राष्ट्रदं ब्रव्हा कृतं देवत्वां तपः' कि यह संसार मानो तपोमय रहता है और बिना तप के मानव का जीवन प्रियता को प्राप्त नहीं होता।"

तप-सर्वस्वता

विचार आता है कि तप किसे कहते हैं? मेरे प्यारे! देखो, उस समय बालक नचिकेता से यमाचार्य ने कहा, "हे ब्रह्मचारी! यह संसार सर्वत्र मानो एक तपोमय निहित हो रहा है। वायु वेग में तपायमान है, गतिवान् बना रही है; अग्नि अपने में मानो देखो, तेजोमयी है, वह तेजवान बना रही है और, वह जो तरलत्व है, वह 'तरल ब्रहे' वह मानो आपो कहलाता है, आपोमयी ज्योतिवान् बना रहा है"। मेरे प्यारे! देखो प्रत्येक स्वरूप अपने में अपनेपन का ही भान कराता रहता है, अपने में मानो वह उसी में प्रतिष्ठित

हो जाता है। तो विचार आता रहता है, यमाचार्य ने कहा, "हे नचिकेत! मानो तुम तीनों प्रकार की अग्नि का पूजन करो और तपोमय रहने के लिए सदैव तुम तत्पर रहो, क्योंकि संसार में प्रत्येक मानव तपायमान है, प्रत्येक मेरी पुत्री तपायमान रहती है, परन्तु तपने के पश्चात् मेरी पुत्री तपोमयी हो जाती है।

मेरे प्यारे! देखो 'तपं ब्रह्मण वृत्तम्', मेरे पुत्रो! राजा अपने राष्ट्र को उन्नत बनाता है और जब वह स्वयं तपायमान है और ब्रह्मज्ञान में तपा करता है तो वह अपने राष्ट्र को उन्नत बनाता है, अपने राष्ट्र को तपोमयी बनाता है इसीलिए संसार का प्रत्येक मानव, प्रत्येक परमाणु अपने में तपा हुआ रहता है। इसीलिए तपस्या करनी चाहिए और गृह तपोमय रहना चाहिए, जिसमें माता-पिता, बाल्यकाल में ब्रह्मचारी, अपने में तपायमान रहते हैं। जब वे गृह में प्रवेश होते हैं तो गृह को भी तपायमान करते रहते हैं। **यदि कोई मानव यह चाहता है कि 'मेरा गृह स्वर्ग बन जाये', माता यह चाहती है, 'मेरा गृह स्वर्ग बन जाये', तो बेटा! स्वर्ग उस काल में बनेगा, जब माता-पिता तपस्वी होंगे और मानो देखो बाल्यकाल में ही जब अपने में अध्ययन करने लगेंगे।**

भगवान् राम का तप

बेटा! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, त्रेता के काल का, जब मुनिवरो! देखो भगवान् राम अयोध्या को विजयी करने

के पश्चात् जब वह अपनी देखो लंका को विजय करने के पश्चात्, अयोध्या में उनका पदार्पण हुआ तो महाराजा भरत, उनके विधाता, उन्होंने कहा कि "प्रभु! आप राष्ट्र को अब संचारु रूप से गति दीजिये।" भगवान् राम ने एक सभा की, जिसमें बेटा! देखो, महाराजा शिव, महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र और भी नाना ऋषि-मुनि विद्यमान थे, जिसमें प्रवाहण जी भी थे, तो मेरे प्यारे! देखो राम ने आचार्य से कहा, "हे भगवन्! भरत जी कहते हैं कि अब तुम राष्ट्र को सञ्चालित करो।" परन्तु उन्होंने कहा अपने आचार्य गुरू से, वशिष्ठ मुनि से बोले, क्योंकि माता अरून्धती भी विद्यमान थी सभा में और शिव को सम्बोधित करके कहा कि "प्रभु! आप तो राजा रहे हैं और राष्ट्र जब ऊँचा बनता है, जब राजा स्वयं तपस्वी होता है। मानो देखो मैं लंका को विजय करके आया हूँ और लंका में मैंने नाना प्रकार की 'प्रतिष्ठप्रहा', मानो देखो लंका में मुझे रजोगुण भी आया है, तमोगुण भी आया है, रजोगुण-तमोगुण मेरे अन्तःकरण में देखो ग्रहण किये रहता है, एक तो मेरी इच्छा यह है कि मैं तपस्या करने के लिए जाऊँ, और मैं बारह वर्ष के पश्चात् अपने राष्ट्र को उन्नत बना सकता हूँ। क्योंकि **यदि राजा में तप नहीं है, तमोगुण से सना उसका अन्तर्हृदय है तो वह हृदयग्राही नहीं होता है, पवित्र नहीं होता है।**"

मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने महाराजा शिव को सम्बोधित करके कहा, क्योंकि महाराजा शिव स्वयं तपस्वी रहते थे और

तपश्चर में रमण करके अपने राष्ट्र को उन्नत बनाते थे, इसी प्रकार राम भी यही चाहते थे कि "मैं अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाऊं?"

मेरे प्यारे! देखो मुझे स्मरण आता रहता है, भरत जी से कहा "हे भरत! तुम अपने राष्ट्र को भोगो।" उन्होंने कहा, "प्रभु! मैं इसको भोग नहीं सकता, यह भोगवाद की कोई वस्तु नहीं है, यहाँ तो मानव को अपने कर्त्तव्य का पालन करना है और राजा यदि कर्त्तव्यवादी नहीं बनेगा तो भगवन्! देखो राष्ट्रीयता नहीं कहलाती, इसीलिए हे भरत ब्रहे! तुम स्वयं तपस्वी बनो।" और, भरत ने भी कहा, "प्रभु! आप तप के लिए जा रहे हैं और मुझे राष्ट्र के लिए बाध्य कर रहे हैं, यह मेरे विचार में नहीं आ रहा है।" उन्होंने कहा कि "वह ब्राह्मण जो होता है, वह बिना तप और देखो स्वर-संगम के बिना ब्राह्मण ऊँचा नहीं बनता और क्षत्रिय जब ऊँचा बनता है, जब वह अपने रजोगुण में तमोगुण की मानो देखो वृत्तियाँ न आने दे। वह रजोगुणी न्याय का वृत्त कहलाता है, उसके गर्भ में सत्य होता है इसीलिए सत्य को ले करके ही तुम मानो देखो अपने में राष्ट्र को प्राप्त कर पालन करो।" भरत ने भी यही कहा, राम ने भी यही कहा, परन्तु देखो यही उन्होंने कहा, "प्रभु! मैं अब तप करने के लिए जा रहा हूँ।"

शासन की अवधारणा

भगवान शिव ने कहा "जाओ, तुम तप करो।" वशिष्ठ मुनि

महाराज ने भी यही कहा कि, ''जाओ, तुम तप करो, राष्ट्र चलता रहेगा। राष्ट्र तो अपने कर्त्तव्यवाद का अनुसरण करता है। **जब प्राणीमात्र में कर्त्तव्यवाद आ जाता है, तो राष्ट्र में शासक की आवश्यकता नहीं रहती। शासक की आवश्यकता वहाँ होती है, जहाँ प्रजा में अकर्त्तव्यवाद आ जाता है।** माता अपने पुत्र को उस समय दण्डित करती है, जब बाल्य मानो देखो उद्‌दण्डता करने लगता है, वह तमोगुण में चला जाता है या रजोगुण में और वह बाल्य यदि सतोगुण में ही रह जाये, तो माता के शासन की आवश्यकता नहीं रहती।'' मेरे प्यारे! देखो, राष्ट्र को भी इसीलिए शासन की आवश्यकता नहीं है, यदि प्रत्येक मानव अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करता है। क्योंकि कर्त्तव्यवाद में लाने के लिए राष्ट्र का निर्माण होता है, राष्ट्र की प्रणालियाँ बनती हैं, राष्ट्र की नियमावली बनती हैं, परन्तु यदि मानव स्वतः अपने कर्त्तव्य का पालन करने लगे, तो बेटा! देखो वहाँ राष्ट्र की आवश्यकता नहीं है। यह भगवान् मनु का वचन है। यह, बेटा! वेद के माध्यम से ही वेद भी यही कहता है। तो मुनिवरो! जब, उन्होंने कहा कि ''प्रभु! 'अमृतं ब्रह्मणे'।'' वशिष्ठ ने कहा ''राम! तुम तपस्या करने चले जाओ और राष्ट्र भी चलता रहेगा।''

तपश्चर्या में अन्न-पवित्रता

बेटा! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है, राम तपस्या के लिए चले

गये और वह भयंकर वन में, बेटा! देखो, भ्रमण करते हुए, जब वनों में पहुँचे, तो बेटा! वहाँ वैशम्पायन मुनि का दर्शन हुआ और वैशम्पायन देखो उनके समीप विद्यमान हो गये। राम ने कहा "प्रभु! मैं तप करने आया हूँ, मैं तप की मीमांसा को नहीं जान पा रहा हूँ। तप किसे कहते हैं?" मेरे पुत्रो! देखो, महर्षि वैशम्पायन बोले, "हे राम! तुम्हें यह प्रतीत नहीं है कि 'राजनं ब्रह्मे तपः, यह तप किसे कहा जाता है? **आहार का पवित्र सेवन करने का नाम तप है, क्योंकि उसी से हमारी प्रवृत्तियों का निर्माण होता है और यदि अन्नाद उसका पवित्र है, तो वहाँ प्रवृत्ति का ऊर्ध्वा में जन्म हो करके और मानव अपने में देखो सतोगुणी बन करके अपने सत् में आधारित हो जाता है।"**

तपोमयी हृदय-याग

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने जब यह कहा कि "तुम तप करो।" परन्तु तप कहते हैं, इन्द्रियों के साकल्यों को जानने का नाम। वही तप है। जो इन्द्रियों के साकल्यों को जानता है अथवा इन्द्रियों के विषयों को जान करके, अपना साकल्य बना करके, बेटा! देखो, ज्ञान का उपार्जन करता है और ज्ञान का उपार्जन करके मानो हृदय रूपी यज्ञशाला में वह हूत कर रहा है, प्रहूत कर रहा है, मेरे प्यारे! देखो, वह भव्यता को प्राप्त हो रहा है।

योगेश्वर का अन्न-जल

विचार आता रहता है, कि जब राम से यह वर्णन कराया वैशम्पायन ने कि तप यह है, तो उन्होंने यह स्वीकार कर लिया। बेटा! देखो, वह कहीं खेंचरी मुद्रा में चले जाते, कहीं प्राणायाम करने लगते। भुझे स्मरण है, छः माह तक उन्होंने देखो वायुमण्डल के प्राण के संचय से, बेटा! देखो, पोषक-तत्वों को ग्रहण किया। और जब जल की इच्छा होती है योगेश्वर को, तो बेटा! वहाँ देखो वह खेंचरी मुद्रा से, मुनिवरो! शीतली प्राणायाम करता हुआ, जल की तृप्ति कर लेता है।

इन्द्रियों का साकल्य

मेरे प्यारे! देखो योग-साधना में जब मानव प्रवेश होता है, तो साधक यह जानता है कि तुझे जितनी भी इन्द्रियों का साकल्य है, (इन्द्रियों का जो साकल्य है—) **नेत्रों का जो साकल्य है, वह रूप है और देखो श्रोत्रों का साकल्य शब्द है, और वाणी का, रसना का साकल्य मानो देखो रस है, खट-रस कहलाते हैं और त्वचा का जो वह मानो देखो साकल्य है, वह प्रेम है। तो इसी प्रकार, मेरे पुत्रो! देखो, घ्राण का जो मानो विषय है, साकल्य है, वह मुनिवरो! देखो, सुगन्ध कहलाती है। तो इन सब साकल्यों को एकत्रित करके साधक, मेरे प्यारे! देखो 'अमृतं ब्रह्मणा वर्णस्सुतम्' वह मेरे प्यारे! देखो, अपने हृदय रूपी यज्ञशाला में याग करता है और वह हृदय को पवित्र बना लेता है।**

परमात्मा से अपने हृदय का मिलान चाहता है तो मेरे पुत्रो! वेद का मन्त्र यह कहता है कि 'तपं ब्रव्हा'। वैशम्पायन ने यह निर्णय कराया कि "हे राम! तुम अब प्राणायाम करो, सब साकल्यों को एकत्रित करो और साकल्य के द्वारा तुम हूत देना प्रारम्भ करो, जिससे तुम्हारा अन्तर्हृदय मानो पवित्रता की बेला में परिणित हो जाये और पवित्रत्त्व को प्राप्त हो करके, तुम्हारा मनोनीत ऊर्ध्वा में गमन करता रहे।" तो मेरे पुत्रो! देखो, इस प्रकार की जो विचारधाराएं हैं, विचार हैं, इसमें वे विचार-विनिमय करते रहे हैं।

वाणी-पवित्रीकरण

आओ, मेरे पुत्रो! मैं इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा नहीं देने आया हूँ, विचार-विनिमय केवल यह है कि राम देखो गायत्री छन्दों का पठन-पाठन करने लगे, वाणी को पवित्र बनाने के लिए। **जैसे यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान हो करके स्वाहा-स्वाहा की ध्वनि से ध्वनित हो जाता है, अन्तरिक्ष में अपनी वाणी को प्रसारित कर देता है, मेरे प्यारे! उसी प्रकार राम ने गायत्री छन्दों का पठन-पाठन किया।** और, मुनिवरो! देखो महर्षि वैशम्पायन से समय-समय पर देखो अन्न को ग्रहण करते रहे।

बेटा! देखो मुझे स्मरण है, छः माह तक उन्होंने प्राण के द्वारा ही पोषक-तत्वों को ग्रहण किया और प्राण के द्वारा ही तो,

मुनिवरो! खेंचरी मुद्रा से उन्होंने जल के परमाणुओं का सेवन किया, ऋत् और सत् को ग्रहण करते हुए। देखो सत् में ब्रह्म है, और ऋत् में प्रकृति है। इन दोनों को जानने वाला ही, मेरे प्यारे! देखो, तपस्वी कहलाता है और वह याज्ञिक पुरूष, मेरे पुत्रो! देखो, अपने में महान् बन जाता है।

मैं इस सम्बन्ध में न जाता हुआ विचार-विनिमय क्या? मुनिवरो! देखो, 'स्वर्ग' कैसे प्राप्त होता है? अरे, स्वर्ग वही कहलाता है, 'स्वर्गश्चत प्रव्हा कृतं देवत्वं ब्रव्हा', मेरे प्यारे! प्रत्येक मानव अपने में शब्दायमान रहता है। **प्रत्येक मानव अपने में आनन्द को ही चाहता है, स्वर्ग की कामना करता रहता है, परन्तु ज्ञान और वेद से ही मानव को स्वर्ग प्राप्त होता है।** मेरे पुत्रो! देखो, 'अमृतम्' मुझे राम का वह तप स्मरण है, जब राम तप करते तो ऋषि-मुनि उनके समीप आ करके, बेटा! अपनी-अपनी वार्त्ता प्रगट करते और ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ते रहे हैं। तो राम अपने में बड़े पुण्यत्त्व को प्राप्त होते रहे हैं।

गृह में स्वर्ग

मेरे प्यारे! देखो, मुझे स्मरण आता रहता है, मैं वहीं तो जाना चाहता हूँ, बालक नचिकेता ने जब यह प्रश्न किया, ब्रह्मचारी ने कि "हे प्रभु! मैं स्वर्ग को चाहता हूँ।" मेरे पुत्रो! देखो, उन्होंने कहा कि **"स्वर्ग वह होता है, जहाँ माता-पिता**

पवित्र होते हैं और माता-पिता, मुनिवरो! देखो, नाना प्रकार के यागों में परिणित रहते हैं, ब्रह्म-याग करते हैं। प्रातः कालीन्, मानो जब उनके नेत्रों में जागरूकता आती है, तो उस समय, मुनिवरो! वे गान गाने लगते हैं और गान गा करके, मुनिवरो! अपने को अभ्योदय करके, अपने को ऊर्ध्वा में और अपने में मानो देखो, प्रातःकालीन अपनी क्रियाओं से निवृत्त हो करके, वे स्वतः याग करते हैं। कहते हैं. "प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा और समानाय स्वाहा।" मेरे पुत्रो! वे कहते हैं 'अमृतम्' और मेरे पुत्रो! "उदानाय स्वाहा" कह करके, इस प्रकार प्रातःकालीन, वे हूत करने वाले प्रातःकालीन, मानो देखो, अपनी अन्तरात्मा की वार्त्ताओं को स्वीकार करने लगते हैं और परमपिता परमात्मा से कहते हैं "हे परमात्मन्! तू कितना विचित्र और महान् बन करके हमारे अन्तर्हृदयों में प्रवेश हो रहा है।" जब इस प्रकार मानव उद्गीत गाता है, तो मेरे पुत्रो! देखो, ममत्व अपने में धारयामि बन जाता है।

तो विचार आता रहता है, मुनिवरो! देखो 'अमृतं ब्रव्हे' इसीलिए बालक नचिकेता से आचार्य ने कहा, "हे नचिकेत! यदि तुम्हें स्वर्ग को लाना है, तो माता-पिता को गायत्री छन्दों का प्रातःकालीन् पठन-पाठन करते हुए, उनके अंग-संग रहने वाले जो बाल्य-बालिका हैं, उनको श्रवण करते रहते हैं और जो माता-पिता के सुन्दर विचार हैं, तो देखो, बाल्यों के भी विचार सुन्दर बन जाते हैं, वे भव्यता को प्राप्त हो करके अपने में रत हो जाते हैं।"

तो मेरे पुत्रो! देखो यह उन्होंने अपना व्यक्तव्य दिया और विचार-विनिमय देते हुए कहा, ''सम्भूति ब्रह्मणा सम्भव लोकां ब्रव्हा वर्चस्सुतं प्रव्हे' वेद का वाक्य कहता है कि हम अपने में मानो वृत्तियों को प्राप्त करते रहें, मेरे प्यारे! अपने में मौन होते रहें।'' तो इस प्रकार, **मुनिवरो! देखो, माता-पिता प्रातःकालीन् ब्रह्म से चर्चा करते हैं और देव-पूजा के समय देव-पूजा करते हैं और मनन करने से, मानो देखो, मननशीलता की प्राप्ति हो जाती है।**

गृहपथ्याग्नि-पूजन

मेरे प्यारे! मैं कहाँ चला गया हूँ? विचार यह दे रहा था कि अपने में ही, मानो देखो, गार्हपथ्य नाम की अग्नि का पूजन हो और गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन हो। बेटा! 'गृहपथ्य' उसे कहते हैं, जहाँ पति और पत्नी एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके, ब्रह्म की उड़ान उड़ते हैं और ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए उनके गृह में रहने वाले बाल्य-बालिका, माता-पिता के वाक्यों को श्रवण करते हैं तो वह गृह स्वर्ग बन जाता है।

मेरे प्यारे! देखो यमाचार्य ने कहा, ''हे नचिकेत! ये अग्नि के चयन कहलाते हैं। देखो अग्निमान बन करके अपने में अग्नि से अग्नि का चयन करता रहता है। मेरे पुत्रो! देखो, जब उन्होंने यह वाक्य प्रगट कराया, 'अमृतां स्वर्गश्चत प्रव्हा', **जहाँ, मुनिवरो! देखो, ब्रह्म की आभा विद्यमान रहती है, वहीं तो**

स्वर्ग है! मुनिवरो! देखो, एक प्राणी, प्राणी के स्नेह में लगा हुआ है, वहीं तो स्वर्गश्चर कहलाता है। तो बेटा! देखो, प्रत्येक प्राणी को स्वर्ग में जाना चाहिये। परन्तु स्वर्ग की कल्पना भी करनी चाहिए कि "मैं स्वर्ग को प्राप्त हो जाऊं और 'स्वर्गश्चर प्रव्हा' मैं परमपिता परमात्मा के दर्शनों में रत हो जाऊं।"

राष्ट्र में स्वर्ग

मेरे प्यारे! देखो यह वेद का मन्त्र है, वेद का मन्त्र हमारा क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए और वह हमारा पुरोहित बन करके हमारे लिए नाना प्रकार की आभाएं हमें प्रगट करता है। तो ऐसा, बेटा! देखो, आचार्यों का अपना-अपना मन्तव्य रहा है, क्योंकि आचार्यों का जीवन, बड़ा विचित्र बन करके रहा है। तो बेटा! देखो, राम ने बारह वर्ष इस प्रकार का तप किया, बेटा! वायु का सेवन करते हुए। कहीं जल का, आपो का सेवन है, कहीं वायु 'अमृतम्' सेवन है। मेरे पुत्रो! देखो, उसे वह ग्रहण करता रहता है, और ग्रहण करता हुआ, मुनिवरो! देखो, 'अमृतम् ब्रह्म कृतं देवत्वम् अप्रं ब्रहे', मुनिवरो! देखो रजोगुण और तमोगुण दोनों शान्त कर देने चाहिए। **राजा राष्ट्र के योग्य जब ही होता है, जब कि उसके यहाँ तमोगुण न रहे और रजोगुण विशेष न रहे, परन्तु यह तप सम्पन्न हो जाने चाहिए।**

मेरे पुत्रो! देखो मुझे वह काल स्मरण आता रहता है, जब

भगवान् राम ने इस प्रकार बारह वर्ष का तप किया। उस अन्न को ग्रहण करते थे, जिस अन्न में किसी का अधिकार नहीं था, इसीलिए ऋषि-मुनि को विवेक हो जाता है। तो बेटा! उन्हें विवेक हो जाता है और विवेकी जो पुरूष होता है, मानो उसमें विडम्बना नहीं होती और वह विडम्बना से पार होता है। तो इसीलिए विडम्बनित नहीं होना चाहिए। भगवान् राम ने, बेटा! बारह वर्ष का तप करने के पश्चात् उन्होंने, मेरे प्यारे! देखो, भयंकर वन को त्यागा। वह स्थली त्यागी, जहाँ एक-दूसरा, एक-दूसरे के शब्द, एक-दूसरे को मानो मानव अपने को रत्त कर रहा है।

आओ, मेरे प्यारे! राम का बारह वर्ष का तप पूर्ण हो गया। बारह वर्ष तक उन्होंने तप किया, तो बेटा! देखो तप करने के पश्चात् अयोध्या में उनका पुनः से गमन हुआ। नगरी बड़ी प्रसन्न है, यह कहती है कि "हमारे सखा राम हैं।" यह उच्चारण करके, बेटा! अपने में यह धारणा बनी रहती है कि 'तपो तपं ब्रह्मणः अग्नं ब्रव्हे ब्रह्मचरिष्यामी'। **वेद का वाक्य कहता है कि राजा को तपना चाहिये और ब्रह्मवेत्ता बनना चाहिये। ब्रह्मवर्चोसी बन करके ही उससे राष्ट्र में प्रजा का निर्णय लें। तो मेरे प्यारे! देखो, राम ने अपना तमोगुण समाप्त कर दिया, रजोगुण की प्रतिभा को भी समाप्त कर दिया, मानो देखो, अपने में रत हो गये।**

विचार यह प्रतीत हुआ कि राम ने बारह वर्ष का इस प्रकार

तप करने के पश्चात् अयोध्या में उनका आगमन हुआ और अयोध्या में पुनः वह सभा की और उन्होंने कहा, "प्रभु! उच्चारण करो, मैं कैसा राज्य कर सकता हूँ?" उन्होंने, मेरे प्यारे! देखो, ब्रह्मचारी कबन्धी ने एक वाक्य यह कहा कि "यह कोई निर्णय नहीं दे पायेगा।" परन्तु 'निर्णयां भूः कृतं देवत्वम् ब्रह्मः वर्णस्सुतं ब्रव्हे'। मेरे पुत्रो! देखो, उन्होंने यह कहा कि "सम्भवा कृतम्'। वेद का आचार्य कहता है, 'अमृतां ब्रव्हे कृतम्"। मेरे प्यारे! देखो, राम का तप पूर्णता को प्राप्त हुआ और अयोध्या में आने के पश्चात् उन्होंने भरत जी से कहा, "जाओ, तुम तपस्वी बनो, अब मैं इस राष्ट्र को संचालन करूंगा। मैं अपने को संचालन और गति दूंगा, परन्तु राष्ट्र में पुनः गति आ जायेगी। राष्ट्र तो मानो देखो समाज में चेतनता है, परन्तु मार्ग-दर्शक मानो कोई प्राणी होता है।" राम इस प्रकार के देखो दर्शक थे, मार्ग-दर्शकवेत्ता थे कि उनका जीवन पवित्रता में रत होता रहा।

मेरे पुत्रो! मुझे वह काल जब स्मरण आने लगता है, तो अन्तरात्मा गद्गद हो जाता है और अन्तरात्मा से मैं यह कहता रहता हूँ, 'सम्भव ब्रह्मः सम्भवं लोकां, सम्भवं रूद्रो शासक ब्रहे वाचन्नमं ब्रव्हे कृतं देवत्वां लोकाः' **मेरे प्यारे! देखो, इस प्रकार का जो राष्ट्र होता है, वह लोक-लोकान्तरों में रमण करता है। ऐसे जो माता-पिता होते हैं, जो गृह को मानो पवित्र बनाने में लगे हुए हैं, अपने क्रियाकलाप ऊँचे बनाते हैं, प्रातःकालीन् याग हो रहा है, परन्तु बाल्य-बालिका सब**

श्रवण करते हैं, ब्रह्म का चिन्तन कर रहे हैं, तो वे भी अपने श्रोत्रों में भरण कर रहे हैं। मेरे प्यारे! देखो, वह मानव, वह राष्ट्र, बेटा! कितना सौभाग्यशाली है, जिस राजा के राष्ट्र में मानो इस प्रकार की प्रतिभा और राजा स्वयं ब्रह्मवेत्ता हो! क्योंकि ब्रह्मवेत्ता ही राष्ट्र को ऊँचा बना सकता है, ब्रह्मवेत्ता ही राष्ट्र को कुछ पदार्थ दे सकता है। इसीलिए देखो, ब्रह्मवेत्ता बनना बहुत अनिवार्य है।

तो आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार क्या? मुनिवरो! देखो, बिना तप के न तो राष्ट्र ऊँचा बनता है, न गृह ऊँचा बनता है और न ब्रह्मचर्य ऊँचा बनता है। हे ब्रह्मचारियो! यहाँ गृहपथ्य नाम की अग्नि और वैश्वानर नाम की अग्नि का चयन होना चाहिये, जिससे अग्नि को धारण करके मानव के जीवन में प्रकाश आ जाता है, मानव प्रकाशित हो करके रमण करता है तो उसके प्रकाश को हमें अपना लेना चाहिए।

आओ, मेरे पुत्रो! मैं तुम्हें विशेष चर्चा नहीं प्रगट करूँगा, परन्तु केवल यह कि राम का तप मुझे देखो, अद्वितीय तप दृष्टिपात् आता है। उनके जीवन में तप ही तप रहा है। ब्रह्म-ज्ञान ही ज्ञान रहा है। वह ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ करके, बेटा! समाज को ऊँचा बनाते रहे हैं। मुनिवरो! देखो जब यह वाक्य उन्होंने अपने में धारयामी कर लिया, 'धरणं ब्रह्मे धरणस्सुतं

ब्रह्मा'। वह ब्रह्मवर्चोसी कहलाता है, जो परमपिता परमात्मा है, वह 'धरणस्सुतम्' वह धरणी का स्वामी है, मानो देखो वह ब्राह्मण है, वह अपने में द्रव्य-पति है, वह अपने में हीनता में हीन है और कृतियों को रत कर रहा है। परन्तु यह कैसा! अनुपम जगत् है! मेरे पुत्रो! कैसी अनुपम धारणा है! अरे! नाना प्रकार की मालाएं बनती हैं, परन्तु माला भी सूत्र में पिरोयी हुई हैं, जैसे हमारा जीवन है, मानो एक-एक परमाणु मनका बन करके ब्रह्म-सूत्र में पिरोया हुआ है, या उसे आत्म-सूत्र कह सकते हैं और उसमें पिरोते-पिरोते, बेटा! मानव कहाँ चला जाता है! वाह रे, मेरे प्यारे! इतना ऊर्ध्वा में साधक बन जाता है! वह साधना में परिणित होता हुआ, मुनिवरो! देखो, नाना प्रकार के लोक-लोकान्तरों की उड़ानें उड़ने लगता है!

मेरे प्यारे! देखो, विचार-विनिमय विशेष नहीं, विचार केवल यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती का गुणगान गाते हुए हमें परमपिता परमात्मा के इस अनूठे जगत् को जान लेना चाहिये और अनूठे जगत् में परिणित हो जाना चाहिये। मेरे पुत्रो! देखो, जैसे मानवीय जीवन में पवित्रता की धारा बन करके ......।

ए॰जी॰सी॰आर॰ एन्क्लेव, दिल्ली १३-३-९१

मृत-अमृत-बोध

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गये हैं और जितना भी यह जड़-जगत् अथवा चैतन्य-जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, प्रायः वह परमपिता परमात्मा दृष्टिपात् आते रहते हैं; क्योंकि वह परमपिता परमात्मा हमारे पुरोहित हैं और पुरोहित उसे कहा जाता है जो पराविद्या के देने वाला है।

दो विद्याएं

हमारे यहाँ, विद्या के सम्बन्ध में नाना प्रकार का विचार-विनियम होता रहा है। **दो प्रकार की विद्या का हमारे यहाँ विश्लेषण होता रहा है—एक परा-विद्या है, एक अपरा है। अपरा-विद्या उसे कहते हैं, जिससे संसार का ज्ञान होता है और परा-विद्या उसे कहा जाता है, जिसमें (साधक) परमपिता-परमात्मा की महती का वर्णन करता रहा है और**

उसमें आध्यात्मिकवाद और यौगिकवाद सदैव निहित रहता है। इसीलिए वह परमपिता परमात्मा पुरोहित कहा जाता है, जो दोनों प्रकार के ज्ञान और विज्ञान का स्वामित्व और निधित्व करने वाला है। तो हम उस परमपिता परमात्मा, जो महिमावादी है और जो हमारा पुरोहित है, सखा है, हम उस परमपिता परमात्मा की महती का सदैव गुणगान गाते रहें। क्योंकि वह संसार का रचयिता है, वह रचने वाला है इसीलिए हम परमपिता परमात्मा की महिमा अथवा उसके गुणों का सदैव गुणवादन करते रहें।

प्रेरणा-स्रोत

आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है, क्योंकि **परमपिता परमात्मा का जितना भी ज्ञान है, विज्ञान है, वह प्रेरणादायक है और इस संसार में जितनी भी प्रेरणाएं हैं, उन प्रेरणाओं का स्रोत्र हमारा हृदय माना गया है और हमारे हृदय का जो समन्वय रहता है, वह परमपिता परमात्मा के हृदय से रहता है।** तो इसीलिए हृदय में नाना प्रकार की प्रेरणाएं आती रहती हैं और मानव उन प्रेरणाओं का स्रोत्र बना हुआ है। प्रेरणा पाता रहता है, प्रेरित होता रहता है और नाना प्रकार के क्रियाकलापों में सदैव वह रत रहता है।

हृदय की आकांक्षा

आओ, मुनिवरो! देखो, आज का हमारा वेद का मन्त्र कुछ

कह रहा है। **क्योंकि संसार में मानव जितने भी नाना प्रकार के अनुष्ठान करता रहा है, जितने भी संसार के क्रियाकलाप हैं, मानव जो भी करता रहा है, सर्वत्र उसके गर्भ में कोई न कोई प्रेरित (भाव) है, मानो कोई प्रेरणा है और प्रत्येक मानव के हृदय में एक आकांक्षा लगी रहती है कि मैं आनन्द को प्राप्त करूँ, क्योंकि प्रत्येक मानव आनन्द का उत्सुक रहता है।** और वह नाना प्रकार के व्रत करता है, व्रती बनता है, परन्तु और भी नाना प्रकार के क्रियाकलापों में सदैव वह रत रहता है। अनुष्ठान कर रहा है, वह याग कर है, कहीं आध्यात्मिक याग में परिणित हो जाता है और कहीं वह भौतिक-याग में रत हो जाता है। परन्तु वह नाना प्रकार के क्रियाकलाप क्यों कर रहा है? बेटा! उसके पिछले विभाग में यह है कि प्रत्येक मानव अपने में आनन्द को प्राप्त करना चाहता है और उसके मनोनीत हृदय में एक ही प्रेरणा रहती है, एक ही आभा रहती है कि मैं आनन्द को प्राप्त करूं। परन्तु वह पुत्र से स्नेह कर रहा है, पुत्री से स्नेह कर रहा है और भी नाना प्रकार के मानव क्रियाकलापों में रत हो करके, उससे वह यही चाहता है कि मैं आनन्द को प्राप्त हो जाऊँ और क्योंकि सत् हूँ, सत् और चित्त मेरे समीप हैं, उसके पश्चात् भी वह आनन्द के लिए प्रेरित रहता है।

शरीर और आत्मा

मेरे प्यारे! देखो, मुझे बहुत सी वार्ताएं स्मरण आती रही हैं।

ऋषि-मुनियों का जो विचार है, वह बड़ा भव्य रहा है। राजा भी अपने राष्ट्र का पालन कर रहा है, मानो वह भी अपने राष्ट्र में एक अश्वमेध याग कर रहा है, कहीं वाजपेयी याग में लगा हुआ है, कहीं मानो अजामेध याग में परिणित हो रहा है, नाना प्रकार से देखो मानो राष्ट्र को उन्नति में लगाता है। उसके हृदय में यही प्रेरणा रहती है कि मैं आनन्द को प्राप्त करूँ।

देखो मानव, एक दार्शनिक रूपों में गमन करता है और एक मेरी प्यारी माता अपने में व्याकुल हो रही है और जब वह व्याकुल हो रही है तो एक दार्शनिक कहता है, "हे मातेश्वरी! तू क्यों रूदन कर रही है? क्यों इस प्रकार व्याकुल हो रही है?" तो माता कहती है कि "मेरा पुत्र मृत्यु को प्राप्त हो गया है इसीलिए मैं मानो देखो व्याकुल हो रही हूँ।" वह दार्शनिक कहता है, "हे माता! यह आत्मा तेरा पुत्र है या शरीर तेरा पुत्र है?" मेरे प्यारे! देखो, माता मौन हो जाती है। यदि वह शरीर को अपना पुत्र कहती है तो शरीर तो ज्यों का त्यों शव के रूप में विद्यमान है और यदि वह आत्मा को अपना पुत्र कहती है, तो बेटा! आत्मा को माता नहीं जानती है कि आत्मा कितना विशाल है, कैसा उसका रंग-रूप है, परन्तु वह माता दोनों ही स्वरूपों में अपने में मौन हो जाती है। तो विचार आता रहता है कि दार्शनिक अपने में चिन्तन करता हुआ कहता है, "हे ममब्रव्हा! तू व्याकुल न हो, क्योंकि ज्ञान ही मानो सार्थक तेरा गुण है। आत्मा का जो गुण है, वह 'ज्ञान और प्रयत्न' है। तू आत्मा के क्षेत्र में रमण करने का प्रयास कर।"

जमदग्नि-आश्रम में प्रकाश-चर्चा

मेरे प्यारे! आओ, आज मैं तुम्हें इस क्षेत्र में नहीं ले जाना चाहता हूँ। आज मैं तुम्हें, बेटा! एक ऋषि-मुनियों के क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ ऋषि-मुनि नाना प्रकार की उड़ानें उड़ते रहे हैं। वे अपने में बड़ी विचित्र उड़ानें उड़ते रहे हैं। बेटा! मुझे वह काल स्मरण आ रहा है, जब महात्मा महर्षि जमदग्नि आश्रम में, बेटा! एक सभा हुई। क्योंकि हमारे ऋषि-मुनियों का एक मन्तव्य रहा है, चिन्तन करने का कि वे यह चाहते हैं, 'आध्यां भूः वर्णं ब्रह्मः वृत्तं देवाः', वेद का वाक्य कहता है कि **देखो इस भौतिक-जगत् को आध्यात्मिकवाद में जो परिवर्तित कर देता है, वही मानो देखो बुद्धियुक्त अपने में रत रहता है।** विचार-विनिमय क्या? मुनिवरो! देखो, हमारे यहाँ, अन्धकार के ऊपर परम्परागतों से ही विचार-विनिमय होता रहा है कि 'अन्धकार से हम प्रकाश में कैसे जा सकते हैं? कौन सा ऐसा अनुष्ठान है, जिसमें हम सदैव रत रह सकते है?'

मेरे पुत्रो! देखो, मुझे वह काल स्मरण आ रहा है, जिस काल में, बेटा! देखो महात्मा जगदग्नि आश्रम में एक सभा हुई थी और महर्षि जमदग्नि आश्रम में उस सभा में नाना ऋषिवर विद्यमान थे, जिनमें, बेटा! देखो महर्षि प्रवाहण, महर्षि शिलभ, महर्षि दालभ्य, महर्षि रेणकेतु, देवर्षि नारद, महर्षि सोमव्रतीति और महर्षि वैशम्पायन और, मुनिवरो! देखो, इसमें ब्रह्मचारी सुकेता,

ब्रह्मचारी कबन्धी, ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु, और ब्रह्मचारी व्रतीव्रता, मेरे प्यारे! श्वेताश्वेतर और महर्षि भारद्वाज इत्यादि ऋषि-मुनियों का बेटा! एक समूह विद्यमान था, जिसमें बेटा! महर्षि पिप्लाद और, मुनिवरो! देखो चाक्रायणी गार्गी भी विद्यमान थी। मेरे पुत्रो! देखो उस सभा में नाना ऋषि-मुनि अपने में एकान्त विद्यमान हो करके कुछ विचार-विनिमय करने के लिए तत्पर हुए।

मृत्यु-बोध

इतने में, बेटा! एक वेद-मन्त्र महर्षि महात्मा जमदग्नि ने उद्‌गीत रूप में गाया और उन्होंने कहा, "हे ऋषियो! तुम्हें यह प्रतीत है कि आज मैंने तुम्हें निमन्त्रित करते हुए, मानो कुछ विचार-विनिमय करने के लिए हम सब तत्पर रहे हैं और हमारा यही मन्तव्य है, 'ब्रह्मणा आवृत्तं देवत्व प्रव्हा मृत्युञ्जयं ब्रव्हा कृतं देवः'।" उन्होंने कहा कि "यह वेद-मन्त्र क्या कह रहा है? इसके ऊपर विचार-विनिमय करना है।" बेटा! वेद-मन्त्र कह रहा था, कि 'संसार में मृत्यु क्या है?' इस मृत्यु के ऊपर मानव, बेटा! परम्परागतों से अध्ययन करता रहा है, परन्तु मनन और चिन्तन करता रहा है और यह विचारता रहा है कि यह मृत्यु क्या है, जिसके ऊपर मानव अपने में रुदनयुक्त हो रहा है? मेरे प्यारे! देखो, उसमें जब वह प्रथम वेद-मन्त्र का उद्‌गीत गाया, ऋषि अपने में मौन हो गये। अब ऋषिवर भी सर्वत्र मौन हो गये।

मेरे पुत्रो! देखो इतने मे चाक्रायणी गार्गी उपस्थित हुई।

चाक्रायणी गार्गी ने यह कहा कि "मेरे विचार में यह आता है कि शरीर का और आत्मा का विच्छेद होना ही, मानो देखो इसी में अन्धकार प्रतीत होता है, मृत्यु प्रतीत होती है। आत्मा का विच्छेद हो गया है शरीर से, मानो देखो उसी का नाम मृत्यु है।" इतने में, बेटा! देखो महर्षि भृंगी ने कहा कि "हे दिव्या! मैं यह जानना और चाहता हूँ कि देखो आत्मा और शरीर का, दोनों का विच्छेद होने का नाम मृत्यु नहीं बनता। क्योंकि मृत्यु उसे कहते हैं, जो केवल अन्धकार है मानो शून्य-बिन्दु है, उसी को अन्धकार की प्रतिभा में रत कहते हैं।"

परमाणुवाद और विकास

मेरे प्यारे! देखो, महर्षि पिप्लाद ने कहा " 'सर्वणं ब्रव्हे कृतं देवत्वां अवृति विधः' मानो तुम यह कैसे उच्चारण कर सकते हो, ऋषिवर! कि मानो एक शून्य-बिन्दु में अन्धकार है? क्योंकि शून्य-बिन्दु में तो जगत् विद्यमान रहता है। क्योंकि यह जो संसार है, यह क्या है? यह जो जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, यह बिन्दु है और बिन्दु से विकास है और विकास से पुनः देखो यह बिन्दु में परिणित हो जाता है। मानो देखो जगत् का जो विकास है, यह परमाणुवाद है और परमाणुवाद में तुम यह स्वीकार करते हो कि देखो जब 'अग्नं ब्रह्मे' देखो महतत्व से परमाणुओं की गति प्रारम्भ होती है, अन्तरिक्ष में परमाणुओं की गति हुई, वह परमाणु अग्नि के रूप में आये और अग्नि में अग्नि के परमाणुओं का

देखो जब उग्र रूप बनता है, तो उस समय आपोमयी जल के परमाणु उत्पन्न हो जाते हैं और जल के परमाणुओं से स्वाभाविक गुरूत्व उत्पन्न हो जाता है, मानो देखो परमाणुओं से ही संसार का निर्माण हो जाता है। यह कैसे स्वीकार करेंगे?'' मेरे प्यारे! देखो उनका भी विचार सार्थक बन गया, 'अमृतं ब्रह्मणा वृत्तं।'

अन्धकार से प्रकाश तक

मेरे प्यारे! महर्षि पिप्लाद मुनि ने जब यह कहा कि ''देखो यदि मेरा विचार लिया जाये तो एक वेद-मन्त्र मुझे स्मरण है और वेद-मन्त्र कहता है, 'अन्धकारां भूः वर्णनं ब्रव्हे कृतं देवत्वं प्रव्हा वर्णस्सुति असुतां देव धनं ब्रव्हा'।'' महर्षि पिप्लाद मुनि ने ब्रह्मवेताओं के मध्य में कहा कि **''मेरे विचार में तो मृत्यु मानो देखो अन्धकार को कहते हैं। अन्धकार को त्यागा और मृत्यु चली गई, प्रकाश आ गया और वही प्रकाश मानव का जीवन माना गया है।''**

मेरे पुत्रो! जब महर्षि पिप्लाद मुनि ने अपना यह व्यतव्य दिया, अपना निर्णय दिया तो इसके ऊपर कुछ विचार-विनिमय होने लगा, परन्तु इसके ऊपर किसी ने कोई टिप्पणी अब तक नहीं की है। देवर्षि नारद मुनि ने कुछ अपनी टिप्पणी प्रारम्भ की। उन्होंने कहा, ''देखो यदि अन्धकार मृत्यु है तो 'अन्धकारं भूः वर्णनं', अन्धकार क्या है?'' उन्होंने कहा, **''अन्धकार उसे कहते हैं, जो जैसी वस्तु है, उसको वैसा न उच्चारण करना ही,**

मानो देखो अन्धकार कहा जाता है। यदि जैसी वह वस्तु है, उसका उसी प्रकार का जब विश्लेषण होता है, अथवा उसके ऊपर विचार-विनिमय होता है और मानव समाधिष्ठ हो करके भी विचार-विनिमय करता है, उसका जो अन्तिम तथ्य माना गया है, उसका नाम प्रकाश माना गया है। परन्तु अन्धकार उसी को कहते हैं, जो जैसा नहीं है, उसे उस प्रकार का वर्णित किया जाता है।"

मेरे पुत्रो! देखो वह ऋषि-समाज में 'अवृत्तम्' उद्गीत गा करके अपने में मौन हो गये। मेरे प्यारे! पिप्लाद मुनि ने जब अपना यह निर्णय दिया। इतने में, बेटा! देखो संध्या का काल हो गया, संध्या का काल होते ही ऋषि-मुनियों ने कहा कि "इसके ऊपर विचार-विनिमय कल प्रातःकालीन् होगा। परन्तु अब तो इस प्रकार हमारा जो 'वर्णनं वृत्ति देवात्वां' संध्या-काल आ गया है, सूर्य और रात्रि का, दोनों का सम्मिलन हो गया है, अब हम मानो यह विचार नहीं करेंगे। संधि का काल हो गया। मेरे प्यारे! सब ऋषि-मुनि अपने-अपने कक्ष में जा पहुंचे।

पिप्पलाद और शकुन्तका की प्रकाश-चर्चा

महर्षि पिप्लाद मुनि को बहुत समय हो गये थे मानो देखो उनका आश्रम भी निकटतम था, वहाँ से सांत्वना दे करके, बेटा! अपने आश्रम के लिये उन्होंने प्रस्थान किया। वह अपने आश्रम में पहुंचे तो वहाँ उनकी पत्नी शकुन्तका, मेरे प्यारे! ऋषि के

चरणों को स्पर्श करके व्याकुल होने लगी। उन्होंने कहा "देवी! तुम व्याकुल क्यों हो रही हो?" उन्होंने कहा "हे प्रभु! मेरा एक सात वर्षीय पुत्र था, वह मृत्यु को प्राप्त हो गया है। हे प्रभु! इसलिए मैं व्याकुल हो रही हूँ।" उन्होंने कहा "हे दिव्या! तुम्हें यह प्रतीत है कि मैं ब्रह्मज्ञान की वार्ता प्रगट करता रहता हूँ और ब्रह्मवेत्ताओं में मैं अपना निर्णय देता रहता हूँ कि मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं होती है। हे देवी! तुम ऐसा उद्गीत गा रही हो कि जिससे मुझे विश्वास नहीं हो रहा है कि जब मैं यही कह रहा हूँ कि मृत्यु कोई वस्तु नहीं है, तो तुम व्याकुल क्यों हो रही हो?"

शरीर-संरचना का रहस्य

मेरे पुत्रो! देखो, दद्ड़ीय गोत्र में उनका जन्म हुआ था, देवी का, वह महान् थी, परन्तु ब्रह्मवेत्ता होने से उन्होंने कहा "तो प्रभु! यदि मानो देखो यह मृत्यु कोई वस्तु नहीं होती तो, हे प्रभु! यह मेरा शरीर क्या है?" उन्होंने कहा "यह जो तुम्हारा शरीर है, यह परमाणुओं का संघात है और यह परमाणु देखो अपनी आभा में भ्रमण करने लगते हैं और परमाणु ही बलवती हो करके एक-दुसरे परमाणु को जन्म देते हैं और जन्म देने से ही सर्वत्र मानो यह शरीर इतना प्रबल हो जाता है। तुम्हें यह प्रतीत है कि माता के गर्भस्थल में शिशु रूप होता है और वही शिशु रूप माता की लोरियों का पान करता है। लोरियों का पान करके माता के

संरक्षण में मानो देखो परमाणुओं से मानो बलवती होता रहता है। और वही बाल्य जब बलवती हो करके देखो वह 'अमृतम्' देखो 'दुग्धां ब्रव्हा' माता की लोरियों को त्याग करके वह मानव प्रकृति के, माता वसुन्धरा के क्षेत्र में आ जाता है, माता वसुन्धरा के गर्भ से जो नाना प्रकार का खाद्यान्न उत्पन्न हो रहा है, अथवा खनिज उत्पन्न हो रहा है, परमाणु स्पर्श होते रहते हैं और बलवती होता रहता है, वह युवा-अवस्था को प्राप्त हो जाता है। युवा से मानो देखो वृद्धपन आ जाता है। हे देवी! देखो यही तुम्हारा शरीर है। यह परमाणुओं का संघात है।"

शरीर से पूर्व परमाणु-गति

मेरे पुत्रो! देखो देवी ने कहा "प्रभु! चलो मैंने यह स्वीकार कर लिया है, परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ, जब मानो यह मेरा शरीर नहीं था तो यह परमाणुवाद कहाँ रहता था?" उन्होंने कहा "हे दिव्या! जब यह तुम्हारा शरीर नहीं था, तो यही परमाणुवाद मानो देखो माता के गर्भस्थल में विद्यमान था। माता के गर्भस्थल में इन्हीं परमाणुओं से तुम्हारे शरीर का निर्माण हो रहा था। माता के गर्भ-स्थल में निमार्णवेत्ता निर्माण कर रहा था और वह 'निर्माणं ब्रह्मः वर्णनं ब्रव्हे कृतम्' मानो वही परमाणुवाद है, जो माता के गर्भस्थल में मानो एक बिन्दु है और बिन्दु में शिशु है और वह शिशु ही, मानो परमपिता परमात्मा उसका निर्माण करने वाला है।"

शरीर-निर्माणवेत्ता

वह जो देवता है, जो निर्माण कर रहा है, बेटा! इस मानव शरीर का मेरी भोली माता को ज्ञान नहीं होता, कौन निर्माण कर रहा है? कौन निर्माणवेत्ता है? मेरे पुत्रो! देखो 'अमृताम् ब्रह्मः' वह अमृत को प्राप्त हो रहा है। माता की रसना के निचले विभाग में एक चन्द्रकेतु नाम की नाड़ी होती है, उस नाड़ी का समन्वय माता की पुरातत नाम की नाड़ी से होता है और पुरातत नाम की जो नाड़ी है, उसका समन्वय माता की लोरियों से होता है, और वहाँ से पंचम नाड़ी बन करके चलती है, जिसका सम्बन्ध माता की नाभी से होता है और नाभी का समन्वय, हम जैसे शिशु जब माता के गर्भस्थल में होते हैं, उस नाभी का नाभी से समन्वय हो करके, बेटा! वहाँ से चन्द्रमा अमृत दे रहा है, सूर्य प्रकाश दे रहा है और आपोमयी ज्योति बन करके, बेटा! वह तरल पदार्थों को प्रदान कर रहा है।

मेरे प्यारे! कैसा वह मेरा देव है! कैसा विज्ञानवेत्ता है! माता के गर्भस्थल में निर्माण कर रहा है, परन्तु बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख, दस हजार, दो सौ दो नाड़ियों का निर्माण हो रहा है। मेरे पुत्रो! देखो माता को कोई ज्ञान नहीं हो रहा है, कौन निर्माणवेत्ता है? कौन निर्माण कर रहा है? नाना प्रकार का, मुनिवरो! देखो निर्माण, लघु मस्तिष्क का निर्माण, रेणकेतु मस्तिष्क का निर्माण हो रहा है, वृतिका-मस्तिष्क का निर्माण हो रहा है; बेटा! बुद्धि

भी कई प्रकार की हैं—बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा और प्रज्ञावी कहलाती हैं, ये मन की पवित्र धाराएं कहलाती है।

आज, बेटा! मैं प्रभु का वर्णन तो इतना नहीं कर पाऊंगा। विचार-विनिमय क्या? वह परमपिता परमात्मा निर्माणवेत्ता हैं। माता के गर्भस्थल में, बेटा! वह निर्माण कर रहा है। मेरे पुत्रो! देखो जब ऋषि ने इस प्रकार अपना विश्लेषण दिया अपनी वार्ता प्रघट की तो देवी ने नतमस्तक हो करके कहा "हे प्रभु! मैं यह जानना चाहती हूँ, भगवन्! जब मानो देखो यह माता का गर्भाशय नहीं होता तो उससे पूर्व यह परमाणुवाद कहाँ रहता है?" मेरे पुत्रो! देखो ऋषि कहता है, "हे देवी! यही परमाणुवाद है, जब माता का गर्भाशय नहीं होता हो, तो यह परमाणु मानो कुछ वीरत्त्व रूप में होते हैं, कुछ वीरांगना रूप में होते हैं।"

वीरांगना

मेरी पुत्री, जब देखो ओजस्वी बन करके वीरांगना बन जाती है, तो बेटा! ये रज रूप में परमाणु विद्यमान रहते हैं और जब मानव ब्रह्मवर्चोसी का पालन करता है, वह ब्रह्मचारी कहलाता है, वीरत्त्व कहलाता है, बेटा! वीरत्व परमाणु मानो अपने में ही रत होते रहते है। मेरे प्यारे! वह वीरत्त्व कहलाता है और मेरी पुत्री वीरांगना कहलाती है। **देखो, वीरांगना उसे कहते हैं, बेटा! जो उद्गीत गाती हो, और उद्गीत गाती हुई, मुनिवरो! देखो**

सर्पराज और मृगराज भी, मुनिवरो! देखो इतनी निर्भयता उसके दिव्या के हृदय में समाहित हो जाती है कि वे भी चरणों की वंदना करते रहते हैं। मुझे वह काल स्मरण आ रहा है जब, बेटा! देखो चाक्रायणी गार्गी गान गाती थी, वेद-मन्त्रों का उद्गीत जब वह गाती थी, तो मेरे पुत्रो! देखो सिंहराज, मृगराज, सर्पराज, मुनिवरो! देखो ध्वनि को अपने में ध्वनित करते रहे हैं। मुनिवरो! देखो वही ध्वनित होना है और देखो हम वीरत्व की रक्षा कर सकते हैं और वह वीरांगना कहलाती है।

ब्रह्मचर्य के आयाम

ब्रह्मचारी, बेटा! देखो जब इसकी, वीरत्त्व की रक्षा करता है तो मेरे पुत्रो! वह ब्रह्मचारी कहलाता है। और ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जो ब्राह्मण होता है। और ब्राह्मण उसे कहते हैं, जो मुनिवरो! देखो ब्रह्म को जानने वाला है। और जो ब्रह्म को जानता है, वह ब्रह्मचरिष्यामी बन करके देखो ब्रह्म की चरी को जानता है। मेरे प्यारे! देखो मैं दूरी नहीं ले जाऊंगा। वेद का मन्त्र तो बेटा! एक विशाल वन की परिधि में रमण कर रहा है और वह वन कहलाता है, परन्तु केवल विचार-विनिमय यह है कि जो ब्रह्मचारी है, वह देवताओं की सभा में, बेटा! सुशोभनीय हो जाता है।

मेरे पुत्रो! देखो मुझे वह काल बारम्बार स्मरण आता है, ऋषि कहता है "हे देवी! याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने जब ब्रह्मचर्य

की विवेचना की और जब वे एक शतपथ नामक ब्राह्मण की पोथी का निर्माण करने लगे तो उन्होंने एक प्रश्न किया उसमें कि 'यह ब्रह्मचारी कौन है?' तो उन्होंने कहा कि–'ब्रह्मचारी वह, है जो वीरत्त्व की रक्षा करने वला है। वही ब्रह्मचारी है।' पुनः कहता है कि 'वह ब्रह्मचारी कौन है?' वह कहता है, 'जो ब्रह्म और चरी को जानने वाला है, वह ब्रह्मचारी है।' मुनिवरो! देखो, जो चरी और ब्रह्म को जानता है, क्योंकि चरी प्रकृति को कहते हैं और ब्रह्म कहते हैं, परमपिता परमात्मा को। जो अंगों-उपांगों से, दोनों को जानने वाला है वही ब्रह्मचारी है। उन्होंने पुनः जब यह प्रश्न किया कि 'ब्रह्मचारी कौन है?' उन्होंने कहा कि 'ब्रह्मचारी उसे कहते हैं, जो साधक होता है, और साधना के क्षेत्र में जा करके, जो प्रत्येक श्वास को मानो देखो अपना मनका बना लेता है और मनका बना करके जो ब्रह्म-सूत्र में पिरोना जानता है, वही ब्रह्मचारी कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो आगे वेद का ऋषि कहता है, 'यह ब्रह्मचारी कौन है?' उन्होंने कहा 'ब्रह्म और चरिष्यामी' 'ब्रह्मणा तत्त्वं ब्रव्हे वृत्तं देवः' जो 'ब्रह्मणां ब्रहे' देखो जो अपने को ब्रह्म में और ब्रह्म को सदैव अपने में स्वीकार करता है, वह ब्राह्मण कहलाता है।''

मेरे प्यारे! देखो मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है, ऋषि-मुनि इस प्रकार अपना मनन और चिन्तन करते रहे हैं। अपने जीवन को जो इस प्रकार चिन्तमनमय बनाता है वह, मुनिवरो! देखो वर्चोसी कहलाता है और वह वर्चस्वी बन करके,

मुनिवरो! देखो महान् बनता है। मेरे प्यारे! देखो मैं दूरी नहीं जाऊंगा, विवेचना उतनी कर पाऊंगा, जितना हमारा वेद का मन्त्र कह रहा है। **वेद का मन्त्र कहता है कि ब्रह्म की चरी क्या है? जो ज्ञान है और विज्ञान है, उसको क्रियात्मकता में लाने का नाम ही, मुनिवरो! देखो चरी को चरना है। इसीलिए ब्रह्मचारी वह कहलाता है जो, मुनिवरो! ब्रह्म-विद्या में रत हो करके और ब्रह्मचरिष्यामी बन जाता है और ब्रह्मचरिष्यामी ही, मुनिवरो! ब्रह्म की चरी को चर लेता है।**

मेरे प्यारे! देखो, वेद के ऋषि पिप्लाद ने कहा "हे देवी! तुम्हारे आँगन में यह विचार आया अथवा नहीं?" उन्होंने कहा "प्रभु! आपको धन्य है!" मेरे प्यारे! देखो ऋषि कहता है कि **"देखो, ब्रह्मचारी ही देवताओं की सभा में देवत्व को प्राप्त होता है। वह देवता कहलाता है, क्योंकि ब्रह्म कहते हैं परमात्मा को, चरी कहते हैं प्रकृति को, जो दोनों को एक साथ ले करके गमन करता है, उसमें विकृत नहीं होता, वह सदैव उसी में रत रहता है, बेटा! उसी का बखान करता है, वह ब्रह्मचारी है।"** तो विचार आता है कि वह देवताओं की सभा में देवत्व को प्राप्त होता है। मेरे प्यारे! देखो मेरी पुत्री जो वीरांगना है, वह 'वीरांगना' कहलाती है, जो 'ब्रह्म वृत्तं ब्रव्हे' देखो वीरत्त्व और मानो देखो चरी की रक्षा करती हुई अपने में वेदों का उद्गीत गाती है, वेदों का गान गाने वाली है, वह वीरांगना कहलाती है।

वीरत्त्व से पूर्व परमाणु-स्थिति

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि यह उद्गीत गा करके अपने में मौन हो गये। जब अपने में मौन हो गये तो उन्होंने कहा "हे प्रभु! मैं यह जानना और चाहती हूँ, भगवन्!" जब यह वीरत्त्व भी नहीं होता, तो यह परमाणुवाद कहाँ रहता है, भगवन्!" तो, मेरे प्यारे! देखो पिप्लाद मुनि ने कहा "हे देवी! जब यह मानो देखो वीरत्व भी नहीं होता, वीरांगनत्व भी नहीं होता, तो यही परमाणु मानो अन्न में विद्यमान रहते हैं, अन्नां भू: वर्णनं ब्रह्मः वृत्तं देवात्वां लोकाः' उन्होंने कहा यह जो अन्नाद है, इसी में निहित रहने वाला यह जगत् है।"

ो प्रकार के अन्न

उन्होंने कहा "हे देवी! यही मानो अन्न है। प्रभु की सृष्टि का जो विधान है, वह कितना विचित्र है! उसका विधान कितना महान् कहलाता है! एक ही पौधा है, और उस पौधे पर दो प्रकार का अन्न है! एक अन्न को तो मानव पान करता है और एक अन्न को, मेरे प्यारे! पशु पान करता है! अरे! पशु पान करता है, वह दुग्धाहार कराता है, वह पय दे रहा है और, जो मुनिवरो! देखो मानव पान करता है वह ओज और तेज की उत्पति कर रहा है। मेरे प्यारे! एक अन्न को मेरी प्यारी माता भोजनालय में तपा रही है और एक अन्न को, मुनिवरो! पान करता हुआ गो नाम का पशु पय दे रहा है। हे मानव! तू पान कर रहा है, अपने में मानो

देखो ओज और तेज की उत्पति कर रहा है। यह, मुनिवरो! देखो एक ही पौधा है, और एक पौधे पर दो प्रकार का अन्न है।''

मेरे प्यारे पिता ने, सृष्टि के पिता ने मुनिवरो! देखो सात प्रकार के अन्न को उत्पन्न किया। और वह सात प्रकार का अन्न बेटा! कौन सा है? बेटा! मानो दो अन्न एक ही पौधे पर हैं। एक पौधा, 'भूः वर्णनं ब्रहे कृतम्'।

तीसरा अन्न–'हूत'

मेरे प्यारे! देखो तीसरा अन्न अन्नाद कहलाता है। अरे, वही तो अन्नाद की प्रतिभा में रत रहने वाला है। मुनिवरो! देखो 'देव ब्रहा', ''दो प्रकार का अन्न तो देवी! यह है और 'अन्न ब्रहे' एक अन्न वह कहलाता है, जो 'हूत' कहलाता है।'' मेरे प्यारे! देखो यज्ञमान अपनी यज्ञशाला में विद्यमान है और वह मानो देखो अग्नि के मुखारबिन्दु में 'हूत' कर रहा है और वह 'हूत' करता हुआ, मुनिवरो! देखो 'स्वाहा' कह करके अपने साकल्य को, चरू को अग्नि के मुखारबिन्दु में परिणित कर रहा है। क्योंकि यह जो अग्नि है, यह देवताओं का मुख कहलाता है और देवताओं के मुख में, बेटा! देखो याग कर रहा है, 'हूत' कर रहा है। मुनिवरो! वह देवताओं को प्राप्त हो रहा है। मेरे प्यारे! वह देवयाग कहलाता है, क्योंकि देवता उससे तृप्त हो रहे हैं। वह देवत्व कहलाता है, क्योंकि अग्नि हमारे अन्तर्हृदय में भी विद्यमान है, अग्नि ही, मेरे प्यारे! देखो काष्ठों में, बाह्य-जगत् में जो अग्नि

प्रसारित हो रही है, भेदन कर रही है, मेरे पुत्रो! देखो वह जो भी अन्नाद अपने में ग्रहण करती है, वह सर्वत्रता को प्रदान कर देती है। मेरे प्यारे! देखो उसे कहते हैं–'हूत'। 'हूत' करने का नाम यही है। बेटा! यज्ञमान अपनी दिव्या से कहता है, 'हे देवी! आओ, हम देखो अपने देवताओं के मुखारबिन्दु को कुछ अन्नाद देना चाहते हैं, जिससे देवता हमारे गृह में, मानो देखो हमारी मनोवृत्ति को ऊंचा बनाते रहें।' मुनिवरो! देखो हमारे यहां कई प्रकार के यागों का चयन प्रायः वैदिक साहित्य में होता रहा है। तो इसे 'हूत' कहा जाता है।

चौथा अन्न–'प्रहूत'

मुनिवरो! देखो चतुर्थ जो अन्न है, उसे 'प्रहूत' कहा जाता है। मेरे प्यारे! देखो 'प्रहूत' किसे कहते है?' जो पुरोहितजन हैं, जैसा मैंने प्रारम्भ के शब्दों में वेद का उद्‌गीत गाते हुए कहा कि पुरोहित तो परमपिता परमात्मा है, परन्तु जो बुद्धिमान प्राणी होते हैं, त्याग और तपस्या में रत रहने वाले हैं, वे भी, मेरे प्यारे! देखो पुरोहित कहलाते हैं। तुम्हें प्रतीत होगा, देखो त्रेता के काल में जब पहुंचोगे तो तुम्हें पुरोहित ही दृष्टिपात् आयेंगे। मेरे प्यारे! देखो,....................................

सोहजनी, मु. नगर
१५-३-९१

शेष प्रवचन श्रुति-संगृहीत (रिकॉर्डिड) न होने के कारण और प्रकरणान्तर्गत विषय की परिणति के लिये बडौली ग्राम (मेरठ) में, दिनाँक २९-१-१९८८ को पूज्यपाद द्वारा प्रकथित प्रवचन का विहित अंश प्रस्तुत है–

एक समय वशिष्ठ मुनि महाराज के यहां, बेटा! एक सभा उपस्थित हुई और उस सभा में यह निर्णय दिया गया, विश्वामित्र को यह कहा गया कि "तुम धर्नुयाग करो और धर्नुयाग में मानो देखो इस राष्ट्र को ऊँचा बनाओ, राष्ट्र की प्रतिभा और राजकुमारों के द्वारा वह याग सम्पन्न होना चाहिये।" तो, बेटा! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है, महर्षि विश्वमित्र ने, महर्षि वशिष्ठ और माता अरुन्धती की आज्ञा पा करके वहाँ आश्रम से मानो देखो प्रस्थान किया और भ्रमण करते हुए अयोध्या में उनका आगमन हुआ। अयोध्या में अयोध्यावासियों ने कहा–"आज यह कैसा नृत्य होने लगा है, जो बिना समय के एक ब्रह्मवेत्ता का आगमन हुआ है! मानो यह कैसा सौभाग्य जागरूक हो गया है!" मेरे प्यारे! देखो, वह राज्य-सभा में, राजस्थली पर जा पहुंचे। तो राजा ने अपने आसन् को त्याग दिया। आसन पर ऋषिवर विद्यमान हो गये और ऋषि से राजा ने नतमस्तक हो करके कहा–"प्रभु! आज बिना सूचना के आपका आगमन क्यों हुआ, मैं इस कारण को नहीं जान सका हूँ। प्रभु! आप मुझे आज्ञा दे देते तो मैं आपको मानो देखो अपने वाहनों में आप का इस अयोध्या में आगमन कराता। ऐसा कौन सा कारण है, जो आपका

इस प्रकार आगमन हुआ है?" महर्षि विश्वामित्र बोले–"हे राजन्! तुम्हें यह प्रतीत हो गया होगा कि हम दण्डक वनों में एक धर्नुयाग कर रहे हैं और धर्नुयाग में देखो तुम्हारे जो राजकुमार हैं, इनके द्वारा हम याग कराना चाहते हैं।"

मेरे प्यारे! देखो, राजा ने कहा–"प्रभु! यह याग करना तो हमारा सौभाग्य है, जो आज मानो तुम धर्नुयाग कर रहे हो, यह तो राष्ट्र के लिए लाभप्रद है, हम सबके लिए भी। मानो देखो मुझे आज्ञा दो, यह बाल्य तो किशोर हैं और किशोरों से याग की रक्षा नहीं हो सकेगी। मुझे आज्ञा दो, मैं तुम्हारे याग को सम्पन्न कराऊँगा।" मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा–"हे राजन्! देखो, इन राजकुमारों से ही याग को सम्पन्न कराना है।" मेरे पुत्रो! राजा ने कहा–"प्रभु! ये बाल्य किशोर हैं" ये चर्चाएं हो रही थीं। यह वार्ता मानो देखो राजगृह में भी जा पहुंची। देखो कौशल्या, कैकेयी इत्यादि सब देवियाँ मानो देखो राजस्थली पर आ पहुँची और ऋषियों के बारी-बारी चरणों को स्पर्श किया और चरणों को स्पर्श करते हुए माता कौशल्या ने कहा–"कहो, भगवन्! आगमन कैसे हुआ?" उन्होंने कहा–"हे ब्राह्मण ब्रहे!' मैं यहाँ, मानो देखो, दण्डक वनों में एक याग करा रहा हूँ और वह 'धर्नुयाग' है, उसके लिए दोनों राजकुमारों के लिए मैं आया हूँ। मैं अपने याग को सम्पन्न कराना चाहता हूँ।" मेरे प्यारे! देखो, उन देवियों ने कहा–"क्या, हे राजन्! तुम्हें प्रतीत है, यदि हमारे गर्भ से उत्पन्न होने वाला ब्रह्मचारी यदि देखो ऋषि की आज्ञा का पालन और

ऋषि की सेवा नहीं कर सकता, तो मानो यह हमारा गर्भस्थल दूषित हो जायेगा। हे प्रभु! 'ब्रह्मे लोकां' देखो आप राजकुमारों को ऋषि को प्रदान कीजिये।" मेरे प्यारे! देखो, जब ऐसा वर्णन आया तो उन्होंने कहा—"ब्रह्मणं ब्रहे"। राजकुमारों को ऋषि को प्रदान कर दिया गया।

मेरे प्यारे! देखो, उसका नाम हम पुरोहित कहा करते हैं, यह 'प्रहूत' है; यह चौथा अन्न कहलाता है। **अन्न का प्रभिप्रायः है, जिसके उद्गार गाने से मानव तृप्त हो जाये, उसी का नाम अन्न कहा गया है।** अन्न का अभिप्रायः यह है कि वायु में भी अन्नाद विद्यमान रहता है, इसलिए ऋषि-मुनि अपने में, बेटा! देखो एकान्त स्थलियों में वायु का सेवन करते रहे हैं, साधना में सदैव रत होते रहे हैं और उससे अन्नाद को प्राप्त करते रहे हैं। अन्नाद की बड़ी विस्तृत एक विवेचना है, परन्तु देखो, यहाँ एक व्याख्याता का नाम भी देखो अन्नाद का स्वामी कहलाया गया है।

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा—"देवी! धन्य ब्रहे!" ब्रह्मऋषि ने जा करके दण्डक वनों में धर्नुयाग का आयोजन किया। धर्नुयाग किया, तो धर्नुयाग का अभिप्रायः यह कि **ब्रह्मचारियों को अस्त्रों-शस्त्रों की शिक्षा देने का नाम 'धर्नुयाग' कहा जाता है।"** मेरे प्यारे! देखो, तब महर्षि विश्वामित्र एक पुरोहित थे। इसीलिए 'प्रहूत' का नाम भी अन्न माना गया है, यह चौथा अन्न कहलाता है, जिससे राष्ट्र और समाज का प्रायः कल्याण होता है, राष्ट्र जिससे ऊँचा बनता है।

आत्मा के तीन अन्न

मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने कहा–"यह जो चार अन्न हैं, ये समाज का साझा अन्न कहलाता है, परन्तु देखो, तीन अन्न ऐसे हैं, जो साधक उन तीन अन्नों को अपना करके देखो आत्मवान बनता है, आत्मा का कल्याण और योगेश्वर और देखो वह अपने में ध्यानावस्थित हो जाता है। और वह साधना में साधक बन करके साधना में परिणित हो जाता है। तो वह कौन-सा (अन्न) है? वह प्राण, मन और विचार मानो ये तीन प्रकार के अन्न हैं, जो आत्मवान बनने के लिए हैं।

प्राण

बेटा! देखो, प्राण को जानना है। यह प्राण, हमारे शरीर में दस प्राण बन करके रहते हैं–बेटा! प्राण, अपान, उदान, समान और व्यान, और पाँच उप-प्राण हैं–नाग, देवदत्त, धनञ्जय, कूर्म और कृकल; ये दस प्राण हमारे शरीर में संचालित हो रहे है, मानो क्रियाकलापों में परिणित हो रहे हैं। मानो देखो, इन प्राणों को जानना, यह प्राण क्या-क्या क्रियाकलाप करते है? ब्रह्माण्ड की आभा में सदैव निहित रहते हैं।

मन

देखो, यह मन क्या है यह प्रकृति का सबसे सूक्ष्म तन्तु माना गया है। यह प्रकाश से रत रहता है।

विचार-उपलब्धि

यह प्राण और मन का, दोनों का, एकोकीकरण हो जाता है तो विचार की उपलब्धि होने लगती है। वह चिन्तन करता है, वह विचारों में रत हो जाता है, वह विचारवान बन करके, विचारों में रत हो करके, मेरे प्यारे! देखो, यह प्रत्येक इन्द्रियों का साकल्य बनाना प्रारम्भ करता है।

एकीकृत मन-प्राण और विचार

पाँच ज्ञानन्द्रियाँ कहलाती है और पाँच ज्ञानन्द्रियों का साकल्य है, मेरे प्यारे! देखो, नेत्रों का रूप है और श्रोत्रों का शब्द है, और प्राण का सुगन्ध और दुर्गन्ध है। सुगन्ध कहना चाहिए और देखो, त्वचा का स्पर्श है और वाणी का रसोस्वादन है। मेरे प्यारे! देखो, दसों इन्द्रियों के साकल्य को, विषयों को एकत्रित करके जब, मुनिवरो! साकल्य बना करके और वह जो हृदय रूपी, मानो देखो, यज्ञशाला है, शरीर में, उसमें वह हूत कर रहा है, उसमें आहुति दे रहा है। मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक इन्द्रियों का जो समावेश होता है, वह मानव के हृदय में होता है, इसीलिए हृदय में ही वह समाधिष्ठ हो जाता है। मेरे प्यारे! देखो, हृदय इस ब्रह्माण्ड का कुञ्ज कहलाया गया है, मुनिवरो! देखो, हृदय में प्रत्येक रूप, रस, गन्ध इत्यादि सब उसी में समावेश हो करके साधक, मुनिवरो! देखो, उसमें साधना करने लगता है। और वह साधक बन करके मेरे पुत्रो! देखो, साधना में तत्पर हो जाता है, विचारता रहता है।

बेटा! मैं कहाँ चला गया हूँ, विचार देता हुआ! मुनिवरो! देखो, योगेश्वर जब इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों का साकल्य बना करके, सामग्री बना करके, मानो ज्ञान रूपी, जो अग्नि हृदय में अगम्यता में मानो प्रदीप्त हो रही है, उसमें वह समावेश कर देता है। जब समावेश हो जाता हैं, तो योगेश्वर, बेटा! देखो, योगारूढ़ हो जाता है। योगारूढ़ हो करके, मेरे पुत्रो! देखो, यह तीन प्रकार का अन्न है, जिससे योगी अपने में समाधिष्ठ और मानवीयता में एक साधक बन जाता है।

सात प्रकार के अन्न की लय-स्थिति

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा—"हे देवी! यह जो सात प्रकार का अन्न है, यह सृष्टि के पिता ने **चार प्रकार का अन्न लौकिक कहलाता है और तीन प्रकार का अन्न आत्मवान बनने के लिए होता है।** मानो देखो, यह अपने में अभ्योदय हो रहा है। तो मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा—'धन्यं ब्रह्मा कृतं'। मेरे प्यारे! देवी ने कहा—"प्रभु! यह अन्न भी मैंने स्वीकार कर लिया है, परन्तु मैं यह जानना चाहती हूँ, हे प्रभु! देखो, जब यह सात प्रकार का अन्न भी नहीं होता, तो मानो यह 'अकृतम्' परमाणुवाद कहाँ रहता है? उन्होंने कहा—"हे देवी! हे दिव्यासे! तुम बड़ी बुद्धिमान हो। तुम्हारा बहुत प्रश्न करने का बड़ा गम्भीर अध्ययन है। हे देवी! जब यह सात प्रकार का अन्न भी नहीं होता, तो मानो देखो, 'ब्रह्मण ब्रीही वृत्तः' देखो, जब सात प्रकार

का अन्न नहीं होता, तो उस समय हम आत्मा के 'प्रकाशं ब्रह्मः' देखो, आत्मा ज्योतिवान रहे; यह परमाणुवाद, मानो देखो, कुछ पृथ्वी में रहते हैं, कुछ आपोमयी ज्योति में, जल में रहते हैं, कुछ अग्नि में रहते हैं और इन्हीं परमाणुओं को भ्रमण कराने वाली, गति देने वाली वायु है, और जहाँ वह गतिवान होता है, उसे अन्तरिक्ष कहते हैं।

अविनाशी आत्मा और परमाणु

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने वर्णन कराया कि यह परमाणुवाद, मानो देखो, पञ्च महाभूतों में निहित रहते हैं। पञ्च महाभूतों में निहित रह करके वृत्तियाँ बना करती हैं। हे देवी! जब यह आत्मा इस शरीर को मानो त्याग देता है, तो देवी! देखो, यह शव रह जाता है, मानो देखो, आत्मा अपने संस्कारों को ले करके, मानो देखो, अपने चित्त के मण्डल में प्रवेश कर जाता है। आत्मा तो चित्त के मण्डल में चला गया है और यह 'ब्रह्मणे' देखो, यह शव रह जाता है। हे देवी! जब इसे अग्नि में दाह कर देते है, तो उस समय अग्नि के परमाणु अग्नि में, जल के परमाणु जल में, और पृथ्वी के परमाणु पृथ्वी में और देखो, यह प्राण वायु में और अवकाश अन्तरिक्ष में प्रवेश हो जाता है। तो देवी! मैं जानना चाहता हूँ यह परमाणुवाद का भी विनाश नहीं होता। मानो यह परमाणुवाद भी नहीं गया। तो देवी! आत्मा का विनाश नहीं होता। जब परमाणु और आत्मा दोनों का विनाश नहीं होता, तो

देवी! मैं जानना चाहता हूँ, यह मृत्यु है क्या, जिस मृत्यु के आँगन में प्रत्येक मानव दुःखित रहता है? मेरी प्यारी माता दुःखित रहती है। परन्तु यह है क्या? **मेरे प्यारे! देखो, विचारा गया कि यह मृत्यु कोई वस्तु नहीं है। आत्मा का ह्रास नहीं होता। परमाणुओं का ह्रास नहीं होता है। केवल माता-पिता का जो संकल्प मात्र है, उसका ह्रास हो गया। मानो संकल्प मात्र समाप्त हो गया।**

मृत्यु की मृत्यु

मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने वर्णन किया, तो देवी मौन हो गई। शकुन्तका से ऋषि ने कहा—"देवी! और भी कुछ जानना चाहती हो? क्या मृत्यु तो मेरे विचार में नहीं रहा है और तुमने यह स्वीकार कर लिया है कि मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं रही, परन्तु, देखो, मैं एक वाक्य उच्चारण करने के लिए और आया हूँ। हे देवी! मुझे वह सभा स्मरण है, राजा जनक के यहाँ जब एक सभा हुई, तो मानो देखो, महात्मा अर्द्धभाग ने महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि से यह कहा था कि 'संसार में मृत्यु की मृत्यु क्या है?' मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य ने देखो, अर्द्धभाग के प्रश्नों का उत्तर देते हुए कहा कि 'मत कहो! मृत्यु की मृत्यु नहीं होती। अरे! मृत्यु की मृत्यु, तो मानो देखो, यह ब्रह्म है'। तो **जानने वाले की मृत्यु नहीं हुआ करती। जो ब्रह्म को जान लेता है वह मृत्यु से उपराम हो जाता है।"**

तो विचार आता है, बेटा! विचार क्या कह रहा है? मेरे प्यारे! देखो, आत्मा का ह्रास नहीं होता, और न परमाणुवाद का ही ह्रास होता है। मानो देखो, यह मृत्यु है क्या? तो ऋषि कहता है—"देवी! **संसार में अंधकार का नाम मृत्यु और प्रकाश का नाम जीवन माना गया है।**" मेरे प्यारे! देखो, प्रकाश क्या है? ज्ञानी ही प्रकाशमान हुआ करता है। मेरे प्यारे! देखो, अज्ञान में जो रहता है, वह मृत्यु को, अंधकार को, प्राप्त होता है। तो विचारने से प्रतीत होता है, वेद के वाङ्मय में जाने से प्रतीत हुआ कि वास्तव में मृत्यु अपने में कोई मृत्यु नहीं है। **बेटा! अज्ञान का नाम मृत्यु है, इसलिए प्रत्येक मानव को, प्रत्येक मेरी पुत्री को ज्ञानवान होना चाहिए, ज्ञानी होना चाहिए। अपने मानवीयत्त्व को जानने वाला और मानवीय दर्शनों को जानने वाला हो, बेटा! ज्ञानी कहा जाता है।**

आत्मा और चित्त-मण्डल

आओ, मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि प्रत्येक मानव को, बेटा! अपने आत्मवत् को जानना चाहिये। मेरे प्यारे! देखो, यह परमाणुवाद, मुनिवरो! देखो, अपने-अपने अव्ययों में व्यय हो जाता है, अव्ययों में व्यक्त हो जाता है। परन्तु देखो, आत्मा अपने संस्कारों को ले करके चित्त के मण्डल में चला जाता है। तो, मुनिवरो! देखो, आत्मवत् बनना चाहिए। **आत्मवत् कौन होता**

है? जो, मुनिवरो! देखो, चित्त के मण्डल को जानता हुआ, आत्मवत् बन करके, आत्मा की प्रतिभा में सदैव रत रहता है। आओ, मेरे प्यारे! मैं आज तुम्हें विशेष विवेचना देने नहीं आया हूँ। विचार यह देने के लिए आया हूँ कि हम परमपिता परमात्मा की महत्ती को सदैव जानते हुए महत्ती में रत हो जायें। आभा में रत हो करके, मुनिवरो! देखो, अभ्योदय अपने में धारयामि बनते चले जाये। आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, विशेष चर्चा न प्रकट करता हुआ, मेरे प्यारे! देखो, अपने में महान् और पवित्र बन करके इस संसार सागर से पार हो जाये।

आओ, मेरे प्यारे! आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? म परमपिता परमात्मा की महत्ती को जानते हुए और मानो देखो, मृत्युञ्जयी बनते हुए, हम इस संसार-सागर से पार हो जायें। **मेरे प्यारे! सबसे प्रथम मानव का कर्त्तव्य यही है कि मानव को मृत्यु से पार होना चाहिये और मृत्यु को जानना ही उससे पार होना है। प्रकाश में जाना ही मृत्यु से पार होना है। तो मेरे प्यारे! मानव को ज्ञानवान बन करके इस सागर से पार होना है।**

आज का, बेटा! हमारा यह वाक्य क्या कह रहा है? हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुणगान गा करके, बेटा! इस संसार-सागर से पार हो जायें। आज का हमारा वाक्य कहता है कि वह जो परमपिता परमात्मा है, जो

मानो जड़ और चैतन्यवत् है। मानो देखो, जड़ और चैतन्य में जब, मुनिवरो! देखो, वह परमपिता परमात्मा दृष्टिपात् आता है, हमें उसकी उपासना करनी है, वह हमारा विष्णु है, मानो देखो, निर्माण करने वाला और रक्षक है। मुनिवरो! वही 'परमदेवम् ब्रह्मः देवत्त्व' कहलाया गया है। यह है, बेटा! आज का वाक्य! आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हमें, बेटा! मृत्यु से पार होना है। यह नाना प्रकार के अनुष्ठान, नाना प्रकार का जो तपश्चर है, वह इसीलिए मानव करता रहता है कि मैं मृत्यु से पार हो जाऊँ। यह है, बेटा! आज का वाक्य! अब मुझे समय मिलेगा मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूँगा। आज का वाक्य अब यह समाप्त होने जा रहा है।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह है कि वह जो परमपिता परमात्मा है, वह जड़ और चेतनता में निहित रहने वाला है और आत्मवान बनना ही मानव के लिए बहुत अनिवार्य है, क्योंकि मानव देखो, नित्य-प्रति अपने क्रियाकलापों में निहित रहता है और, मुनिवरो! देखो, वह निहित रह करके, केवल अपने, मानव के पालन-पोषण में लगा रहता है। अरे! जो आत्मा के कारण तुम्हारा जीवन मानो चैतन्य बना हुआ है, उस आत्मा का भी चिन्तन करना चाहिये, आत्मवान बनना चाहिये। यह है, बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूँगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन।

प्रजापति के आयाम

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गान गा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस पवित्र वेदवाणी का प्रसारण किया जाता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना, जो संसार का नियंता है अथवा इसका निर्माण करने वाला है, उसकी महिमा का प्रायः वर्णन आता रहता है और उसी परब्रह्म परमात्मा का उद्गीथ प्रायः हम गाते रहते हैं, क्योंकि प्रत्येक मानव का अंग तो गा ही रहा है, मानव भी गान नहीं गा रहा है, प्रत्येक धारा गान गा रही है, अथवा उद्गीथ गाया जा रहा है। तो विचार क्या? हमें भी उस परमपिता परमात्मा के प्रायः उद्गीथ गाने चाहिये, क्योंकि प्रत्येक मानव का अन्तर्हृदय मानो उनका जो समन्वय है, वह परमपिता परमात्मा से प्रायः रमण करता रहता है, उसी में आभायित होता रहता है।

विदेहवाद

आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें कुछ कह रहा है, हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है। हम उसी प्रेरणा से प्रेरित हो करके अपने प्रभु की महती का वर्णन करते रहते हैं। मानो वह उद्गीथ गाने वाला है, उद्गीथ गा रहा है। मानव के अन्तःकरण की जब अनुपम

धाराएं इस वायुमण्डल में प्रवेश करती हैं तो वायुमण्डल में पवित्रवाद छा जाता है। आज, बेटा! मैं तुम्हें विशेष चर्चाओं में तो नहीं ले जाऊँगा। आज का हमारा वेद-मन्त्र क्या कहता है? प्रत्येक मानव अपने में विदेह रहना चाहता है और वह यह अपने में धारणा बना रहा है कि हम 'अकर्त्ता' की आभा में रत्त रहते हैं, परन्तु हम यह कहा करते हैं कि जब तक मानव इस पंच-महाभौतिक पिण्ड में है और भौतिक पिण्ड में मानव का अन्तरात्मा, बेटा! गम्भीर चिन्तन कर रहा है। एक समय आता है कि चिन्तन भी बन्द हो जाता है, एक समय आता है जबकि वह अपनी द्वितीय दिशा को अपना लेता है, मानो देखो वह राजा बनता है और राजा बन करके, नाना प्रकार की आभाओं में रत्त रह करके, पुरोहित उसे प्रेरणा देता है, वेद का मन्त्र उसे प्रेरणा देता है और वह प्रेरित हो करके, बेटा! ब्रह्मवेताओं के समाज को एकत्रित करता रहता है।

विदेहराज जनक–एक उपाधि

हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की उपाधियों का वर्णन आता रहता है। बहुत पुरातन काल तक, बेटा! एक उपाधि चली आयी, जिस उपाधि का नामोकरण 'जनक' कहा जाता है। मानो वह जनक उपाधि, उसमें विदेह मानो करता हुआ 'अकर्त्ता' की प्रवृत्ति को बनाना है, अथवा उस साधना को करना है, जो मानो देखो राष्ट्र को भोगा जा रहा है और राष्ट्र की प्रजा प्रसन्न है, परन्तु

एक राजा अपने में उदासीन होना चाहता है, मानो याग करना चाहिये, मानो उदासीन हो करके वह अपने में अकर्त्ता को दृष्टिपात् कराता है। परन्तु जब गम्भीर चिन्तन हुआ तो 'राजा जनक' यह एक उपाधि मानी जाती है, जो 'जनकोऽब्रहो सम्भवा' जो ऋषि-मुनियों को एकत्रित करके कहीं वह मानो देखो, ब्रह्म-याग में गमन करने लगते हैं, कहीं मानो देखो और भी भिन्न-भिन्न यागों की प्रतिभा में रत्त हो गये हैं। परन्तु देखो वह तो राजा जनक की उपाधि है, राजा जनक की जो अनुपम उपाधि है, जिस उपाधि को पान करके मानो मानव 'जनक' बनता है। और, वह जनक कैसे बनता है? जब तक ऋषि-मुनि, ब्रह्मवेत्ता आ करके, बेटा! उसे जनक की उपाधि नहीं प्रदान कर देते। एक स्वर आता है, प्रातःकालीन् एक ध्वनि हुई और उस ध्वनि में ध्वनित हो करके, मेरे प्यारे! ध्वनि में ध्वनित हो करके अपने में अनुभव करने लगे कि हमें भी 'जनक' बनना है, 'राजा जनक' की आभा में रत्त होने लगे।

और **राजा जनक को 'विदेह' कहा जाता है। 'विदेह' का अभिप्रायः यह है कि वह राष्ट्र में विद्यमान है, परन्तु प्रीति है, मोह नहीं। कर्तव्य का पालन है, स्वार्थवाद नहीं है। मानो देखो, जब वह राजा अपने में राजा बन जाता है, तो बेटा ! अपने में 'विदेह' कहलाता है। 'विदेह' का अभिप्रायः यह है कि जिसके हृदय में मनोनीत शान्ति हो, जिसे आसक्ति न हो, परन्तु जो आसक्तियों से रहित हो**

और उस परमपिता परमात्मा का धीमा गान भी गाने वाला हो। मानो देखो वह 'जनक' कहा जाता है, वह 'विदेहराज जनक' कहा जाता है।

बेटा! यह उपाधि सतोयुग के काल तक चली। परन्तु वह जो उपाधियाँ चलीं तो उपाधि का अभिप्रायः रहा कि वह अपने में तपस्वी बन करके अपने जीवन की सुरक्षा करें। परन्तु राजा जनक का यही कथन है कि गृह-गृह में उसके यहाँ ब्रह्मवेत्ता विद्यमान होते थे और वह समय-समय पर ब्रह्मवेत्ताओं के समाज को एकत्रित किया करते थे और वह ब्रह्मवेत्ता के द्वारा कुछ उपदेश-पान करते थे। वह मानो देखो अपनी धारा को धारा में रत्त कराना, यह प्रियतम माना गया है। परन्तु राजा जनक का यह कथन था कि उसके यहाँ नाना प्रकार के याग होते रहते थे। प्रातःकालीन मानो देखो उनकी यज्ञशाला में ब्रह्मवेत्ता विद्यमान होते और उद्गीथ गाते रहते, परन्तु वह अपनी आभा में रत्त रहते। परन्तु जब मैं यह विचारता हूँ कि राजा जनक के यहाँ प्रातःकालीन् ब्रह्म का चिन्तन होता रहता था, नाना ऋषिवर आते रहते थे। उनकी पत्नी जो रम्भेश्वरी थी, वह अपने में मानो उससे ममता नहीं थी, 'कर्त्तव्यवाद' का कर्त्तव्यवाद रहता था। और ममता में, मानो देखो नाना प्रकार का दूरीकरण होता है। कर्त्तव्यवादी जो प्राणी होता है, वह अपने कर्त्तव्य को ही तो ले करके अमूल्य एक महान् से महान् रचना को रचता है।

राजा जनक का ब्रह्म-चिन्तन

राजा जनक के यहाँ, बेटा! भिन्न-भिन्न प्रकार के याग होते रहतें थ। सबसे प्रथम जो याग था, उनके यहाँ वह देव-पूजा अथवा देवपूजा से भी पूर्व जो ब्रह्म का चिन्तन है, वह होता था। बेटा! उनकी पत्नी रम्मेश्वरी और राजा जनक, एक समय रात्रि का मध्यकाल था, वे जागरूक हो गये। परन्तु जब जागरूक हो गये, तो राजा जनक ने कहा—"हे रम्भेश्वरी! तुम परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में क्या जानती हो?" उनकी पत्नी ने कहा—"प्रभु! मैं क्या जानती हूँ ब्रह्म के सम्बन्ध में? यह तो एक सा शब्द है, जिस शब्द में एक महानता का प्रतिपादन मुझे ृष्टिपात् नहीं आ रहा है।" उन्होंने कहा—"राजन्! ऐसा 'सु सम्भवा लोकं वाचन्नमं ब्रह्मे वाचो सम्भवे लोकां भूः" मेरे प्यारे! जब आख्यायिका स्मरण आने लगी, तो ब्रह्म के चिन्तन में उन्होंने कहा कि—"ब्रह्म सर्वत्र है, ब्रह्म मानो देखो, एक ब्रह्म के रूप मे रहता है और वह प्रत्येक प्राणी को मानो प्राणी मात्र को वह अपनी भिन्न-भिन्न प्रकार की कामना प्रगट करता रहता है।" मानो देखो राजा जनक ब्रहे, उनकी पत्नी ने कहा—"मानो ब्रह्म सर्वत्र है। उसी का मानो यह रचा हुआ एक ब्रह्म-सूत्र, यह मानो 'ब्रह्माण्ड' कहा जाता है, इसको ब्रह्म-सूत्र कहते हैं।

प्रातःकालीन् प्रभु की याचना

राजा जनक, एक समय प्रार्थना करने लगे। प्रातःकालीन्

माता रम्भेश्वरी भी चिन्तन करने लगी और यह प्रभु से कह रही थी, अपने प्रभु से, "हे प्रभु! तुम तो महान् हो। हे प्रभु! तुम महान् पञ्च-महाभूतों में प्रेरणा देने वाले, तुम प्रेरक हो।" मानो देखो, उसी की प्रतिभा इस संसार में दृष्टिपात् आ रही है। तो मेरे पुत्रो! देखो राजा जनक और उनकी पत्नी चिन्तन करने लगे। चिन्तन करते, परन्तु ब्रह्म को अपने में दृष्टिपात् किया और अपने को ब्रह्म में पिरोने के पश्चात् प्रातःकालीन उनके यहाँ, मानो देखो अग्नि का चयन कराया गया।

राजा जनक का याग-चिन्तन

दोनों विधाताओं ने अग्नि का चयन किया। परन्तु देखो अग्नि प्रचण्ड हो गई। अग्नि में जब साकल्य दिया, आहुति देने लगे, जब मानो वह याग की प्रतिक्रियाओं में रत्त होने लगे, आपो का जव चिन्तन करने लगे, तो मुनिवरो! देखो, ऋषि-मुनियों ने कहा–"राजन्! यह क्या कर रहे हो?" उन्होंने कहा, "मैं उस क्रियाकलाप को कर रहा हूँ, जो मानो परम्परागतों से ऋषि-मुनि जिस क्रियाकलाप में रत्त रहे हैं, उसी को, मैं उसी क्रियाकलाप में जा रहा हूँ।" उन्होंने कहा, "यह क्या क्रिया है?" उन्होंने कहा कि–"मैं एक मानो देखो जल का (पूजा-कर्म), जल की धारा को मैं पूर्व दिशा में देना चाहता हूँ और पूर्व दिशा में जब मानो अन्वेषण की धारा है, तो वह कहता है 'हे प्रभु! आप तो वरुण बन करके हमारी रक्षा करें, आप तो भगवन्! देखो महान् से

महान् हो।" मेरे पुत्रो! देखो, जब इस प्रकार की याचनाएं याग में अग्नि के प्रचण्ड होने के समय उद्धृत हो रही हैं, तो बेटा! मानो एक स्वर्ग का वायुमण्डल बन रहा है।

मेरे प्यारे! देखो याग प्रारम्भ किया। अग्नि प्रदीप्त होने लगी तो मुनिवरो! देखो, राजा जनक ने ऋषियों से कहा–"हे प्रभु! मैं यह जानना चाहता हूँ कि यह जो आप ने वरुण-माला के सम्बन्ध में मानो जो हमने याग किया, 'यागां भविते' तो याग हम क्यों करें?" परन्तु आचार्य ने कहा, "नहीं, वत्स! याग तो करना हमारा कर्त्तव्य है, याग हमारा मौलिक सिद्धान्त है और यह मौलिक रूपों में रत्त हो रहा है।" मुनिवरो! देखो, राजा जनक जब पश्चिम विभाग में जल की धारा को परिणित करने लगे तो बोले कि, "प्रभु! आप तो वरूण बन करके रहते हो, भगवन्! आप तो वरूण हो, मानो देखो, जब वह पूर्व दिशा में परिणित हुए तो वह दक्षिणाय सरस्वती बन करके तू हमारा कल्याण कर।" 'सरस्वतीं भविते ब्रह्मः वाचन्नमं ब्रह्मः परमाणु वस्वत सुतो ब्रव्हे' वेद का आचार्य कहता है कि यह जो 'अन्नाद भूत प्रव्हा', यह अन्नादं एक भूत बन करके हमारे जीवन की एक धारा बन करके रहता है।

मेरे प्यारे! मुझे स्मरण है, जब राजा जनक मानो देखो वह अपने में 'यागां भविते देवाम्' वे याग में परिणित हो गये। वह नाना पन्था मानो परम्परागतों के पन्थ को अपनाना, उसे अपने

में धारण करना ही मानो उसका सुसज्जित कर्त्तव्य कहलाता है। तो राजा जनक के यहाँ, मानो याग हो रहे हैं। मानो देखो माता याग कर रही है, वह याग करती हुई कहती है–"हे वत्स! मैं याग कर रही हूँ। हे वत्स! तुम भी याग में परिणित हो जाओ।" परन्तु माता के शब्दों की प्रतिभा एक महान् तो बन करके रहती है, परन्तु वह एक मानव दुःखद का कारण बन गया, मेरे प्यारे! देखो तुम्हें मैं यह विवेचना करा रहा हूँ कि राजा जनक एक उपाधि है, राजा जनक के यहाँ उपाधि क्यों प्राप्त होती है, जब अग्नि प्रचण्ड हो जाती है, अग्नि की धारा, जहाँ द्यौ-लोक में, जहाँ उन्होंने प्रवेश किया तो मानो देखो पवित्र सा एक ब्रह्माण्ड, पवित्र सा एक जगत्, पवित्रता की धाराएं हमारे समीप आ जाती हैं।

मेरे प्यारे! देखो राजा जनक अपने में याग करके, जब ऋषि-मुनियों ने यह प्रश्न किया, तो उन्होंने कहा कि–"याग करना तो मानव का जन्मसिद्ध अधिकार होता है।" सृष्टि के प्रारम्भ में जब मानो यह संसार, अपने स्वरूप में था, तो उस काल में ब्रह्मा के पुत्र एक अथर्वा हुए, परन्तु वह जो ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा थे, वह याग करते थे। नाना प्रकार की उपाधियों के सम्बन्ध में चर्चा करते रहते थे। परन्तु देखो, जब यह विचार आता है, 'सम्भवा देवो ब्रह्म वायु रथ ब्रह्मः अकाय स्वस्ते।'

जल-धारा-करण विज्ञान

मेरे प्यारे! देखो अग्नि की धाराओं में जब जल की धाराएं

राजा ने प्रारम्भ कीं, तो देखो धाराएँ क्या, मुनिवरो! देखो, वह पूर्व दिशा में अग्नि की धाराओं में जब जल की धाराएँ राजा ने प्रारम्भ कीं, तो मुनिवरो! देखो, वह पूर्व दिशा में अग्नि बन करके रहती है, मानो दक्षिणाय में वह इन्द्र बन करके रहते हैं, वह मानो देखो, (पश्चिम में) वरूण बन करके रहते हैं, उत्तर में वह सोम बन करके रहते है कि सोम को ऋषि-मुनि पान करते हैं, वह सोम बन करके रहते हैं। 'सौम्यम्भवा स्म्भवेलोकाम्', हे सोम! तू सोम है, तू हमें अमृत बनाने वाला है। तो मेरे प्यारे! देखो, वह 'पश्चिमामभा देवसया उत्तरायण' वह सोम बन करके रहते हैं। परन्तु ध्रुवा में भी आप मानो देखो, विष्णु बन करके हमारा पालन कर रहे हैं। ऊर्ध्वा में बृहस्पति बन करके मानो देखो धारा-विद्या की धारा प्रदान कर रहे हैं। तो जब राजा जनक ने यह कहा कि–"जब मैं याग में परिणित हुआ तो मुझे कोई स्थली ऐसी दृष्टिपात् नहीं हुई, जहाँ सोम को मैं यह उच्चारण करूँ कि सोम हम से ओझल है।" मानो देखो इस प्रकार जो क्रियाकलाप राजा के यहाँ होता है, तो वह विदेह है। विदेह इसलिये ही नहीं कि मोह नहीं होता, ममता नहीं होती है, परन्तु देखो राजा का नाम जनक उपाधि प्रदान किया गया है। बाल्य-काल का नामोकरण कुच्छ है और जब उपाधि को प्राप्त करते हैं तो और कुच्छ बन जाते हैं।

उपाधिवाद की उपादेयता

मुनिवरो! देखो तुम्हें इस क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जिस

क्षेत्र में नाना प्रकार की उपाधियों का निर्माण हो रहा हैं। नाना प्रकार की उपाधियाँ जन्म लेती हैं, तो मानो देखो, संसार-राष्ट्र का एकोकीकरण होता है, राष्ट्र मानो ऊँचा बनता है। वह 'विदेह राज जनक' (एक उपाधि है, जिसमें) मानो देखो महापुरुषों की पवित्र सेवा करना, मानो उनके चरणों की वन्दना करते रहना है और इस प्रकार उस परब्रह्म परमात्मा की प्रतिभा का जन्म हो जाता है। एक महान् राजा देखो कैसा है? 'राज ब्रहे वाचां भषिते लोकाम्' मेरे प्यारे! देखो जव वह प्रभु सर्वत्र है तो कहाँ जाये पाप-कर्म करने के लिये?

माता अपने बालक का पालन कर रही है और माता जब पालन करती है तो यह विचारती है कि मेरा बालक, मेरा बाल्य देखो महानू बनेगा। माता उसे मानो यह उपदेश देती है कि यह बालक महान् बनेगा, पवित्र बनेगा, परन्तु देखो, यह राष्ट्र का राष्ट्रवेत्ता बनेगा, तो माता केवल कर्त्तव्य का पालन कर रही है, ममता-मोह में जाना उसका अधिकार नहीं है, केवल पालना का उसका अधिकार है। वह पालना करके मानो राष्ट्र को प्रदान कर देती है। तो मानो वह राष्ट्र का पालन कर रहा है, वह निष्पक्ष कर्त्तव्यवाद है।

मेरे प्यारे! देखो, राजा जनक से एक समय महात्मा अर्द्धभाग ने कहा कि—"महाराज! आप को 'विदेह' क्यों कहते है?" राजा जनक कहता है, "मैं नहीं जानता, मुझे 'विदेह' क्यों कहते है।"

मेरे प्यारे! एक समय शौभनी ऋषि आये। उन्होंने भी यह प्रश्न किया कि, "आपको मानो देखो, 'विदेह' क्यों कहते हैं?" तो मुनिवरो! देखो, राजा जनक के अश्वल पुरोहित ने यह उत्तर दिया कि—"इनको 'राष्ट्रं व्रहे' मानो इनको 'विदेह राज' इसलिये कहते हैं, क्योंकि यह विदेह हैं, इन्हें मोह नहीं है, कर्त्तव्यवाद है; मानो राष्ट्र से मोह नहीं है, कर्त्तव्यवाद है। यह राष्ट्र, सब त्याग सकते हैं, परन्तु राष्ट्र का कर्त्तव्य क्रियाकलाप में लाना ही मानो, राष्ट्रवाद की प्रतिभा कहलाती है।"

वशिष्ठ और सोमकेतु की प्रजापति-विवेचना

जब मैं यह विचारता हूँ कि हमारे यहाँ प्रजापति की विवेचना आती है, मैं उन्हीं क्षेत्रों में जाना चाहता हूँ, जहाँ मुनिवरो! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि के आश्रम में महर्षि सोमकेतु ने यह कहा था कि 'इन्द्रो भवितां मोक्षां भविते रूस्ता।' आचार्य कहता है कि—"महाराज! यह जो मानो इन्द्र (आत्मा) है, इसकी प्रतिष्ठा कहाँ है? यह अपने में खिलवाड़ कर रहा है।" तो मेरे पुत्रो! उन्होंने यह जब प्रश्न किया, ऋषि ने, तो राजा जनक ने, मानो देखो, राजा जनक की उपाधि प्रदान करते हुए, जनक आदि का उदाहरण देते हुए, उन्होंने कहा,—'प्रजापति वासं भो वर्णा', क्योंकि राजा के तीन प्रकार के स्वरूप हैं, परन्तु विज्ञान का दुरुपयोग राजा के राष्ट्र में यदि हो गया, वह प्रजा के वैभव को यदि अपने में धारण करेगा, प्रजा राष्ट्र के वैभव को धारण करेगी

तो रक्त-भरी क्रांतियाँ आ जायेंगी। मेरे प्यारे! देखो, वह राजा प्रजापति है, जो अपने राष्ट्र में क्रियाकलाप बना रहा है कि मेरे राष्ट्र में नियमन होना चाहिये और नियमबद्ध मेरा राष्ट्रीय क्रियाकलाप बनता रहे।''

परमात्मा का प्रजापति रूप

मेरे पुत्रो! जब इस प्रकार की धाराएँ उन्होंने वर्णन कीं। उन्होंने कहा–**''प्रजापति नाम परमपिता परमात्मा का है, जो सबका स्वामित्व है। कोई स्थली ऐसी नहीं, जहाँ परमपिता परमात्मा न हो स्वामी (रूप में।)** मानो देखो, माता के गर्भस्थल में जब बालक का निर्माण होता है, पुत्र का निर्माण होता है, तो मानो वह प्रजापति, वह परमपिता परमात्मा प्रजापति बन करके ही मानो उसका निर्माण करता है। वह प्रजापति है, नाना प्रकार की नस-नाड़ियों का निर्माण, मेरे प्यारे! देखो, उसके प्रत्येक अंग का निर्माण कर देता है। प्रभु तो इतना वैज्ञानिक है, इतना महान् प्रजापति है। बेटा! वह प्रजापति नहीं, वह 'विश्वकर्मा' कहा गया है।

प्रकृति का रस–मन

उस परमपिता परमात्मा को हम एक धारामयी, देखो, विष्णु के रूप में वर्णन करते हैं। परन्तु वह प्रजापति विद्यमान हो करके, कहीं मानव के मनस्त्व का निर्माण कर देते हैं, जो प्रकृति का रस

माना गया है। एक समय, बेटा! शौभनी ऋषि से कहा कि "यह मन क्या है?" उन्होंने कहा—"यह मन प्रकृति का अन्तिम सूत्र है, अन्तिम चरण है। मानो यह प्रकृति का रस है, जिस रस के द्वारा मानो प्रजापति अपने में प्राजात्व आभरण में रत्त होने लगता है। तो मानो यह 'प्रजापति' कहलाता है।" 'सम्भवा ब्रह्मवाचो देवं लोकां वायु सम्भवा दिव्यं गत प्रमाणां लोकां वसु क्षुद्रो गमं प्रमाणस्ति विद्यं भवा', वेद का आचार्य कहता है, वशिष्ठ मुनि महाराज—"महाराज! वह जो प्रजापति है, मानो वह परमपिता परमात्मा, वह मेरा स्वामित्व है। जब माता के गर्भ में हम थे, तो कौन निर्माण कर रहा था? मानो देखो, मन, प्रकृति के रस को निर्धारित कर दिया!

चार प्रकार की बुद्धियों के क्षेत्र

जब वह प्रकृति का रस बहने लगा इस मानव के शरीर में, तो बेटा! उसी से चारों प्रकार की धाराओं का जन्म हो गया। एक धारा का नाम 'बुद्धि' है, एक का नाम 'मेधा' है, एक का 'ऋतम्भरा' और एक 'प्रज्ञा' कहलाती है। यह मन की मानो चार प्रकार की उग्र गतियाँ कही जाती हैं। मेरे प्रभु ने वह मस्तिष्क और हृदयस्थल, दो उनके स्थानों की चुनौती प्रदान की है। मेरे प्यारे! जैसे मन की धाराओं का जन्म हुआ, तो बुद्धि पुनः उपलब्ध हो जाती है। मानो जब बुद्धि अपने में दृष्टिपात् करके मौन होने लगती है, तो वह प्रज्ञा का जन्म हो जाता है। मेरे प्यारे!

प्रज्ञा में मेधा का जन्म हो जाता है। वह मेधावी बन करके संसार के मानो लोक-लोकान्तरों में क्रियाकलाप करने लगता है। वह लोकों की धाराओं में रत्त हो जाता है। मानव जब उससे मौन हो जाता है, ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात् करके, बेटा! कहाँ तक जाता है मानव का यह प्रज्ञा? यह मानो देखो मेधा कहाँ तक जाती है? मेधा, मुनिवरो! देखो पृथ्वी के गर्भ में प्रवेश कर जाती है। यह मेधा है, जो मानो परमाणु में रमण कर जाती है। इसी प्रकार यह कहाँ तक, सूर्य मण्डल में चली जाती है। यही प्रज्ञा है, यही मेधा है, मानो जो सूर्य से चन्द्रमा में गति करने लगती है। और, यही मेधा है, जो मानो देखो एक आकाश-गंगा में प्रवेश कर जाती है, आकाश-गंगा के लोक-लोकान्तरों को गणना में लाने लगती है।

मेरे प्यारे! जब मुझे वशिष्ठ मुनि महाराज और सोमकेतु ऋषि का जीवन स्मरण आता है, तो बेटा! वे दोनों चिन्तन करते थे। एक समय, बेटा! एक ही चट चिन्तन करते रहे; बारह वर्ष हो गये थे, बेटा! एक आकाश-गंगा पर चिन्तन करते-करते, उस आकाश-गंगा में सूर्यों को जानने के लिये। मुनिवरो! उन्होंने अगणित सूर्यों की गणना कर ली थी। यह आकाश-गंगा को कौन धारण करता है? बेटा! योगेश्वर उस आकाश गंगा को धारण कर लेता है, जहाँ लोक-लोकान्तरों की माला बना करके, बेटा! अपने में धारण करने लगता है, वह माला बना करके जब माला में सूत्रित हो जाता है। आगे वह मानो देखो उसी आकाश-गंगा को,

एक आकाश गंगा नहीं, दो आकाश गंगा नहीं, बेटा! देखो एक अरब छयानवे करोड़ आकाश-गंगाओं को एक निहारिका के रूप में, बेटा! योगेश्वर दृष्टिपात् करता है। वह प्रज्ञा वाला है! मेरे प्यारे! देखो उन्होंने इस ब्रह्माण्ड की चर्चा पुरातन काल में भी की। मेरे प्यारे! देखो एक अरब पचानवे करोड़ नवासी लाख बावन, निहारिकाओं में मानो देखो, एक अवन्तिका, मुनिवरो! देखो उसे एक अवन्तिका दृष्टिपात् होने लगी। यह अवन्तिका बन जाती है, बेटा! मेरे प्यारे! अवन्तिका-निहारिका, आकाश-गंगा से सौर-मण्डल और सौर-मण्डलों में, बेटा! यह सूर्य इत्यादि समाहित हो जाते हैं।

मेरे प्यारे! जब मैं इस विचार पर जाने लगता हूँ, बारह वर्षों के अनुष्ठान में, उन्होंने यह ज्ञान पाया कि यह तो बड़ा विचित्र एक ब्रह्माण्ड है। देखो प्रभु ने जगत् को, इस हमारे मानव-शरीर को रचा था माता के गर्भ में, जब मानो वह निर्माण कर रहा था, वह प्रभु विश्वकर्मा बन करके माता के गर्भ में हमारे शरीरों का निर्माण कर रहा था, तो मानो देखो बुद्धि और मेधा, मानो देखो बुद्धि से मेधा का अभिप्रायः मानो देखो मेधा में, बेटा! यह सर्वत्र समाहित हो रही है। मेधा ऋतम्भरा, और प्रज्ञावी बन करके, बेटा! जब इससे भी उपराम हो गया, लोक-लोकान्तरों से उपराम हो गया, तो मौन हो करके, बेटा! देखो उसी मेधा-प्रज्ञा में प्रवेश कर गया। जब वह प्रज्ञा में प्रवेश कर गया तो प्रज्ञा उसे कहते हैं, जहाँ इस संसार को दृष्टिपात् करने के पश्चात् बेटा! वह साधक,

वह योगेश्वर मौन हो जाता है। जब वह मौन हो गया, मौन होने के पश्चात्, मेरे पुत्रो! देखो बुद्धि, मेधा, ऋतम्भरा में, बेटा! देखो वह ऋतम्भरा से प्रज्ञा में प्रवेश कर गया। **प्रज्ञा, बेटा! उसे कहते है, जहाँ केवल ब्रह्मरंध्र में, बेटा! इंगला, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों का मिलान करके ब्रह्मरन्ध्र की एक गतियाँ होने लगती हैं! मानो बारह प्रकार के लघु मस्तिष्कों को जाना जाता है।**

सृष्टिकर्त्ता प्रजापति

बेटा! देखो उसके पश्चात् वह इनका सबका एकोकीकरण करता है। उस समय, मुनिवरो! देखो वह चित्त के मण्डल को उड़ाने जाते हैं। चित्त के मण्डल को अपने में निहित करके उसीमें समाहित हो जाते हैं। परमपिता परमात्मा की धारा उनके समीप आ जाती है। तो परिणाम क्या? मेरे पुत्रो! मैं दूरी न चला जाऊँ, विचार यह देना चाहता हूँ, विचार मैं यह दे रहा हूँ कि मुनिवरो! देखो ऋषि-मुनि अपने में कितने तत्पर रहते हैं। प्रजापति कौन है? जो प्रजापति बन करके, बेटा! निर्माण कर रहा है। मैं माता से जब यह प्रश्न करता हूँ "हे मातेश्वरी! यह तेरा पुत्र है?" तो माता कहती है "पुत्र मेरा है।" परन्तु जब यह प्रश्न करता हूँ कि—"माता वह पुत्र का निर्माण कैसे हुआ है? तो माता निरूत्तर हो जाती है। कहती है, "मैं निर्माण को नहीं जानती" जब मानो देखो मैं यह कहता हूँ, "हे माता जब तेरा पुत्र है, तो तू निर्माण

को क्यों नही जानती?" मानो देखो, माता का पुत्र क्या है? माता का वह एक संकल्प ही बन गया है। एक संकल्प मात्र केवल कर्त्तव्यवाद के लिये, वह पुत्र बन गया है। परन्तु निर्माण करने वाला कौन है? एक शिशु है। वह शिशु कदापि भी मानो देखो उसका आधार नहीं रहता। वह सदैव रहने वाला है। मानो वह शिशु है, वह माता के गर्भ में वह परमाणुवाद है। वह अणुवाद है, वह वृत्तिवाद है, परन्तु देखो निर्माण करने वाला कौन? प्रजापति है।

हृदय के दो प्रकार

मेरे प्यारे! देखो यह चार प्रकार की बुद्धि और उसी में मानो हृदय भी, दो प्रकार के हृदयों की कल्पना की है, ऋषि-मुनियों ने, बेटा! एक कल्पना, हृदय में है, एक कल्पना लघु-मस्तिष्क में रहती है। एक मानो देखो अप्रतिम् एक हृदय लघु-मस्तिष्क में, एक हृदय मानो 'अनुष्ठानं ब्रह्मे वाचो' मानो देखो अनुष्ठान की स्थलियों में देखो हृदय रहता है। जब हृदय की कल्पना करते हैं, तो ऋषि-मुनियों ने, बेटा! बड़ी विचित्र उड़ानें उड़ी हैं, योग-साधना में प्रवेश हो करके बड़ी विचित्र उड़ानें उड़ी हैं। तो मेरे प्यारे! देखो वह उड़ान क्या है, ऋषि-मुनियों की? वह, मुनिवरो! देखो हृदय दो प्रकार के हैं। मानो एक कण्ठ के ऊर्ध्वा भाग में, एक मानो देखो हृदय-स्थली में रहता है। मानो देखो, बुद्धि चार प्रकार की हैं। अवस्था, मेरे प्यारे! प्रभु ने चार प्रकार की

निर्धारित कीं। मानो देखो, सबसे प्रथम जागरूक, स्वप्न, सुषुप्ति और तुर्या है। इसका मानो नियमन कौन कर रहा है? पुत्रो! वह कौन नियमन करने वाला है? वही, एक प्रजापति है।

प्रजाओं का स्वामी–प्रजापति

वह प्रजाओं का स्वामी है, मानो प्रत्येक प्रजा में, यह नियमन हो रहा है, एक धारा बन रही है। तो मेरे पुत्रो! देखो हम प्रभु के आधार, आगाध, उस महा-तरंग मे प्रवेश कर जायें, जहाँ वह आगाधता उत्पन्न होती है। हमें उसकी रचना के ऊपर विचार-विनिमय करना है। माता को ज्ञान नहीं, पितर को ज्ञान नहीं है। राजा से कहा, "हे राजा! तू प्रजापति है? तू प्रजा का स्वामित्व है?" उन्होने कहा–"मैं प्रजापति नहीं हूँ, परमपिता परमात्मा प्रजापति है।" वह भी यही कह देते हैं, "मैं तो केवल एक नियम में चलाने के लिये, चरित्र की धारा को जन्म देने के लिये मैं प्रजा का निधित्त्व करने वाला हूँ।"

मेरे पुत्रो! देखो, वह प्रभु महान् है। माता के गर्भ में निर्माण करने वाला है। माता के गर्भ में, बेटा! स्वर्ण है, माता के गर्भ में, बेटा! नाना प्रकार का धातु-पिपाद गति कर रहा है, परन्तु देखो वे देवता अपनी-अपनी आभा को ले करके गतियाँ कर रहे हैं। वह बहत्तर करोड़, बहत्तर लाख दस हज़ार दो सौ दो, नाड़ियों का निर्माण करने वाले हैं। प्रत्येक नाड़ी का सम्बन्ध, बेटा! देखो,

बुद्धि-पिपाद से लगा हुआ है। यह कैसा विचित्र, बेटा! यह प्रभु का जगत् है! यह प्रभु का कैसा नवीन् एक ब्रह्माण्ड है, जिसके ऊपर मानव ऊँची से ऊँची कल्पना करता रहता है!

तो महात्मा वशिष्ठ ने कहा, "हे सोमकेतु! यह प्रजापति है, जो प्रजा का स्वामी है। वह परमपिता परमात्मा प्रजा का स्वामी है। जैसे पृथ्वी मण्डल है, ये नाना पृथ्वियाँ, मानो तीस लाख पृथ्वियाँ तो हमारी गणना में आ गई हैं, इन तीस लाख पृथ्वियों पर प्राणी मात्र रहता है। मानो देखो चन्द्र-लोकों पर और भी नाना प्रकार के लोक-लोकान्तर हैं, जहाँ पर प्राणी वास करता है, मानव वास कर रहा है। यह अनुपम एक जगत् चल रहा है।" तो प्रभु का अनुपम एक जगत् है, बेटा! इसके ऊपर हम विचारते रहते हैं। मानो हमारा अन्तर्हृदय भी आश्चर्य में परिणित हो जाता है और विचारते हैं कि वास्तव में यह प्रभु का कैसा अनूठा जगत् है, जिसके ऊपर, बेटा! परम्परागतों से मानव अनुसन्धान अथवा अन्वेपण करता रहा है, विचारता रहा है और चिन्तन में लाता रहा है, प्रजापति के ऊपर।

प्रजापति राजा

वह परमपिता परमात्मा प्रजापति है, राजा प्रजापति है, राजा विदेह है, राजा जनक है, परन्तु देखो वह जो अधिराज है, वह महाधिराज वह महादिव्य कहलाता है, बेटा! राजा को जब हम जनक कहते हैं तो जनक और विदेह, मेरे पुत्रो! देखो जनक और

विदेह क्यों कहते हैं, क्योंकि वह निर्मोही होते हैं, उन्हें मोह नहीं होता, ब्रह्मज्ञान में रत्त रहते हैं, राष्ट्र को मानो देखो ब्रह्मज्ञानी बना देते हैं। इसी प्रकार जो प्रजापति राजा है, वह राजा प्रजापति है, जो अपने राष्ट्र में ज्ञान को, विज्ञान को लाते हैं, परन्तु विज्ञान का दुरुपयोग नहीं होने देते।

ब्रह्माण्ड का निर्माता-नेता–प्रजापति

मानो देखो इस प्रजापति में यह ब्रह्माण्ड समाहित हो रहा है। अरे! कौन प्रजापति है? वह परमपिता परमात्मा, जो ब्रह्माण्ड का नेतृत्त्व करने वाला है। जो इसको निर्माणित कर रहा है। बेटा! मुझे तो ऐसा स्मरण है, वशिष्ठ मुनि महाराज और सोमकेतु ने बारह वर्ष के अनुष्ठान में एक निर्णय और दिया है कि मानो देखो, कोई-कोई लोक तो ऐसा है, जिस लोक के लिए देखो बहत्तर-बहत्तर सूर्य प्रकाशित करते हैं। परन्तु देखो कुछ ऐसे लोक हैं, जो मानो देखो कुछ ऐसे मण्डल हैं कि मण्डलों में मानो देखो तीस हज़ार पृथ्वियाँ उसमें समाहित हो करके और मानो देखो उसमें बीस हज़ार सूर्य समाहित हो करके, मानो देखो उनको पुनः प्रकाशित किया जाता है। बहुत से मण्डल ऐसे हैं, मानो जिनको जानते-जानते, मुनिवरो! देखो उनका प्रकाश भी पृथ्वी मण्डल तक नहीं आ पाता और सृष्टि का काल समाप्त हो जाता है। तो बेटा! यह कैसा अनुपम (प्रजापति का ब्रह्माण्ड) है!

महर्षि भारद्वाज का अपर-प्रकाश-अन्वेषण

मानो देखो 'मंगलं ब्रीहि वाच प्रव्हे लोकाम्', बेटा! एक समय, मुझे महर्षि भारद्वाज मुनि ने एक वाक्य बड़ा आश्चर्य का प्रकट किया था। उनका यान मानो जब उनके आश्रम से गति करने लगा तो मानो देखो वह गति करता हुआ पृथ्वी से उड़ान उड़ करके वह चन्द्रमा में पहुँचा; चन्द्रमा से उड़ान उड़ करके जब वह मानो देखो 'अस्वतं शुक्राय' शुक्र में पहुँचा। शुक्र से उड़ान उड़ी तो मंगल में चला गया, मंगल से उड़ान उड़ी, तो स्वाति नक्षत्र में चला गया; स्वाति नक्षत्र से उड़ान उड़ी तो रोहिणी कृतिका में चला गया; कृतिका से उड़ान उड़ी तो उड़ेनकेतु मंडल में चला गया; उड़ेनकेतु मण्डल से उड़ान उड़ी तो चन्द्रीति मानो मृचि-लोकों में प्रवेश कर गया; जो मृचि-मण्डल में पहुँचा तो मानो देखो एक मण्डल का प्रकाश आ रहा था तीव्र गति से और वह मृचि-मण्डल से मानो उसका समन्वय हुआ तो मृचि-मण्डल से समन्वय हो करके वह सूर्य से हुआ और सूर्य से हो करके चन्द्रमा से होता हुआ जब वह मानो देखो पृथ्वी की दिशा को आने लगा तो मानो देखो वह दिशा में भ्रमित हो करके प्रकाश मानो देखो वह बृहस्पति के आंगन को चला गया। परिणाम यह हुआ कि वह जो प्रकाश है, वह ऐसे मण्डल का प्रकाश है, जो इस पृथ्वी को प्रकाशित नहीं करने वाला था। मानो इस तक उसकी ज्योति आ ही नहीं सकती। तो मुनिवरो! देखो जव वह बृहस्पति के आंगन में रमण करता हुआ पुनः देखो द्वितीय दिशा बन गई तो

पृथ्वी से वह ओझल हो गया। मानो यह प्रकाश, मुनिवरो! देखो आज से तेरह लाख वर्षों पूर्व महर्षि भारद्वाज मुनि के विद्यालय में, बेटा! यन्त्रों के द्वारा दृष्टिपात् किया गया।

जननी का प्रजापति रूप

आज, मुनिवरो! देखो मैं विशेष विवेचना में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। आज मैं विज्ञान के युग में भी तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। विचार केवल यह है कि मुनिवरो! मैं आज प्रजापति की उपासना कर रहा था। आज प्रजापति के गुणों का गुणवादन कर रहा था। वह प्रजापति, मानो देखो, जो लोक-लोकान्तरों का स्वामित्व करने वाला है, वह प्रजापति है। राजा भी प्रजापति है और मुनिवरो! देखो माता को भी प्रजापति कहते हैं। कहीं-कही जननी माता को भी प्रजापति कहते हैं, क्योंकि वह प्रजा जिसको हम 'प्रजा' कहते हैं, वही माता की लोरियों का पान करती हुई, मानो उसी में पनपती हुई, मुनिवरो! देखो वही तो 'प्रजा' के स्वरूप को धारण करती है, वही तो प्रजापति है। उस माता को हम प्रजापति के रूप में दृष्टिपात् करते हैं, उसको निहारते रहते हैं। **"हे माता वेद तुझे प्रजापति कहता है, क्योंकि जिसको हम प्रजा कहते हैं, वही मानो तेरे पथ से हो करके, तेरे ही गर्भ से हो करके लोरियों का पान करके ही मानो वह प्रजा के रूप को धारण कर लेती है। हे प्यारी मां! तू अपने कर्तव्य का पालन कर रही है। मोह करना तेरा कर्त्तव्य**

नहीं है। मानो देखो ममत्त्व को धारण करके तू उसका निर्माण, मानो उसको तू महान् बना करके तू संसार को प्रदान कर देती है। मेरे प्यारे! देखो, वही तो उसका कर्त्तव्यवाद है, वही तो उसकी धारा है।

प्रजापति रूप में आत्मा

मेरे प्यारे! आज मैं विशेष विवेचना में तुम्हें नहीं ले जा रहा हूँ, केवल विचार यह चल रहा था, प्रजापति कौन है? मुनिवरो! देखो प्रजापति वह परमपिता परमात्मा है, जो स्वामित्व करने वाला है, जो इस ब्रह्माण्ड का नियन्ता है, नाना प्रकार की निहारिकाओं में रत्त रहने वाला है और लोकों को नियमन में, मानो नियम में परिणित कर रहा है। उनको गति दे रहा है, नियमन हो रहा है। वह नियमन हो करके ही, मेरे प्यारे! अपने में रत्त हो करके, इस संसार को निर्माणित कर रहा है। आओ, मेरे प्यारे! मैं विवेचना में ले जाना नहीं चाहता हूँ। प्रजापति कौन? देखो आत्मा को भी प्रजापति कहते हैं, क्योंकि आत्मा जब तक शरीरों में विद्यमान रहता है, तब तक यह मानव का शरीर प्रजाओं में गणनीय माना जाता है, परन्तु जब आत्मा निकल जाता है, आत्मा चला जाता है, तो बेटा! यह शून्यता को प्राप्त हो करके यह परमाणुवाद बन करके, यह प्रकृति का समूह बन जाता है। प्रकृति का मूर्धा बन जाता है।

बेटा! कैसा यह विचित्र जगत् है! आज जब मैं इसके

आश्चर्य में प्रवेश करता हूँ, तो मेरा अन्तर्हृदय तो प्रसन्न हो जाता है, हम अपने में यह अनुभव करते हैं कि यह कैसा प्रभु का अनुपम जगत् है! मानो एक-एक वस्तु पर चिन्तन करते रहो, विज्ञान में रत्त रहो, परन्तु यन्त्रता में दृष्टिपात् भी करते रहो, तो मेरे प्यारे! विचार यह चल रहा था कि बेटा! 'प्रजां ब्रह्म वाचा लोकम् आत्मा' आत्मा में मानो देखो कितनी प्रजा विद्यमान है! बेटा! मानो देखो इसी के कारण सूर्य है, इसी के कारण चन्द्रमा है, इसी के कारण में मानो तारामण्डल है, इसी के कारण में यह अग्नि विज्ञान है, इसी के कारण यह शब्द-विज्ञान है। मेरे प्यारे! देखो सब इसी के कारण हैं और जब यह निकल जाता है तो मानो देखो यह सब मृतक बन जाता है। ये सब अन्धकार में चले जाते हैं। बेटा! जो आज एक वैज्ञानिक बना हुआ है; वह वैज्ञानिक कल्पना कर रहा है, विज्ञानशाला में कि यह सूर्य है, यह मानो चन्द्रमा है, यह तारामण्डलों की माला बनी हुई है, जिससे आकाश वृत्तियों में रत्त रहने वाली है।

वही विचार रहा है कि अग्नि है। **अग्नि कितने प्रकार की है? आयुर्वेदाचार्य बन जाता है, तो पिच्चासी प्रकार की अग्नियों की धाराओं का जन्म हो जाता है। परन्तु यही अग्नि गार्हपथ्य बन करके रहती है, यही अग्नि वैश्वानर बन करके रहती है, यही अग्नि मानो देखो 'गृहपथ्याम्' मानो गृहपथ्य नाम की अग्नि बन करके रहती है।** बेटा! ये अग्नि के कितने स्वरूप बन गये हैं। परन्तु यही अग्नि शब्दों के रूप

में है। शब्द, मुनिवरो! देखो राष्ट्रों को पवित्र बना देता है। शब्द ही मानो जब कटु हो जाता है तो राष्ट्र में अग्नि प्रदीप्त कर देता है, मानो वह भी शब्द-अग्नि के रूप में परिणित हो करके।

जब बेटा! इस मानव के शरीर से मानो आत्मा निकल जाता है, चला जाता है अपने स्वरूप में, तो बेटा! यह लोक-लोकान्तर भी मानो वैज्ञानिक से ओझल हो जाते हैं। वह कहाँ चला गया जगत्? बेटा! वह कहाँ चला गया? आत्मा के निकलते ही मानव के शरीर से माता रूदन कर रही है। कहती है "मेरा पुत्र है।" पत्नी कहती है "मेरा पति है" मानो भौजी कहती है, "मेरा विधाता है।" तो एक विचित्र जगत् बन गया है। मेरे प्यारे! वह शून्य है, वह मानो देखो जो आज से पूर्व कह रहा था, "यह चन्द्रमा है, यह सूर्य है, मैं वैज्ञानिक बन करके गणना कर रहा हूँ।" परन्तु एक आत्मा न रहने से वह विज्ञान कहाँ चला गया? वह प्रजा कहाँ चली गई, परमाणुओं की?

मेरे प्यारे! देखो, वह प्रजा अपने ही स्वरूप में परिणित हो गई। मेरे प्यारे! वह अपने स्वरूप में चली गई। आत्मा का ह्रास नहीं होता, वह सदैव अमृत रहने वाली है। परमाणुवाद का मानो देखो ह्रास नहीं होता, वह अपने-अपने स्वरूप में चला गया। परन्तु जो उन्हें दृष्टिपात् कर रहा था, वह न रहा। माता से प्रश्न कर रहा हूँ, "माता! तू जो रूदन कर रही है, क्यों कर रही है?"

वह कहती है, "मेरा पुत्र था, नहीं रहा।" परन्तु तब मैं यह प्रश्न करता हूँ, "माता! क्या शरीर तेरा पुत्र है, या आत्मा तेरा पुत्र है?" परन्तु यदि वह आत्मा को पुत्र कहती है, तो आत्मा को माता जानती नहीं, वह कितना विशाल है। परन्तु यदि शरीर को अपना पुत्र कहती है, शरीर उसके संग विद्यमान है, मानो उसे अपने कंठ में धारण नहीं कर सकती। मेरे प्यारे! देखो यह कैसा विचित्र एक महान् जगत् है, जिसके ऊपर मानव विचारता रहता है, चिन्तन करता रहता है, मनन करता रहता है! अन्त में, बेटा! देखो यह सर्व जगत् माता के संकल्प में पुत्र बन गया है। वह केवल आत्मा प्रजापति है, वह जो प्रजा, लोक-लोकान्तर, मानो पञ्च-महाभूत बना हुआ था, वह प्रजा तो अब समाप्त हो करके प्रजापति में परिणित हो गया है। तो इसीलिए आत्मा को प्रजापति कहते हैं।

याग की प्रतिष्ठा–प्रजापति

मेरे प्यारे! यह प्रजापतित्व हमारे समीप चला आता है, तो आश्चर्य चकित होने लगता है। यही प्रजापति है, बेटा! जो याग में परिणित हो जाता है, यही प्रजापति है, मानो देखो जो याग में प्रतिष्ठित हो जाता है। 'यागां भविते देवाम्' जितना मानो देखो सुकर्म है, सु-चिन्तन है, सु-मनन है, मानो देखो, वह सर्वत्र याग के इस रूप को धारण करके और वह सर्वत्र प्रजापति उसमें ओत-प्रोत हो जाता है।

वेद की प्रेरणा

यह है, बेटा! आज का वाक्य। आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें देने नहीं आया। केवल, बेटा! मैं एक सूक्ष्म सा परिचय तुम्हें देने के लिये चला आता हूँ, क्योंकि यह परिचय है। वेद हमें कुछ परिचय देता है, जो परमपिता परमात्मा की अमूल्य देन है अथवा सौगात है, वह सुसज्जनीय है। मानो हमें वह कुछ प्रेरणा देती है और वह प्रेरणा के आधार पर वेद क्या कहता है? वेद हमें कौन-कौन से मार्ग पर ले जाता है? यह मानो प्रत्येक वेद-मन्त्र हमें घोषित कर रहा है, घोषणा कर रहा है, "हे मानव! आ, तू सत् के पथ को अपनाने वाला बन!"

राजा जनक की दिनचर्या

मेरे प्यारे! विचार-विनिमय क्या? आज मैं तुम्हें कुछ चर्चा कर रहा था। मुनिवरो! देखो राजा जनक विदेह कौन है? जो निर्मोही रहने वाला है, जो कर्त्तव्यवाद का पालन करता है। राजा जनक के जब राष्ट्र को हमने किसी काल में दृष्टिपात् किया, तो वह स्वयं राष्ट्र में उस अन्न को ग्रहण करते थे, जिस अन्न का कोई अधिकारी न हो कहीं पर। मानो स्वयं कला कौशल करके द्रव्य को पान करते थे। वह राजा मानो परमपिता परमात्मा का चिन्तन करते थे, पञ्च-याग करते थे। संगतिकरण में, यागों में परिणित हो करके, मानो प्रजा का पालन करना और अपने को ऊँचा बनाना, सुसज्जित मानो उनका क्रियाकलाप था। उनके

विश्राम की एक सूक्ष्म सी स्थली रहती, मानो देखो राष्ट्र का क्रियाकलाप करते रहते थे। राष्ट्र से मानो उन्हें अवकाश प्राप्त होता तो देखो प्रभु का चिन्तन, ऋषि-मुनियों के सत्संग, ऋषि-मुनियों की मानो सभाएं होती रहतीं। ब्रह्म-चिन्तन होता रहता। प्रश्न होता रहता, कौन ब्रह्मवेत्ता है? कौन ब्रह्म की उड़ान ऊँची उड़ रहा है? कहीं याज्ञवल्क्य को ऊँचा कहा, कहीं मानो अष्टावक्र को ऊँचा कहा है कि "मेरे पूज्य गुरू रहे हैं", कहीं मानो देखो अर्द्धभाग को, कहीं महात्मा दिग्ध को, नाना देखो कहीं अश्वल को अपना पुरोहित कह करके राष्ट्र को, मेरे प्यारे! देखो ब्रह्म-विद्या में परिणित करा दिया।

देखो, जिस भी काल में राजा के यहाँ कोई भी ध्वनि आई तो देखो ब्रह्म की आ रही है, ब्रह्म-ज्ञान की आ रही है, तरंगवाद की आ रही है, मानो देखो उसका राष्ट्र एक भव्य पवित्र रहा है। मुनिवरो! देखो अकाल पड़ता तो राजा स्वयं कृषि का उद्गम करते, तो समय पर वृष्टि हो जाती थी। तो मेरे प्यारे! देखो राजा जनक विदेह कहलाते थे। आज मैं, बेटा! साहित्य में तो नहीं पहुँचा हूँ, केवल मैंने कुछ शब्दों का प्रतिपादन अथवा उसके ऊपर कुछ चर्चाएं की हैं।

आज का विचार क्या? मेरे प्यारे! आज का विचार यह कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण-गान गाते हुए, बेटा! इस संसार-सागर से पार हो जाएं,

जो यह संसार नाना प्रकार के मान और अपमान का जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है। यह मान-अपमान की तरंगें आ रही हैं, जो प्राणी को स्पर्श करके, मुनिवरो! प्राणी को प्रभावित कर रहा है। प्राणी अपने में अनुभव कर रहा है, मानो मान-अपमान को त्याग करके। जो मानव त्यागता है, वही मानो प्रभु को प्राप्त हो जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार अब हमारा समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हम परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रत्त होते रहें और प्रजापति परमपिता परमात्मा है जो, मेरे प्यारे! देखो एक मण्डल से, पृथ्वी से, एक परमाणु से ले करके, अणु से ले करके और जो, मेरे प्यारे! देखो लोक-लोकान्तर, निहारिका क्या, अवन्तिका क्या, मानो देखो यह निहारिका-अवन्तिका-आकाश-गंगा ये सब, मानो प्रभु इनका नियमन कर रहा है। वह प्रजापति है, जैसे मानव के शरीर का नियमन करने वाला इस शरीर में आत्मा है। आत्मा जब तक रहता है, तो मानव-शरीर क्रियाशील रहता है, वह प्रजा बनी रहती है, परन्तु आत्मा के निकल जाने से शून्यता प्राप्त हो जाती है। यह है, बेटा! आज का वाक्य मुझे समय मिलेगा मैं शेष चर्चाएं, तुम्हें कल प्रगट करूंगा। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन।

श्री वैजनाथ अवरोल
पंजाबी बाग, १३-४-८५

ध्रुवा कला

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भांति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुण-गान गाया जाता है, जो परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गये हैं। और जितना भी यह जड़-जगत् अथवा चैतन्य जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में प्रायः वे परमपिता परमात्मा दृष्टिपात् आते रहते हैं।

प्रबल इच्छा

जब मानव अपनी गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो जाता है तो उस परमात्मा की प्रतिभा अथवा उसकी महानता उसके समीप रहती है और उन दोनों का परस्पर मानो समन्वय होता रहता है। इसीलिए प्रत्येक मानव उस परमपिता परमात्मा की महती का अथवा उसके गुणों का सदैव गुण-गान गाता रहता है और उसकी प्रबल इच्छा यह बनी रहती है कि **'परमात्मा के इस अनन्तमयी ब्रह्माण्ड को मैं जानने वाला बनूँ और उसकी महती में मेरी महती और उसी में मैं रत हो जाऊँ, क्योंकि जिससे इस**

प्रकृति के आवेशों से उपराम हो करके चेतन देव की आभा में रत हो जाऊँ!' ऐसी प्रत्येक प्राणी की प्रबल इच्छा बनी रहती है।

प्राण-प्रतिभा

वह परमपिता परमात्मा विज्ञानवेत्ता है, क्योंकि जितना भी विज्ञान है, चाहे वह भौतिक रूप में है, चाहे वह आध्यात्मिक रूप में विद्यमान रहता है, दोनों प्रकार के विज्ञान के गर्भ में वह परमपिता परमात्मा निहित रहता है। क्योंकि प्रत्येक मानव सृष्टि के प्रारम्भ से ही अपने में अन्वेषण करता रहा है और प्राणों को जानने के लिए सदैव उत्सुक रहा है, मानो प्राणों के तारतम्य को वह जानने की इच्छा करता रहा है। कहीं मानो देखो, प्राणों की चेतना में ब्रह्म को दृष्टिपात् करता रहा है; कहीं मानो मानवीयता में प्रेरित होता रहा है। जो विशेष प्राणों में जो प्राणों का विभाजनवाद दृष्टिपात् आता रहता है, वही विभाजनवाद बाह्य जगत् में, परमात्मा के अनुपम जगत् में भी वही दृष्टिपात् आता रहता है, क्योंकि परमाणुओं का आदान-प्रदान, तरंगों का आदान-प्रदान होता रहा है और उन्हीं तरंगों की आभा में कहीं शब्द व्यापक बन जाता है, कहीं मानो स्थूल जो तरंगें हैं, वे सूक्ष्म तरंगों के ऊपर अश्वत्थ हो करके वे भी मानो अपने को व्यापक रूप में धारण करती रही हैं। जिस प्रकार मानव अपने में अपनेपन का ही भान करता हुआ इन प्राणों की प्रतिभा को जानने लगता

है और प्राण और अपान के मिलान से ही, मेरे प्यारे! मानव इस प्रकृति और प्रकृति की बृहि आभा में रत होता रहा है।

देव-प्रेरणा

आओ, बेटा! मैं इस सम्बन्ध में, प्राणों के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं देने आया हूँ, केवल विचार-विनिमय यह है कि आज मैं, मुनिवरो! तुम्हें उसी क्षेत्र में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ मानव को एक-दूसरे से प्रेरणा प्राप्त होती है और अपने में प्रेरित हो करके प्रायः ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ने लगता है। मुनिवरो! तुम्हें इससे पूर्व काल में जाबाला पुत्र सत्यकाम की चर्चाओं के ऊपर विचार दे रहा था, मानो देखो उनकी चार कलाओं के ज्ञान की चर्चाएं कीं। क्योंकि चार प्रकार का जो ज्ञान है, अथवा कलाएं हैं, वे वृषभ ने अथवा गऊँ के बछड़े ने उन्हें प्रदान कीं। और जब उन्हें चारों कलाओं का ज्ञान कराने के पश्चात् उन्होंने (वृषभ ने) यह कहा कि 'द्वितीय जो ज्ञान है, वह तुम्हें अग्नि देवता प्रगट करा सकेंगे'। **मेरे प्यारे! देखो हमारे इस मानव शरीर का जितना भी क्रियाकलाप हो रहा है, उन क्रियाकलापों में देवता अपने-अपने देवत्त्व को प्राप्त हो रहे हैं।**

अग्नि द्वारा सत्यकाम को चार कलाओं का ज्ञान

मुनिवरो! देखो जब गऊंओं को ले करके सत्यकाम अपने

आश्रम को, अपने गुरुआश्रम को गमन करते हैं, तो मुनिवरो! देखो अगला जो सायंकाल उन्हें हुआ, तो सायंकाल को गऊएं अपने-अपने स्थान पर स्थिर हो गईं। वे जब मानो स्थिर हो गईं तो उन्होंने सायंकाल को याग किया और अग्निहोत्र किया। अग्निहोत्र मानो, गो-घृत और गो-दुग्ध के द्वारा वह याग करने लगे, अग्नि प्रचण्ड करते हुए। मानो देखो, 'अग्नं ब्रह्मणः वृत्ते' वह 'रात्रि अस्तम्' मानो देखो याग करने के पश्चात् अपने में शान्त हो गये। रात्रि समय अपने विश्रामगृह में, अपने विश्राम में परिणित हो गये।

परन्तु अगला जो दिवस प्रातःकालीन् हुआ तो प्रातःकालीन् उन्होंने उसी प्रकार अग्नि को प्रदीप्त किया और अग्नि का आह्वान किया और यह कहा कि 'अग्नि अग्नि देवत्वं प्रमण प्रहा वृत्तं चतुष्टां कलः वृत्तं ब्रहे वृत्ताः' मेरे प्यारे! इस प्रकार अग्नि का आह्वान करते हुए उन्होंने जैसे गो-दुग्ध और गो-धृत के द्वारा मानो याग किया और याग करने के पश्चात् नाना प्रकार का साकल्य अथवा चरू ले करके उसमें हूत किया, जब सुगन्धित वायु मण्डल बन गया, तो उस समय अग्नि देवता प्रगट हुए और अग्नि ने कहा. "हे सत्यकाम! मैं तुम्हें चार कलाओं का ज्ञान कराए देता हूँ।" उन्होंने, बेटा! उन चार कलाओं में सबसे प्रथम, ध्रुवा, ऊर्ध्वा, समुद्र कला और अन्तरिक्ष कलाओं का, मानो देखो यह चार प्रकार का ज्ञान उन्हें दिया। 'अवृत्तम्' मानो देखो अन्तरिक्ष से ले करके अग्नि कला का उन्होंने वर्णन कराया और

यह कहा कि, "हे सत्यकाम! इन चारों प्रकार की कलाओं का तुम ज्ञान अपने में मानो परिणित करते हुए, अपने में धारण करते हुए तुम ज्ञान और विज्ञान की उड़ानें उड़ो।"

ध्रुवामयी विष्णु

मेरे प्यारे! देखो वह सत्यकाम इनके ऊपर विचार-विनिमय करने लगे। सबसे प्रथम कला का नाम 'ध्रुवा कला' कहा जाता है। आज के हमारे वैदिक पठन-पाठन में भी ध्रुवा का वर्णन आ रहा था 'ध्रुवा विष्णु वर्णनं ब्रह्म वृत्तं'। मानो देखो जितना भी पालन होता है, वह सर्वत्र ध्रुवा में होता है। जब माता अपने पुत्र का पालन करती है, अथवा अपनी सन्तान का पालन करती है, तो माता ध्रुवामयी बन जाती है। पितर होने के पश्चात् भी ध्रुवा में गमन करने लगता है। मेरे प्यारे! 'ध्रुवा' कहते हैं, जो मानो ऊर्ध्वा गमन न करता हो, वह 'ध्रुवा' में रमण कर जाये। हमारे यहाँ, विष्णु नाम भी 'ध्रुवा' माना गया है। मुनिवरो! देखो, 'ध्रुवा' नाम विष्णु का है, जो पालन करने वाला है।

परमात्मा का विष्णु-गुण

हमारे यहाँ, वैदिक साहित्य में, वैदिक मन्त्रार्थ में, मानो देखो विष्णु नाम ध्रुवा का है और 'विष्णु ब्रह्मः' वह ध्रुव विष्णु भी ध्रुवा में गमन करने वाला है, क्योंकि पालनकर्त्ता है। विष्णु ही तो पालन करने वाला है। जब आचार्यगण तीनों गुणों का वर्णन करते हैं, तो वर्णन करते हुए जब मानो विष्णु का वर्णन आता है, तो

विष्णु को वर्णन करते हुए, उन्होंने ध्रुवा में विष्णु को माना है, क्योंकि ध्रुवा में पालन होता है। जब, मुनिवरो! देखो प्रातःकालीन् और जब देखो संध्या के काल में परमात्मा से भक्तजन अपना मिलान करते हैं, तो जिज्ञासु जब यर्थाथता के गर्भ में प्रवेश करते हैं, तो वहाँ भी ध्रुवा का वर्णन आता है और यह कहा है कि 'ध्रुवां विष्णु ब्रह्मः' वह विष्णु ध्रुवा में रमण करने वाला है।

मेरे प्यारे! देखो वह परमात्मा का नामोकरण यहाँ विष्णु माना गया है, क्योंकि विष्णु ही 'ब्रह्मण। वह ध्रुवा में गमन करने वाला, जितना भी पालन करता है, वह ध्रुवा में होता है और वह विष्णु कहा जाता है। हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में, प्रर्यायवाची शब्दों में जब हम प्रवेश करते हैं तो ध्रुवा में जहाँ मानो परमपिता परमात्मा का वर्णन आता है, वहीं ध्रुवा में उस माता का वर्णन आता है, जो पालन करने वाली है। जहाँ माता का वर्णन आता है, वहीं सूर्य का वर्णन भी आता है, क्योंकि वह भी प्रकाश देता है और पालन करने वाला है। जहाँ मानो देखो सूर्य का आता है, वहीं मानव के शरीर में जो आत्मा रहती है, उस आत्मा का नाम भी विष्णु रूप माना गया है। वह विष्णु इसलिए है क्योंकि वह भी पालन करने वाला है, जिसके रहने से मानव चैतन्य बना रहता है। वह उसका पालन करने वाला है। तो पालना के गर्भ में, मानो उसके मूल में वह विद्यमान रहता है।

मेरे प्यारे! देखो जितना भी ध्रुवागमन करने वाला है, वह सब पालना के मूल में आता रहा है। जहाँ परमपिता परमात्मा का वर्णन आता रहा है कि परमात्मा ध्रुवा में गमन करने वाला है। ध्रुवा में होने से ही, मुनिवरो! देखो उसको विष्णु कहा जाता है। वह पालन करने वाला है, इसीलिए उसको रक्षक कहते हैं। वह पालना में रत रहने वाला है। जब मानव सत्य में रमण करता है, तो सत्य भी पालन करने वाला है, क्योंकि सत्य में ही पालन होता है। तो इसीलिए हमारे यहाँ विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का है और विष्णु नाम पालन करने वाले को कहा जाता है।

वैष्णवी माता

जहाँ परमात्मा का नाम विष्णु है, वहाँ विष्णु नाम माता का है, माता भी पालन करने वाली है। लोरियों का पान करा रही है, परन्तु बाल्य को शिक्षा दे रही है, 'शुद्ध-बुद्ध-निरञ्जन' का उपदेश दे रही है और देते हुए कहती है, 'वह विष्णु बन करके ध्रुवा कहलाता है।' मानो नम्र हो करके बाल्य को शिक्षा दी जाती है और जो शिक्षा देता है वह उसकी पालना कर रहा है। मेरे प्यारे! देखो माता जब मानो बाल्य की पालना करती है, तो मानो लोरियों का पान करा देती है। **अपने अहम् भाव को त्याग करके जब वह पालना में रत और देखो दुग्ध का पान कराती है, तो देखो उससे 'पालना' में रत हो रही है और वह विष्णु बन करके, मुनिवरो! देखो उसे शिक्षा देती है और**

लोरियों का पान कराते-कराते, मुनिवरो! देखो नैतिकता में परिणित करा देती है। तो उस माता का नाम विष्णु है।

वह विष्णु ही तो पालन करने वाला है। वह ध्रुवा में गमन करने वाला 'ध्रुवं ब्रह्मः, ध्रुवं प्राणे विष्णुः' हे विष्णु! तू पालन करने वाला है। हे माता! तुझे वेद ने विष्णु कहा है। मेरे प्यारे! देखो, जब यह वर्णन आता रहा कि विष्णु नाम माता का है, क्योंकि माता पालना करने वाली है। शिक्षा दे करके महान् बना देती है, तो **मुनिवरो! देखो, जितना भी नम्रता में मानो देखो, नम्र हो करके मानव अपने जीवन को व्यतीत करता है, वह ध्रुवा में विष्णु बन जाता है।** वही विष्णु, मुनिवरो! देखो माता के रूप में विद्यमान रहता है।

त्रिगुणी माता

माता का नाम, जहाँ सतोगुण के रूप में वर्णित किया गया है, वहीं माता का नाम, मुनिवरो! देखो रजोगुणी भी कहा जाता है। रजोगुण में बाल्य का शासन करती है और वह देखो शासन करके **शासनास्था** बन करके बाल्य को अनुशासन में लाती है। वही माता पालन करने वाली है और वही मानो उत्पति के मूल में विद्यमान रह करके वह तमोगुण में परिणित हो करके, मुनिवरो देखो तीनों गुणों का व्यवविधान होता रहा है। वही सतोगुण है, तो वही रजोगुण है और वही, मुनिवरो! तमोगुण के रूप में वर्णित माना गया है। एक ही मन के ये तीन मनके हैं और एक ही सूत्र में पिराये जाते हैं।

सूत्र में पिरोये जाने से, मुनिवरो! देखो वह विष्णु के रूप में उसमें गुथे हुए रहते हैं, एक-दूसरे के पूरक कहलाते हैं। तो इसीलिए माता का नाम विष्णु कहा जाता है।

आत्मा का विष्णु रूप

जहाँ, बेटा! देखो माता का नाम विष्णु माना गया है, 'आत्मां विष्णु ब्रह्मः वृत्तं देवत्वाम्' हे विष्णु! तू आत्मा है और वह मानव के शरीर में विद्यमान रहता है। मानो देखो अनुष्ठान में जब आत्मा विद्यमान होता है, तो वह आत्मा के कारण ही मानव का शरीर चेतनित बना रहता है। एक-एक परमाणु चेतना में रत रहता है, एक-एक तरंग मानो चेतनित बनी रहती है। उसी आत्मा का जब मानव अपने में अन्वेषण करता है अथवा आत्मा का परमात्मा से मिलान करता है, तो योगेश्वर बन जाता है।

विष्णु के अलंकार

मैंने तुम्हें एक वार्ता बहुत पुरातन काल में प्रकट की थी। एक समय महानन्द जी से मुझे एक वाक्य प्रतीत हुआ कि विष्णु नाम आत्मा का है और आत्मा अक्षयक्षीर सागर में विश्राम करता है, मानो अक्षयक्षीर सागर में जब विश्राम करता है, तो लक्ष्मी उसके चरणों में ओत-प्रोत हो जाती है। जब लक्ष्मी ओत-प्रोत होती है, तो मानो देखो वह नारद अपनी वीणा को ले करके वह 'गानं ब्रह्मे' वह वीणा का स्वर लेने लगता है और गन्धर्व उस

समय गान गाने लगता है। ऐसा मानो देखो प्रतीत होता है, आलंकारिक शब्दों में, हमारे यहाँ अलंकारों में मानो इतिहास नहीं होता, वह मानो देखो अलंकार होता है। अलंकारों में ज्ञान को जानने के लिए, उपमा अलंकार दिया जाता है।

अक्षयक्षीर सागर और लक्ष्मी

मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने इस प्रकार वर्णन करते हुए अक्षयक्षीर सागर नाम, मेरे प्यारे! देखो, हमारे यहाँ ज्ञान का सागर कहा जाता है। जहाँ ज्ञान और विवेक की धाराएं तरंगें होती हैं, उसका नाम अक्षयक्षीर सागर कहा जाता है। जब यह आत्मा मानो देखो, अक्षयक्षीर सागर में ज्ञानयुक्त हो करके और प्रकृति को नीचे दबा करके प्रकृति का अव्यय नहीं रह पाता, मानो उस समय यह ज्ञान के प्रकाश के सागर में रत हो करके, अक्षयक्षीर सागर में रत हो जाता है। तो उस समय, मुनिवरो! देखो, आत्मा जब अक्षयक्षीर सागर में यह जो लक्ष्मी है, जो ममत्व के रूप में विद्यमान रहती है, इसको वह नीचे दबा लेती है और नीचे दबा करके, मानो शेषनाग की शैय्या पर विद्यमान हो करके, मेरे प्यारे! देखो, वह विष्णु रूप बन करके उसमें विद्यमान हो जाती है।

नारद और गन्धर्व

मेरे पुत्रों! ऐसा अलंकारों में अलंकृत किया गया है कि वह, मुनिवरो! देखो, नारद नाम हमारे यहाँ 'वीणां ब्रह्मे वृतम्' **वह नारद**

नाम, बेटा! देखो, मन को कहा गया है यह मन अपनी वीणा, चंचलतारूपी वीणा को त्याग करके, यह स्वरों को त्याग करके, वीणा को त्याग करके यह, बेटा! देखो, विष्णु का गान गाने लगता है। विष्णु के स्वरूप में, यह वीणा में परिणित हो जाता है और गन्धर्व जो मानो बुद्धि है, बुद्धि उस प्रभु का गान गाने लगती है और गान गा करके, मुनिवरो! देखो वह विष्णु शेषनाग की शैय्या पर विद्यमान होता है।

शेषनाग

शेषनाग उसे कहते हैं, जो पांच फनों वाला शेषनाग है। मेरे प्यारे! देखो, पांच फनो वाला शेषनाग है। मेरे प्यारे! देखो, पांच फनो वाला शेषनाग कौन सा है? जिसको नीचे दबाया करता है? जितने भी प्रकृति के अव्यय माने गये हैं, अथवा जितना इस ब्रह्माण्ड में प्रकृतिवाद है, ममत्ववाद है, वह पांच अव्ययों में विद्यमान रहता है जिसको, मेरे प्यारे! देखो पांच फनों वाला शेषनाग कहा जाता है।

मुनिवरो! देखो, पांच फनों वाला जो शेषनाग है, वह काम, क्रोध, मद, लोभ, और मोह रूप में विद्यमान रहता है। क्योंकि यदि साधना में, एक मानव रत हो गया साधना करते यदि क्रोध की मात्रा आ गई है, तो साधना में मृत्यु का वह क्रोध कार्य कर रहा है। यदि काम जागरूक हो गया है, तो वह भी मृत्यु का कार्य है। जैसे, शेष नाग मानो देखो स्पर्श करते ही मानव को मृत्यु

के सदृश्य पहुंचा देता है, इसी प्रकार वह पाँचों फनों वाला शेषनाग है। जिसके ऊपर, मुनिवरो! देखो, वह 'अमृतं ब्रह्मः व्रणे' वह विष्णु विद्यमान रहता है। और यह जो लक्ष्मी है, यह उनके मानो चरणों में ओत-प्रोत हो जाती है, चरणों को मानो छूने लगती है और यह उसमें ओत-प्रोत हो करके, बेटा! यह क्षमा की पात्र बन जाती है। तो परिणाम क्या? मुनिवरो! देखो, इसका नाम विष्णु है। यह अक्षयक्षीर सागर में रहने वाला है अथवा जिसके द्वारा यह सर्वत्र प्रकृतिवाद भ्रमण किया जाता है और मानो देखो, प्राण साधनां में प्रवेश करता हुआ अथवा वेद रूपी प्रकाश में रत हो करके, उस प्रकाश का, मुनिवरो! वह स्वामी बन जाता है और प्रकाश में जब रमण करने लगता है, प्रकाश में जब रत हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो, वह वेद का अनुपम प्रकाश जो परमात्मा का क्या, प्रकृति का, जितना भी ज्ञान है, अथवा विज्ञान है, वह उसमें रत हो करके और, मुनिवरो! देखो, मन और प्राण का, दोनों का समन्वय करता हुआ यह ब्रह्मरन्ध्र से ले करके यह अथवा मूलाधार से ले करके, ब्रह्मरन्ध्र में यह अपनी स्थिति स्थिर बना लेता है। तो उस समय, बेटा! देखो, उसको ज्ञान और विज्ञान के अथवा देखो, उस सागर में प्रवेश हो जाता है जहाँ इसे ब्रह्माण्ड साक्षात्कार दृष्टिपात आने लगता है।

मेरे प्यारे! सर्वत्र ब्रह्माण्ड के जो अतव्यय हैं, वे और अनव्ययों में यह सर्वत्र ब्रह्माण्ड मानो देखो विद्यमान हो जाता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, उस समय इस विष्णु का नाम आत्मा कहा जाता है। आत्मा का नाम विष्णु है, इसी के कारण मानो सर्वत्र तरंगों में, मानो एक तरंगे तरंगित हो करके वह उसी में चेतनाबद्ध रहता है, तो मेरे प्यारे! वह चेतनाबद्ध हो करके वह देखो, जब तक यह चेतना शरीर में बनी रहती है, तब तक मुनिवरो! देखो, जब तक आत्मा विद्यमान है अथवा चेतना के रूप में आत्मा का तारतम्य बना रहता है अथवा प्राण स्वरूप इसके साथ-साथ गमन करता हुआ यह चेतना में परिणित रहता है, तो मेरे प्यारे! उस समय इस आत्मा का नाम विष्णु है। तो विष्णु क्योंकि वह पालन करने वाला है वह पालना के मूल में विद्यमान रहता है, इसीलिए आत्मा का नाम विष्णु है मेरे प्यारे! हम विष्णु को जानने वाले बने क्योंकि विष्णु ही हमारा पालन करने वाला है।

आओ, मेरे प्यारे! देखो, जहाँ परमात्मा का नाम विष्णु है, जहाँ देखो माता का नाम विष्णु है, वहीं विष्णु नाम बेटा! आत्मा को माना गया है 'आत्मां विष्णु ब्रह्मणे वर्णस्सुतम्' मानो यही तो अक्षयक्षीर सागर में, ज्ञान के सागर में जाने के पश्चात् यह ब्रह्माण्ड को जानने वाला बनता है। तो मेरे प्यारे! देखो जब यह काम, क्रोध, लोभ, मोह, और अहंकार यह जो अक्षयक्षीर सागर में जो शेषनाग है, यह इसमें सर्वत्र प्रकृति के अव्यय विद्यमान रहते हैं, उन प्रकृतिवाद को यह नीचे दबा करके और यह ज्ञान और विज्ञान के सागर में रमण करता रहता है।

सूर्य का विष्णु-रूप

प्रकाशक सूर्य

मेरे प्यारे! विचार आता रहता है कि मानो जहाँ इस आत्मा का नाम विष्णु है, वैदिक साहित्य में कहा है, मन्त्रार्थ होने से 'सूर्यं ब्रह्मां: आत्मन् भूः वर्णस्सुतं ब्रवे' वेद का आचार्य कहता है कि जहाँ आत्मा का नाम विष्णु है वहीं पालन करने वालों में, बेटा! सूर्य भी आता है, सूर्य का नाम भी विष्णु है, जो प्रकाश के देने वाला है। प्राचीदिक मानो प्रातःकाल यह उद्‌य होने वाला है, प्रकाश को ले करके, अन्धकार को अपने में धारण करके यह चला आता है और प्रकाश को देता हुआ, मेरे प्यारे! सत्रह मात्राओं का यह प्रकाश बन करके आता है। वनस्पतियाँ भी प्रकाश में सर्वत्र अपना-अपना क्रियाकलाप प्रारम्भ करने लगती हैं। मेरे प्यारे! देखो, माता अपने बाल्यों को उदय होते ही और उदय हो के माता अपने पुत्रों को जागरुक कर लेती है। और, मुनिवरो! देखो, यहाँ पशु और देखो, जितने भी जलचर हैं अथवा प्राणीमात्र है वह सर्वत्र प्राणीमात्र देखो उस आभा को प्राप्त होने लगता है।

मेरे प्यारे! सूर्य ऐसा मानो देखो उद्‌गम है मानो यह पालन करने वाला है। मेरे प्यारे! देखो, मैंने कई कालों में तुम्हें वर्णन किया है, विज्ञान के माध्यम से, यदि विज्ञान के युग में हम प्रवेश करते हैं तो जहाँ सूर्य की किरण, मानो प्रातःकालीन सूर्य की

किरण जब, मुनिवरो! देखो, रेणकेतु मण्डल में प्रवेश करती है, जिसको हम मानो देखो, 'अष्टतं ब्रह्मे' देखो, स्वाहा की दृष्टि से अमृत का जन्म देने लगते हैं, अमृत को हम पान करने लगते हैं। मेरे प्यारे! देखो, उस अमृत को जन्म देने वाला, बिखेरने वाला सूर्य कहा जाता है।

सूर्य विज्ञान और आयुर्वेद

वह सूर्य जब प्रातःकालीन् मानो देखो, रात्रि के अन्तिम चरण में, अपनी अमृतमयी आभा को यह बिखेर देता है और इसको प्रत्येक मानव, प्राणी मात्र अपने में पान करने लगता है। बेटा! देखो वनस्पति भी जागरूक हो करके वह प्रकाश को अपने में धारण करने लगती है। मेरे प्यारे! देखो, माता अपने बाल्यों को जागरूक करके कहती है, "बाल्यो! जागरूक हो जाओ। अब भानु उदय हो गया है अब उसका अमृत आ गया है, उसको अपने में सेवन करो अथवा उसको इन्द्रियों के द्वारा सेवन करोगे तो तुम्हारा देखो जन-जीवन महान और पवित्र बनेगा।" इस प्रकार माताएं क्या प्राणी मात्र, बेटा! उसी की आभा में मानो जागरूक हो जाते हैं जागरूक हो करके मानो देखो, हिमालय की कन्दराओं में ऐसी-ऐसी वनस्पत्तियाँ हैं, जो मानो देखो, उसी समय वह अपनी आभा को, अपने जीवनज्योति को देखो, अपने में संग्रह करती देखो, सर्वत्र दिवस शान्त रहती हैं और वह प्रातःकाल रात्रि के अन्तिम चरण में उस आभा को प्राप्त करने वाली बनती

हैं। तो मेरे प्यारे! देखो, उनमें अमृत का भरण हो जाता है, उन औषधियों को वैद्यराज जानते हैं और वैद्यराज मानो देखो, उसी सूर्य घृणी नक्षत्र का और सूर्य से जब उस नक्षत्र का मिलान होता है उसी नक्षत्र में उस बूटी को मानो देखो, अपने में धारण करते हैं।

मेरे प्यारे! देखो, भिन्न-भिन्न रूग्णों में वह दी जाती है। आज मैं आयुर्वेद के ऊपर या वनस्पत्तियों के ऊपर विचार देने नहीं आया हूँ। विचार-विनिमय केवल यह कि यह जो सूर्य, जो प्रकाशक है, प्रकाश के देने वाला है, वह मानो देखो, उसको वेद विष्णु कहता है। और विष्णु इसीलिए कहता है, क्योंकि वह प्रकाशक है और प्रकाश को देने वाला है। मेरे प्यारे! देखो, वह ज्योति ले करके आता है। रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर लेता है चन्द्रमा की शीतलता को भी अपने में धारण करके उसे भी तपायमान कर देता है तो वह अदिति कहलाता है। वह आदित्य के रूप में, ब्रह्मचर्य को अपने में देखो ब्रह्म की चरी को चरने वाला और देखो ब्रह्म को चर करके वह प्राणी मात्र को रक्षार्थ के रूप में परिणित कर देता है।

तो मेरे प्यारे! देखो, विचार हमारा क्या? हम यह विचार देना चाहते हैं कि वह जो पालन करने वाला है, 'अमृतं ब्रह्मः वर्णस्सुतम्ः' मेरे प्यारे! देखो, सूर्य पालन करने वाला है, वह पालना के मूल में विद्यमान रहता है और उसी की पालना करने

वाला मानव अपने में धारण करता हुआ सूर्य के विज्ञान में रत हो जाता है, जो उसके पालना के रहस्यों को जान लेता है अथवा उसके मूल को जान लेता है, वह माता वसुन्धरा के गर्भ में, जो नाना प्रकार का खाद्यान्न और खनिज पदार्थ, मानो तपायमान हो रहा है अथवा अंकुर रूपों में विद्यमान रहता है, वह उसी में रत हो करके, बेटा! उसको जानने लगता है अथवा उसको अपने में धारण करने लगता है।

माताओं का सूर्य-विज्ञान

जो मेरी प्यारी माताएं उस सूर्य-विज्ञान को जान लेती हैं और सूक्तों का जो अध्ययन करने वाली, वेद में इस प्रकार के नाना प्रकार के मन्त्र आते हैं, परन्तु वे माताएं गर्भ-विद्या को जान लेती हैं और जान करके मानो देखो नाभी के द्वारा प्रातःकालीन, उषा काल में वह उस बाल्य को जो गर्भ में विद्यमान है, उसको वह उन चरणों का अभ्योदय, मानो उसकी आभा को वह अपने में सिंचन करने लगती हैं। कहीं रसना के द्वारा, कहीं मानो देखो श्वासों के द्वारा, इस प्रकार देखो जब सूर्य और चन्द्र-प्राण का मिलान करते ही, मुनिवरो! उसको अपने में संचय करने लगते हैं। ये विद्याएं, बेटा! देखो माताओं को प्रायः देखो हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में, वैदिक साहित्य वालो ने इसका अध्ययन कराया है।

मैंने तुम्हें कई काल में कहा था कि महर्षि दुर्वासा मुनि

महाराज इस विद्या को जानते थे और दुर्वासा मुनि, मुनिवरो! देखो, जिस देवता के सन्तान को जन्म देना हो, माता को उसी प्रकार का वही मन्त्र और उसी प्रकार का देखो, उसी समय निर्धारित करके और उस विद्या को पान कराया जाता है। माता जब उसी में रत रहती तो उसके गुणों वाली सन्तान को जन्म देने वाली, मेरी प्यारी माताएं बनती रही हैं।

कुन्ती की देवसन्तान विद्या

मैं आज देखो, इस सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा नहीं, द्वापर के काल में देखो, महारानी जो कुन्ती थी वह बड़ी तपस्विनी कहलाती थी। मुझे उनका जीवन चरित्र जब स्मरण आने लगता है, तो भयंकर वनों में मानो देखो वनस्पत्तियों की जो सुगन्ध अथवा उनकी तरंगों को ग्रहण करती रही है और वेद-मन्त्रों का उद्गीत गा करके उसी प्रकार सूर्य, देखो, सूर्य सिद्धान्त के ऊपर जितने भी वेद-मन्त्र हैं, उनका प्रायः अध्ययन और वह यह चाहती है कि मैं इन्द्र जैसे इन्द्र देवता के इन्द्रदेवतावत बालक को जन्म देने वाली माँ बनूं तो माता उसी प्रकार मन्त्र का अध्ययन करना, उसी प्रकार का तप करना और, मुनिवरो! देखो वनों में जो औषधियाँ होती हैं, जैसे सुधती नाम की औषधि कहलाती है, एक मृचिका होती है एक कुशकण्डी होती है, एक मानो देखो सेलमाला होती है और देखो जैसे शैलखण्डा, इन औषधियों का खरल करके इन औषधियों का पाञ्चांग बना करके जो माताएं पान करती रही

हैं अनेक गर्भ से, बेटा! इन गुणों का वह सन्तान को जन्म देना चाहती है, इसी प्रकार मानो देखो, गुणों को ध्यानावस्थित करती रही हैं। मुझे कुन्ती का जीवन स्मरण है और भी नाना माताओं का जीवन भी स्मरण है।

आज मैं इस सन्दर्भ में जाना नहीं चाहता हूँ। विचार-विनिमय, मुनिवरो! केवल यह कि हमारे यहाँ वैदिक साहित्य में जब ज्ञान और विज्ञान के ऊपर विचार-विनिमय किया जाता है, तो नाना प्रकार का ज्ञान-विज्ञान मानव के, मस्तिष्क से मेधावी में प्राप्त हो जाता है। और मेधावी मानो देखो, वह प्रज्ञा से प्रेरणा पा करके, मुनिवरो! देखो, वह प्रकृति के सूक्ष्मतम रहस्यों को जानने लगता है। तो विचार आता रहता है मैं आज इस सम्बन्ध में विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि हमारे यहाँ यह जो सूर्य है, यह देवता है अथवा पालन करने वाला है। यह प्रातःकाल मानो प्रकाश ले करके आता है और उसी प्रकाश को हम जब ग्रहण करते हैं, तो मुनिवरो! देखो, कोई मेधावी बनता है, कोई बुद्धिमान बन जाता है, कोई प्रज्ञावी बन जाता है, कोई मेधावी और मुनिवरो! ऋतम्भरावी बन करके परमात्मा की सृष्टि को जानने लगता है।

ध्रुवा में नम्रता

तो आओ, मेरे प्यारे! आज मैं विशेष चर्चा तुम्हें नहीं प्रगट करने आया हूँ। केवल विचार-विनिमय यह कि हम परमपिता

परमात्मा की महती को जानते हुए एक-एक कला में, बेटा! संसार का ज्ञान और विज्ञान विद्यमान रहता है जो सत्यकाम को अग्नि देवता ने प्रगट कराया। अग्नि देवता ने कहा 'ध्रुवा कला ध्रुवां विष्णु ब्रह्मणः' **यह जो ध्रुवा में विष्णु रहता है। जो संसार में मानो नम्र हो करके गमन करता है, मेरे पुत्रो! देखो, उसे परमात्मा की प्रतिभा प्राप्त होती है। जो मानो देखो अभिमानी बन करके रहता है, वह परमात्मा की प्रतिभा उससे दूर चली जाती है।** तो वह वेद का ऋषि कहता है 'ध्रुवां विष्णु' वह ध्रुवा में मानव को गमन करना चाहिए। ध्रुवा में ज्ञान और विज्ञान मानो देखो, पालन करने की प्रवृत्ति उसमें और पालन करने वाला वह परमपिता परमात्मा, उन्हें प्राप्त होता रहता है। आत्मा का ज्ञान होता है और सूर्य का ज्ञान और विज्ञान उनके समीप आने लगता है।

उषा और सुनीता काल

मेरे प्यारे! देखो, वह सूर्य-विज्ञान अपने में कितना महान् रहा है। मैंने बहुत पुरातन काल में तुम्हें कहा है कि यह जो सूर्य है, यह ध्रुवा में मानो देखो, यह प्रातःकालीन उषा-काल में यह अमृत को बिखेरता है। प्रातःकालीन मानो देखो प्रकाश को महान् जो तेजोमयी, जो उसे ऊर्ध्वा कहते हैं, उसे बिखेरता रहता है। सायंकाल को, मुनिवरो! देखो, यह अश्वति बिखेरकर देखो, धारण जिसको सुनीता कहते हैं, उसको बिखेरता रहता है, सायंकाल हो

जाता है, जहाँ रात्रि का दिवस का अथवा मिलान हो जाता है। जहाँ सूर्य-अस्त है और देखो रात्रि अन्धकार का सूचक आ गया है, तो मुनिवरो! **देखो, वह अपने में ही अपनेपन को चिन्तन में लाता है, उसको संध्या काल कहते हैं। जहाँ परमात्मा का और आत्मा का दोनों का मिलन होता है, उसको सन्धि कहते है।** मेरे प्यारे! देखो, वहाँ 'प्रकाशां भूः वर्णं आभ्यां ब्रह्मः लोकाम्।

तो मेरे प्यारे! देखो, आज मैं तुम्हें दूरी नहीं ले जा रहा हूँ, विचार-विनिमय क्या उस समय देखो, ब्रह्मचारी सत्यकाम को वहीं, मुनिवरो! देखो, अपनी स्थली में गऊंओं के मध्य में विद्यमान हो करके इस प्रकार के ज्ञान की उपलब्धि उन्हें हो गई। इस प्रकार के ज्ञान और विज्ञान में वह रत हो गये। मेरे प्यारे! देखो, उन्हें एक प्रकाश हो गया। उन्होंने कहा 'देखो, **ध्रुवा-कला उसे कहते हैं, जिसमें पालन करने की क्षमता आ जाती है'** क्योंकि पालन ध्रुवा में होती है। मेरे प्यारे! देखो ऊर्ध्वा में 'अमृतम्' देखो बृहस्पति कहलाता है। जो मुनिवरो! देखो, वह विद्या का केन्द्र है, 'वेदां भूः वर्णनं ब्रह्मः ऊर्ध्वं ब्रहे' वह ऊर्ध्वा में गमन करने वाला है।

मेरे प्यारे! देखो, आज मैं तुम्हें विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ। विचार-विनिमय केवल यह कि आज, मुनिवरो! देखो, मैंने ध्रुवा-कला की देखो विवेचना दी इसकी कलाएं तो इतनी अनन्त हैं कि मैं इसको वर्णन करने में असमर्थ रह जाता हूँ। बेटा! परन्तु विचार-विनिमय केवल यह कि हमें, बेटा! विष्णु

बनना है। मेरी प्यारी माता को विष्णु बनना है। वह ध्रुवा में ही पालन करती है, मानो वही रजोगुण में शासन करने वाली है वही तमोगुण में, बेटा! उत्पति के मूल में विद्यमान रहती है। मेरे पुत्रो! यह तीन मनके कहलाते हैं, एक ही सूत्र में पिराये जाते है. उसी में सूत्रित हो जाते है। तो विचार-विनिमय केवल यह कि मुनिवरो! देखो, हमें इस ध्रुवा को, ध्रुवा-कला को जानना चाहिये।

देखो, वह अग्नि देवता में, देखो, महात्मा ब्रह्मचारी, जो ब्रह्मचारी होते हैं ब्रह्मचर्य की और, बेटा! ब्रह्मचर्य की प्रतिभा का नाम अग्नि कहलाता है। जब वह अग्नि प्रचण्ड होती है वह ज्ञान रूप बन करके, प्रेरित करके, मुनिवरो! देखो, उसे ब्रह्मचारी कहते हैं। हे ब्रह्मचारी! आ तुझे मैं चार कलाओं का ज्ञान करा देता हूँ। मानो सबसे प्रथम कला का नाम ध्रुवा, देखो ध्रुवा है, उसके पश्चात् ऊर्ध्वा और मुनिवरो देखो पृथ्वी-कला और 'अमृतं ब्रह्मेः वर्णा', अग्नि-कला का उन्होंने वर्णन कराया। तो मेरे प्यारे! इन तीन वाक्यों की मैं चर्चाएं कल प्रगट कर सकूंगा।

आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि मुनिवरो! हम परमपिता परमात्मा की महती को जानते हुए और देखो, स्वयं विष्णु बन करके और विष्णु नम्रता का नामोकरण है, क्योंकि उसमें मानव पालन करने वाला है। वह पालना के मूल में विद्यमान है, तो इसीलिए हम उस परमपिता परमात्मा की महती को सदैव जानने वाले बनें। मेरे प्यारे! देखो, मुझे एक वार्ता प्रायः 'देवत्वाम' देवासुर संग्राम भी इसी प्रतिभा में ओत-प्रोत होता रहा

है, जहाँ मानव की प्रवृत्ति में देवासुर संग्राम होता है, वह भी मानो देखो किरणों में भी होता है, सूर्य की किरणों में भी, मानो देवासुर संग्राम होता है और वही किरणें, मुनिवरो! देखो, अन्तरिक्ष में एक विशाल रूप से मानो स्थिर रहती हैं, जहाँ वास्तविक सूर्य की जो किरणें हैं वे किरणें, मुनिवरो! देखो, शीतल बन करके पृथ्वी-मण्डल पर आती हैं। वे देखो, पालना के मूल में ही तो विद्यमान हैं। मेरे पुत्रो! देखो, वह यदि नग्न हो जाएं, यदि सूर्य की किरण नग्न हो जाए, उस मानव तरंगों से परमाणुओं से नग्न हो जाए, तो न तो यह पृथ्वी का मानव रहेगा, न तो प्राणी मात्र रहेगा, सर्वत्र लुप्त हो जायेगा। मानो देखो इस प्रकार मानव को गमन करना है।

मैं इसके पश्चात्, बेटा! शेष चर्चाएं तुम्हें कल प्रकट कर सकूंगा। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि मुनिवरो! देखो, हम विष्णु बनें और विष्णु बन करके अपना कल्याण करें और कल्याणार्थ देखो विष्णु नाम हम परमपिता परमात्मा को वाची बनाएं और अपनी मानो माता को वाची बनाएं और उसी प्रकार विष्णु नाम आत्मा का है और देखो, वह विष्णु नाम, मेरे प्यारे! सूर्य का है, जो पालन कर रहा है।

१३.१०.६१

निर्वाचन-प्रणाली

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया, होगा आज हमने पूर्व से जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस महामना परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्तमयी माने गये हैं और उसका जो अनन्तमयी ब्रह्माण्ड है, वह प्रायः अनन्तमयी निहित हमें दृष्टिपात् आ रहा है; क्योंकि एक-एक परमाणु में ब्रह्माण्ड है और ब्रह्माण्ड अपनी आभा में सदैव निहित रहा है।

आन्तरिक-बाह्य जगत् समन्वय

सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक नाना विज्ञानवेत्ता हुए और वे विज्ञानवेत्ता परमपिता परमात्मा के इस अनन्तमयी जगत् में विद्यमान हैं और उसी के ऊपर वे अन्वेषण करते रहे हैं। अपने में चिन्तनीय विषय बना करके अपने को और ब्राह्माण्ड को, वे प्रायः बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों का समावेश करने का प्रयास करते रहे हैं, क्योंकि यही मानवीयत्व कहलाता है। **जो बाह्य जगत् है, वही अन्तर्जगत् है। तो बाह्य जगत् को जो आन्तरिक जगत् में दृष्टिपात् करता है,**

मानो वह अपने में 'मनन वृत्तम्' वह मनन कर रहा है और वह अपने में स्वीकार कर रहा है कि मैं परमपिता परमात्मा के जगत् में निहित हूँ।

चित्त-मण्डल

मुनिवरो! देखो एक मानव अपनी एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके और अपने मनस्त्व, जो चित्त का मण्डल है, उस चित्त के मण्डल में वह अपने को ले जा रहा है, क्योंकि **चित्त उसे कहते हैं, जहाँ नाना संस्कार अपने में विद्यमान रहते हैं और वह संस्कारों का अनन्तमयी जगत् माना गया है** और वे चित्त के मण्डल में विद्यमान रहते हैं तो इसीलिए वह आन्तरिक जगत् को बाह्य जगत् में उनको दृष्टिपात् करने का प्रयास करता रहा है। तो मानवीय क्षेत्र में, बेटा! सृष्टि के प्रारम्भ से ही प्रायः यह क्रियाकलाप चल रहा है। मानो कहीं से यह स्वप्न भी हुआ है, कई जन्म जन्मान्तर भी व्यतीत हो जाते हैं उसी धारा में, परन्तु प्रयास भी करता रहा है कि मैं परमात्मा के अनूठे जगत् और अनूठी यह जो प्रक्रिया है, मैं उसको जानने का प्रयास करता रहूँ।

वैदिक-प्रकाश में संसार-अन्वेषण

मेरे प्यारे! हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की प्रतिभा में मानव सदैव अपने में गमन करता रहा है और उसके मनोनीत हृदय में यह भावना रहती है कि मैं अन्धकार को त्याग करके

प्रकाश में चला जाऊं। प्रायः यह भावना प्रत्येक मानव की अथवा प्राणीमात्र की रही है कि मैं अन्धकार में न जाऊँ। वह प्रकाश में रत रहना चाहता है और यह विचारता है कि, 'यह संसार क्या है?' जब भी दार्शनिक अपनी आभा में विद्यमान रहते हैं और दार्शनिक बन करके दार्शनिकत्व में रत हो जाते हैं तो वह अपनी दार्शनिकता से यह विचारते हैं कि यह संसार क्या है? क्या यही संसार है?—एक ही माता के गर्भस्थल से हमने जन्म लिया और जन्म ले करके बाल्यकाल में हमने अपने जीवन को इस पृथ्वी माता की, वसुन्धरा की गोद में व्यतीत किया उसके पश्चात् युवा हो गये तो, मुनिवरो! देखो नाना प्रकार के क्रियाकलापों में रत हो गये, मानो वृद्धपन आ गया तो शैया पर विद्यमान हो गये। तो ऋषि अपने में प्रश्न करते रहते हैं कि 'क्या यही संसार है?'

गर्भ-शिक्षा और ब्रह्मचर्याश्रम

मेरे प्यारे! ऋषिवर दूसरे स्वरूप में इसका निरूपण करते रहे हैं। वे कहते हैं कि वास्तव में संसार तो वह है कि माता भी इतनी बुद्धिमान हो कि अपने गर्भस्थल में शिशु को शिक्षा देने वाली हो और वह बाह्य जगत् में आ जाये तो अपनी विद्या अध्ययन में इतना ज्ञान हो जाये कि उसे प्रत्येक इन्द्रियों का ज्ञान हो जाये। **विद्या-अध्ययन का अभिप्राय; केवल यह नहीं है कि हमने केवल अक्षरों का बोध कर लिया है। अक्षरों के ही बोध को मानो शिक्षा नहीं कहते। शिक्षा उसे कहते हैं जो आचार्यों**

के चरणों में विद्यमान हो करके अपने में 'वे' क्रियाकलाप करना है।

देव-पूजन

आचार्य के चरणों की वन्दना करता हुआ और वह देव-पूजन कर रहा है, वह देवताओं के पूजन में लगा हुआ है। क्योंकि पूजन का अभिप्रायः यह है कि प्रत्येक देवताओं के रहस्यों में रत रहना और उसे क्रियात्मक स्वरूप देने का नाम ही मानो देखो वही हमारे यहाँ देवपूजा का अभिप्रायः होता है। **पूजा का अभिप्रायः है कि उसके गुणों को हमें 'गुणाधान', अपने में धारण कर लेना चाहिये। मानो देखो उसी का नाम पूजा है।** जब इस प्रकार का देखो पूजन प्राणी करता है और वह अपने में ब्रह्मवर्चोसी बन करके मानो देखो श्वास की गतियों को वह प्रकृति के श्वास में परिणित कर देता है तो मानो देखो विचार करता है कि यह संसार क्या है? मानो देखो इसी का नाम संसार है।

गृहपथ्याग्नि-चयन

आगे चल करके गृह में प्रवेश हो गया है। गृहपथ्य नाम की अग्नि का पूजन कर रहा है, मानो देखो गृह को स्वर्ग बनाने में लगा हुआ है। वह स्वर्ग बनाता है। अपने में, अपने में ही मानो देखो द्रव्य का सदुपयोग करता है और द्रव्य के सदुपयोग होने

से मानो देखो वह गृहपथ्य नाम की अग्नि कही जाती है। उस अग्नि का चयन करने वाला अपने में चयन करता रहा है।

वैश्वानर-अग्नि-पूजन और वानप्रस्थाश्रम

तो विचार आता है कि यह संसार का द्वितीय अमृत कहलाता है उसके पश्चात् गृह से उपराम हो गया तो अग्नि की पूजा कर रहा है वह अग्नि क्या है, बेटा! जिसका वह पूजन करना चाहता है? **पूजन का अभिप्रायः, मानो देखो अग्नि का चयन है। जो हमारे अन्तर्हृदयों में अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उस अग्नि को जानने का नाम, देखो उसकी पूजा है।** जैसे माता के गर्भस्थल में एक अग्नि है और वह अग्नि, मुनिवरो! देखो बाल्य को गृह में तपायमान करती है और तपायमान करके उसको अखण्डमयी ज्योति कहा गया है। जैसे, परमपिता परमात्मा के इस अनूठे जगत् में, मानो देखो बाह्य और आन्तरिक जगत् में, एक अग्नि प्रदीप्त हो रही है, उस अग्नि को हमारे यहाँ वैश्वानर नाम की अग्नि कहते हैं। मानो वही अग्नि देखो, वैश्वानर बन करके, और गृहपथ्य बन करके, वही अग्नि, मेरे प्यारे! देखो ब्रह्माग्नि बन जाती है।

ब्रह्माग्नि-पूजन और सन्यासाश्रम

ब्रह्माग्नि को ही अधिपति माना गया है, तो विचार आता रहता है, वही अग्नि, मेरे प्यारे! देखो ब्रह्माग्नि बन करके अपने

में चयन करती रही है। वही अग्नि, मेरे प्यारे! मानव को तपायमान करती रहती है। वही अग्नि, मानो देखो, ब्रह्मज्ञान की धाराओं में रत रहती है

एक मानव कहता है, 'अहं ब्रह्मः, अहं वरणस्सुतं ब्रह्मः'। **वेद का वाक्य कहता है कि 'अहं ब्रह्मः', मानो देखो, मेरे अन्तर्हृदय में जो अग्नि जागरूक हो रही है, वही अग्नि मानो देखो ब्रह्माग्नि कहलाती है और, ब्रह्माग्नि का जब मैं चयन करूंगा तो मेरा अन्तरात्मा और मेरी अन्तर्भावना मानो देखो अग्नि में परिणित होती चली जायेंगी। मेरे प्यारे! देखो इसका नाम एक मानवीय आभा में जीवन माना गया है, जिस जीवन के लिए मानव प्रायः प्रयत्नशील रहता है। एकान्त स्थली पर विद्यमान हो करके चिन्तन कर रहा है कि परमपिता परमात्मा का जो अनूठा जगत् है, मानो वह जगत् वह कहलाता है, जहाँ आत्मा और परमात्मा के मिलान की चर्चा करने लगता है, आत्मा-परमात्मा का मिलान करने के लिए वह सदैव तत्पर रहता है, वही उसका पूजन है, वह उसकी एक मनोनीत धारणा है और, वही आन्तरिक जगत् से बाह्य जगत् में आना है और बाह्य जगत् से आन्तरिक जगत् में प्रवेश करना है।** मेरे प्यारे! देखो, वेद का मन्त्र हमें यही तो कह रहा है, 'प्रब्रह्मा कृतं देवत्वां चित्रो', मेरे प्यारे! देखो यही तो चित्रण है। जब मानव ऐसा करने लगता है, तो अपने में प्रकाश के लिए, वह कल्पना करता है। और वेद का मन्त्र

कहता है, 'मानव' तू प्रकाश में जाने का प्रयास कर और वही जो प्रकाश है, वही तो तेरे जीवन की महानता और पवित्रता मानी गई है।'

ब्रह्मचारी के मस्तिष्क का अध्ययन

भारद्वाज-आश्रम में मस्तिष्काध्ययन

आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें विशेष क्षेत्रों में नहीं ले जा रहा हूँ, मुझे स्मरण आ रहा है, बेटा! मैं महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में तुम्हें ले जाना चाहता हूँ। महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज, मेरे पुत्रो! देखो, अपने आसन् पर विद्यमान थे। शान्त मुद्रा में विद्यमान हैं, मेरे पुत्रो! देखो, ब्रह्मचारी कबन्धी और ब्रह्मचारी सुकेता दोनों ब्रह्मचारियों को उनके पिताजन मानो देखो विद्यालय में वेदारम्भ के लिए उन्होंने उन्हें आवृत्त करा दिया और यह कहा कि ''प्रभु! ये हमारे दोनों ही बाल्य हैं, हमारी इच्छा यह है कि मानो देखो यह अंगिरस गोत्र का है और यह मानो दद्दड़ीय गोत्र का है, इन दोनों ब्रह्मचारियों को मैं तुम्हारे विद्यालय में प्रवेश कराना चाहता हूँ।'' भारद्वाज मुनि बोले ''बहुत प्रियतम!'' तो भारद्वाज मुनि ने देखो दोनों के मस्तिष्क का अध्ययन किया', **क्योंकि जब मस्तिष्क का अध्ययन किया जाता है तो वह जो अध्ययन है, वही तो महान् कहलाता है। मानो देखो, इस विद्या को जानने वाले, जब विद्यालयों में ब्रह्मचारी होते हैं तो यह राष्ट्र और समाज अपनी आभा में सदैव**

नृत्य करता रहा है और महानता में यह समाज आ जाता है।

रावण के मस्तिष्क का अध्ययन

मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहा है, मैं बहुत समय की वार्ता तुम्हें प्रगट कर रहा हूँ, जिस समय महात्मा पुलस्त्य ऋषि महाराज के हृदय में यह कामना जागरूक हुई कि 'मैं मानो देखो वरुणकेतु ब्रह्मचारी को इस लंका का स्वामीत्व निधित्व कराना चाहता हूँ।' तो मेरे प्यारे! देखो ऋषि-मुनियों की और राष्ट्रवेत्ताओं की बड़ी एक भव्य सभा हुई और उस सभा में, मुनिवरो! देखो वहाँ ऋषि-मुनियों का पदार्पण कराया तो महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज को उस सभा का सभापति नियुक्त किया गया और जब सभापति नियुक्त किया गया तो उसमें यह वाक्य आया कि देखो इस ब्रह्मचारी का देखो 'राष्ट्रं ब्रह्मः' देखो इनका राज्याभिषेक होना चाहिये।

पेरे प्यारे! देखो 'महात्मा भूःवर्णम्' जो वेद के मर्म को जानने वाले हैं, जो मानव का अध्ययन करने वाले हैं, वे विशेषज्ञ कहलाते हैं, तो उस समय महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने विशेषज्ञता की और उन्होंने देखो वरूण के मस्तिष्क का अध्ययन किया। भस्तिष्क का अध्ययन करके उन्होंने विचारा कि एक नाड़ी है और वह सुषुम्णा के द्वार को होती हुई ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश कर रही है और वह मानो देखो वही दूसरी नाड़ी है जो ब्रह्मरन्ध्र में जा करके ओझल हो रही है।

रावण के अयोग्य होने का वाचन

मानो देखो इसी प्रकार उन्होंने नाना प्रकार की नस-नाड़ियों के ऊपर विचार-विमर्श किया और महात्मा कुक्कुट ने कहा कि **'यह जो नाड़ी मानो ब्रह्मरन्ध्र में जा करके लुप्त हो रही है, इसका अभिप्रायः यह है कि राष्ट्र का इसे अधिकार नहीं है, मानो देखो दूसरी नाड़ी है, जो ब्रह्मरन्ध्र से होती हुई मानो देखो रीढ़ के विभाग में परिणित हो रही है, उससे मिलान हो गया है। इससे यह सिद्ध हुआ कि यह विज्ञानवेत्ता बहुत प्रबल है। मानो देखो जब तीसरी नाड़ी का अध्ययन किया कि सुषुम्णा के द्वार से होती हुई त्रिजता नाड़ी के द्वारा वह गुणन कर रही है तो इसका अभिप्रायः यह है कि इसको आगे चल करके अभिमान हो सकता है।**

मेरे प्यारे! देखो इन नस नाड़ियों का अध्ययन करने वाले मानो देखो ब्रह्मवेत्ता कहलाये जाते हैं। और ब्रह्मवेत्ताओं ने जब यह 'वर्णः' महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज से महात्मा पुलस्त्य ने कहा कि "भगवन्! आप देखो इनका राज्याभिषेक कीजिए।" उन्होंने कहा "प्रभु! मैं इनका राज्याभिषेक नहीं कर पाऊँगा।" उन्होंने कहा "प्रभु! क्यों?" उन्होंने कहा कि "मैं इसलिए नहीं कर पाऊँगा कि इसे अधिकार नहीं है राष्ट्र का। क्योंकि राष्ट्र का जिसे अधिकार होता है तो उसमें अपनी प्रबलताएं होती हैं। मानो देखो एक योगी योग करना चाहता है, योग में प्रवेश करना

चाहता है, जब वह योगी के समीप जाता है जिज्ञासु बन करके तो उसकी जिज्ञासा से यह ज्ञान हो जाता है योगी को कि यह मानो देखो महान् जिज्ञासु नहीं है, यह केवल अपना नामोकरण चाहता है, यह अपने नामोकरण के लिये आया है। **जिसे नामोकरण की इच्छा होती है, उसे अभिमान आ जाता है और उससे धर्म और मानवता की मर्यादा नष्ट हो जाती है।"**

मेरे प्यारे! महात्मा कुक्कुट ने कहा "इसीलिए ऋषिवर! आज मैं मानो देखो 'अप्रहे' आप बड़े तपस्वी हैं, जिज्ञासु हैं और आप मानो देखो इसमें 'वृणं ब्रहे' आप व्यर्थ ही अपने जीवन को समाप्त कर रहे हैं, क्योंकि आपको तो तपस्या करनी चाहिए। आप इस मानो कुटुम्ब के मोह में न आईये। क्योंकि जो महात्माजन हो करके विवेकी नहीं बनते हैं और वे केवल एक कुटम्ब और आवृत्तियों को ले करके अपने को मोह ममता में परिणित कर लेते हैं, जानो उनकी तपस्या अतपस्या में परिवर्तित हो जाती है। हे ऋषिवर! आप तो तपस्वी हैं और आपका ऋषि-मुनियों में बड़ा नामोकरण है, मानो तुम्हारा उज्ज्वलता में स्थान है, परन्तु इस बात के मोह में मत आईये; क्योंकि राष्ट्रीय मोह तो उन्हें होता है, जो नामो की इच्छा में लगे रहते हैं, मानो देखो नामोकरण की इच्छा में आप मत आईये।" परन्तु महात्मा पुलस्त्य मुनि महाराज मौन रहे।

मेरे प्यारे! महात्मा कुक्कुट ने यह कहा कि "प्रभु! मैं इसका राज्याभिषेक नहीं कर सकूंगा, क्योंकि एक नाड़ी इसकी कहती है कि इसको अधिकार नहीं है, दूसरी नाड़ी कहती है, विज्ञानवेत्ता है और तीसरी नाड़ी यह कहती है कि यह आगे चल करके अभिमान में परिणित हो जाएगा", तो हे प्रभु! मैं ऐसे राजा का राज्याभिषेक नहीं कर पाऊंगा।"

राष्ट्र का अधिकारी

देखो जब भी निर्वाचन प्रणाली ऋषि-मुनियों के मध्य में प्रायः होती रही है तो उसी समय, मुनिवरो! देखो राष्ट्र एक ऊर्ध्वा में गमन करता रहा है। और, राष्ट्रीयता एक मानो देखो वह कहलाती है, जो स्वतः अपने में कटिबद्ध रहने वाला हो, अपनी इन्द्रियों का संयम करने वाला हो, आत्मा परमात्मा की आभा में जो रत रहने वाला हो, परन्तु वही राष्ट्र का अधिकारी होता है।

अभिमान का मूल

मानव को अभिमान किसको नहीं होता, अभिमान उसको नहीं होता जो धर्म के मर्म को जानता है। धर्म के मर्म को जानने वाले को अभिमान नहीं होता और सांसारिक मानो देखो जो अधूरे ज्ञान में रमण करता है, उसे यह अभिमान हो जाता है कि तू महान् बुद्धिमान है, तू वेदज्ञ है, तू

राष्ट्रवेत्ता है। परन्तु इस प्रकार की जो धारणा बन जाती है, उस धारणा में ही मानो देखो अज्ञान निहित रहता है और तब अज्ञान में परिणित हो करके वह अभिमान में परिणित हो जाता है।

मेरे प्यारे! देखो महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज ने कहा, "हे राजन्! मैं राज्याभिषेक नहीं कर सकूंगा।" मेरे प्यारे! देखो महात्मा पुलस्त्य अपने में मौन हो गये और जब वह मौन हो गये तो उन्होंने कहा, "सम्भवम्, मैं इन्हीं का राज्याभिषेक चाहता हूँ।" मेरे पुत्रो! देखो महात्मा कुक्कुट ने कहा, "हे ऋषिवर! आप इनका राज्याभिषेक कराइये, परन्तु देखो यह राष्ट्र एक समय अग्नि का काण्ड बन करके रहेगा।" मेरे प्यारे! देखो महात्मा कुक्कुट यह अपना निर्णय दे करके पिछले भाग में विद्यमान हो गये। वह मानो देखो उस अध्यक्ष पद को त्याग करके निचले भाग में विद्यमान हो गये।

मेरे प्यारे! देखो महात्मा पुलस्त्य ने विचारा कि 'महात्मा कुक्कुट से अधिक योग्य और विवेकी महात्मा महान् पुरुष नहीं है और राज्याभिषेक कौन कर सकता है?' मेरे प्यारे! देखो महात्मा भुञ्जु जो तपस्वी थे, वह भी आसन् पर विद्यमान हैं, परन्तु देखो उन्होंने उनका आह्वान किया और यह कहा "आईये, ऋषिवर! आप देखो राज्याभिषेक कीजिए।" उन्होंने कहा, "प्रभु! जब महात्मा कुक्कुट मुनि महाराज मानो देखो निचले विभाग में

विद्यमान हो गये और आप मेरा आह्वान करना चाहते हैं, आप मुझे सभापति बनाना चाहते हैं! मैं उनका राज्याभिषेक करूं तो आप मेरे नामों का यशोऽमृत-गान गाते रहना चाहते हैं?" मानो देखो, जब उन्होंने यह कहा, उन्होंने कहा, "नहीं, तुम राज्याभिषेक करो।"

मेरे प्यारे! देखो महात्मा भुञ्जु विद्यमान हो गये और महात्मा भुञ्जु ने उस मानो आधिपत्य, इस सभापतित्त्व को अपने में ग्रहण कर लिया और ग्रहण करके उन्होंने कहा, "कहो कि क्या सब महापुरुषों की इच्छा है कि मैं इनका राज्याभिषेक करूँ?" सबने एक ही स्वर में हो करके कहा कि "जब महात्मा पुलस्त्य की इच्छा इन्हें राजा बनाने की है, तो राज्याभिषेक किया जाये।" मेरे प्यारे! देखो महात्मा भुञ्जु ने कहा, " 'समाधानं ब्रह्मे कृतम्।' वेद का मन्त्र उद्‌गीत गा करके 'मंगलं ब्रह्मा वर्णस्सुतं देवत्वं ब्रह्मः वर्णस्सुतं वाचस्सुतं देवत्वाम्'। मेरे प्यारे! देखो उन्होंने यह उद्‌गीत गाते हुए वेद-मन्त्रों का उन्होंने उनका राज्याभिषेक किया। राज्याभिषेक करके वह अपने में विद्यमान हो गये और विद्यमान हो करके उन्होंने अपना उपदेश दिया और यह कहा कि—"मैंने आज राज्याभिषेक किया है, मेरी इच्छा यह है कि राष्ट्र अपनी आभा में गमन करता रहे और राजा अपने कर्त्तव्य का पालन करता रहे मानो देखो हमारी यह सर्वत्रता की कामना है, हमारी यही इच्छा है।"

राज्याभिषेकानन्तर वरुण का संदेश

मेरे प्यारे! देखो उस समय वरूण का एक उपदेश, एक संदेश हुआ उस सभा-मंच पर विद्यमान हो करके। मुनिवरो! देखो वरुण ने कहा कि "जैसा ऋषि-मुनियों ने मेरा राज्याभिषेक किया है, मैं उनका बड़ा आभार प्रगट करता हूँ, क्योंकि राष्ट्र-प्रियता तब होती है, देखो जब हमारे यहाँ एक कुलपति हो और वह राष्ट्रवेत्ता हो और मानो देखो वह हमारे पुरोहित के रूप में विद्यमान हो, जैसे परमपिता परमात्मा सर्वत्र ब्रह्माण्ड के पुरोहित हैं और वह पुरोहित बन करके पराविद्या को देने वाले हैं। क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में जिस परमपिता परमात्मा ने पराविद्या को दिया है और अपरा और परा दोनों को ही उन्होंने प्रदान किया तो मैं दोनों प्रकार की विद्या का अध्ययन करता रहूँगा। मानो दोनों प्रकार की विद्याओं का प्रभु के संरक्षण में चिन्तन करता रहूँगा। **एक पराविद्या होती है, एक अपरा होती है। तो अपरा विद्या में रत रहने वाला महान् कहलाता है, अपरा में देखो यह संसार है और परा में ब्रह्म है, चेतना है, ज्ञान है और विज्ञान है।** परन्तु देखो उसमें मुझे रत रहना है, जहां परमात्मा एक-एक परमाणु से गुथा हुआ दृष्टिपात् आता है।" मेरे प्यारे! उन्होंने अपना संदेश दिया कि "मैं राष्ट्र को मानो देखो अपने अश्वमेध-याग से, वाजपेयी-याग से, गो-मेध और यहाँ अश्वमेध-यागों से राष्ट्र को सजातीय बनाता रहूँगा।"

गो-मेध-याग

क्योंकि देखो राजा जब बनता है तो गो-मेध याग होना चाहिए। गो-मेध उसे कहते हैं, जिस राजा के राष्ट्र में दुग्ध देने वाला, पशु हो और वह दुग्ध देने वाला गऊ पशु हो, 'गो-धन' हो। क्योंकि राष्ट्र की सबसे प्रिय देखो वह गो-धन सम्पदा होती है। उसके पश्चात् देखो अन्य धन होना चाहिए। 'अमृतां भूः वर्णम्' और देखो उसके प्रति हमें याग करना चाहिए। यहाँ याग का अभिप्रायः है कि गो के द्वारा, गो-दुग्ध और घृत के द्वारा प्रत्येक गृह में देखो सुगन्ध याग की होनी चाहिए और देखो वेद-मन्त्रों की ध्वनियाँ होनी चाहिए, जिससे राष्ट्र अपने में पवित्र बनता रहे। देखो, उन्होंने, वरुण ने कहा, "मेरी इच्छा यह भी है कि यहाँ गो-धन की पूजा हो। पूजा का अभिप्रायः यह है कि उसका उपयोग किया जाये। मानो देखो उसकी सेवा का अभिप्रायः यह है कि वह प्रसन्न रहे मानो जिस राजा के राष्ट्र में गो-धन प्रसन्न रहेगा और दुग्ध देने वाला पशु होगा उस राजा का राष्ट्र पवित्र कहलाता है।"

मेरे प्यारे! देखो वरुण ने कहा कि "मेरे पूज्यपाद गुरुदेव जब राष्ट्र की चर्चा करते थे तो प्रायः यह कहते थे कि **गो-घृत के द्वारा, दुग्ध के द्वारा ही याग होने चाहिए। प्रातःकालीन् प्रत्येक गृह में अग्नि प्रचंड करते हुए वेद-मन्त्रों की ध्वनि से जब यागों की सुगन्ध आती हो, यागों की ध्वनियाँ आती**

हों और 'स्वाहा' शब्द का मानो वहाँ प्रतिपादन किया जाता हो, वे मानो देखो राष्ट्र और गृह दोनों ही पवित्र होते हैं। उस राजा के राष्ट्र में महानता की प्रतिभा सदैव रत रहती है।"

'स्वाहा' ध्वनि के रूप में राष्ट्रीय सहयोग

इस प्रकार जब उस ब्रह्मचारी ने यह कहा तो सर्व सभा मानो देखो शून्यवत् हो गई और उन्होंने कहा "मेरा तुम सहयोग दो।" प्रजा से कहा, "हे प्रजाओ! तुम मेरा सहयोग दो और सहयोग क्या है राजा के लिए कि प्रजा, प्रत्येक प्रजा अपने कर्त्तव्य का पालन करती रहे और राजा स्वतः याग करे तो प्रजा अपने में भी याज्ञिक बने और देखो प्रातःकालीन वेद-ध्वनि की मानो ध्वनियाँ होती रहें।" वे मुनिवरो! देखो प्रत्येक गृह में गुंजायमान रहें। ऐसा मुनिवरो! देखो उन्होंने अपनी 'दीक्षा अमृतम्' देखो उन्होंने अपना संदेश दिया राष्ट्र को और यह कहा कि "मेरा यही सहयोग है कि **जब प्रत्येक मानव 'स्वाहा' कहेगा, प्रत्येक मानव अग्नि की धाराओं में अपने गृह को सुगन्धित करेगा तो यह राष्ट्र का बहुत ऊर्ध्वा में सहयोग है, क्योंकि उससे मानव समाज अपने में मानवीयता के लिए सदैव तत्पर रहेगा और मानवीयता का उत्सुक रहेगा और जहाँ मानवीयता आ जाती है, वहीं राष्ट्र और गृह दोनों पवित्र बन जाते हैं।"**

अश्वमेध-याग

मेरे पुत्रो! देखो उस समय, जब वरुण ब्रह्मचारी ने यह कहा तो प्रजा आनन्दित हो गई और उन्होंने कहा, "मैं गो-मेध याग ही नहीं, अश्वमेध यागों में भी परिणित होना चाहता हूं।" गो-मेध याग का अभिप्रायः तो यही है कि उनकी सेवाओं से उनकी रक्षा होनी चाहिए और देखो अश्वमेध-याग की पूजा होनी चाहिए, क्योंकि अश्व नाम, राजा का है; मेध नाम, प्रजा का है। पर्यायवाची शब्दों में जब जायेंगे तो बहुत पर्यायवाची हमें सिद्ध होंगे, परन्तु विचार केवल यही है कि हम अश्वमेध यागी बनें और अश्वमेध उसे कहते हैं, मुनिवरो! देखो अश्व नाम घोड़े का है और 'अमृत्तम्' अश्व नाम यहाँ राजा का माना गया है। **राजा अश्व है और मेध नाम प्रजा का है। जब राजा और प्रजा दोनों सम्मिलित हो करके और प्रीतिपूर्वक अपने कर्त्तव्यवाद में संलग्न हो करके मुनिवरो! देखो राष्ट्र के और समाज के लिए क्रियाकलापों में सदैव रत रह करके याग करते हैं, तो मानो देखो वह अश्वमेध-याग कहलाता है।** राजा कोई भी कार्य ऐसा न कर पाये, जिससे समाज से विपरीत हो जाये या समाज में अशान्ति हो जाये यही तो अपने में शान्ति का आ जाना है।" वरुण ब्रह्मचारी ने राज्याभिषेक होने के पश्चात् यह प्रजा को और राष्ट्र को अपना संदेश दिया और वह संदेश यह है कि "प्रत्येक मानव अपनी-अपनी आभा में रत रहे।"

पिण्ड में ब्रह्माण्ड

"मानो देखो विज्ञान तो प्रत्येक मानव का मौलिक गुण है, क्योंकि परमपिता परमात्मा ने जब मानव के शरीर को रचा तो इस मानो बहुत सूक्ष्म शरीर में ब्रह्माण्ड को रच दिया है और ब्रह्माण्ड एक शरीर में नहीं, मानो इस शरीर में नाना ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे वर्णन कराया। एक समय बाल्यकाल में मानो मध्यरात्रि में वेद-मन्त्रों का चिन्तन कर रहे थे और वेद-मन्त्र यह कह रहा था, 'ब्रह्माण्डं ब्रवे कृतं देवः' कि हे प्रभु! इस ब्रह्माण्ड में तो अनन्त ब्रह्माण्ड हैं, परन्तु तुम यह कहते हो कि 'पिण्डो ब्रह्माण्डे' तो इस पिण्ड में कितने ब्रह्माण्ड हैं?" उन्होंने कहा "इस पिण्ड में भी अनन्त ब्रह्माण्ड हैं। पिण्ड में परमाणु हैं। वे बाह्य जगत् में भी हैं। उस परमाणु का विभाजन करने से और योग में जाने से हमें यह सिद्ध होगा कि उस एक ही परमाणु में ब्रह्माण्ड है, अणु में ब्रह्माण्ड है। तो यह ब्रह्माण्ड अपनी आभा में अभ्योदय हो रहा है। तो विचार आता है कि ऐसा जो ब्रह्माण्ड है, ऐसी जो प्रतिभा है वह 'पिण्डो ब्रह्माण्डे' में गमन करने वाला है। इसी प्रकार यह जो जगत् है, परमात्मा का अनुपम जगत् है, यह नाना ब्रह्माण्ड वाला है। ऐसे ही मानव का शरीर भी एक-एक परमाणु से गुथा हुआ है और प्रत्येक परमाणु में ब्रह्माण्ड है।"

मेरे पुत्रो! देखो वरुण ब्रह्मचारी ने कहा "मेरे पूज्यपाद गुरुओं ने जब मुझे यह वर्णन कराया तो मानो देखो मैं अत्यन्त

प्रसन्न हो गया और मैंने अपने में यह स्वीकार कर लिया कि प्रभु के संरक्षण में हूँ। प्रभु के संरक्षण में ही हमें रहना चाहिये, क्योंकि प्रभु का संरक्षण ही हमारे लिए देखो मानवीयता की आभा में रत रखने वाला है।''

मेरे पुत्रो! देखो इस प्रकार उनका संदेश राष्ट्र के लिए प्रियतम रहा। उन्होंने यह कहा कि ''अश्वमेध-याग होना चाहिए। और अश्वमेध याग जो है वही, मुनिवरो! देखो राष्ट्र और समाज को पवित्र बनाता है।'' तो इस प्रकार नाना प्रकार के यागों का चयन हमारे वैदिक साहित्य में प्रायः आता रहा है। तो वरुण ब्रह्मचारी ने अन्त में अपना यह उपदेश दिया कि ''संसार में देखो 'मातृ अप्रण प्रणेति' मानो देखो, माताओं का हमें पूजन करना चाहिए। **माताओं का पूजन क्या है? मानो देखो उनका साहस पवित्रता में रत रहना चाहिए, और विद्यालयों में ऐसी मानो कक्षाएं होनी चाहिए, देखो पुत्रियों को ऐसी शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे योग में, प्राण में, प्राण और अपान में रत रहने वाली शिक्षा हो।** देखो विद्यालय उससे महान् बनते हैं, जब मेरी पुत्रियों को गृह-सूत्रों का अध्ययन, देखो वैदिक-मन्त्रों का अध्ययन कराया जाता है, उसका प्रभाव होता है और उसका क्रियात्मक चयन कराया जाता है।'' तो इस प्रकार, मुनिवरो! देखो उन्होंने कोई भी ऐसी स्थली नहीं त्यागी, जिसको वह उद्गीत न गा सके, विज्ञान क्या और देखो वह राष्ट्रवाद क्या क्योंकि राष्ट्रवाद ही इसे कहते हैं।

राष्ट्रवाद कहते हैं, अनुशासन को। जब मानव अपनी इन्द्रियों पर अनुशासन कर लेता है और उनके अनुसार बर्तने लगता है। इस प्रकार, राष्ट्र भी अनुशासन का नामोकरण कहा गया है। प्रजा और राजा दोनों सम्मिलित हो करके अश्वमेध-यागी बनें और देखो धनुर्यागी बनें, जिससे धर्नुविद्या हो। धनुर्विद्या भी राजा के राष्ट्र में बहुत अनिवार्य है। धनुर्विद्या उसे कहते हैं, जहाँ देखो ब्रह्मचारियों को धनुर्विद्या में सुयोग्य बनाया जाता है। अणु और परमाणु के माध्यम से उन्हें यन्त्रों में मानो प्रविष्ठ कराया जाता है।" और वही, मुनिवरो! देखो अपने में यन्त्रमार्गी बन करके सागर से पार होने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं।

इस प्रकार वरुण ब्रह्मचारी ने अपना उपदेश दिया और यह कहा कि "राजा को समय-समय पर मानो पुरोहित की आज्ञा होनी चाहिए और पुरोहित के संरक्षण में जो राजा राष्ट्र का पालन करते हैं या कर्त्तव्य का पालन करते हैं, उससे राष्ट्र पवित्र बनता चला जाता है।" मेरे पुत्रो! देखो यह वाक्य उच्चारण कर, यह संदेश दे करके वह अपने में मौन हो गये और मौन हो करके अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये। महात्मा पुलस्त्य ऋषि महाराज उपस्थित हुए और पुलस्त्य ने कहा, "मेरी यह मनोकामना रही है कि यहाँ राष्ट्र, देखो जब भी ऊँचा बनता है, देखो यौगिकता

से ऊँचा बनता है। राष्ट्र मानो द्रव्य की लोलुपता वाले राष्ट्रवेत्ताओं से कदापि ऊँचा नहीं बनता। राष्ट्र ऊँचा जब भी बनता है जब राजा यौगिक हो। क्योंकि राजा को वशिष्ठ कहते हैं, जो पुरुषों में वशिष्ठ होता है। मानो देखो इस प्रकार पुरोहित उन्हें कहते हैं, जो पराविद्या को देने वाले हों। इस प्रकार, देखो राष्ट्र और समाज अपने में पवित्रता की धारा को और यौगिक क्षेत्र में रमण करता रहे!'' वह भी अपनी स्थली पर विद्यमान हो गये।

मेरे प्यारे! देखो विचार-विनिमय क्या? मैं बहुत दुरी चला गया विचार तो मैं कुछ और ही देने जा रहा था परन्तु देखो वह विद्यालयों की चर्चाएं और राष्ट्रवेत्ताओं की चर्चा में चला गया। मेरे प्यारे! देखो, 'महात्मा ब्रह्मे' देखो महर्षि भारद्वाज मुनि के आश्रम में, बेटा! ब्रह्मचारी अपने में शिक्षा-अध्ययन करने लगे। ये चर्चाएं, मैं तुम्हें कल प्रगट कर सकूँगा कि वह किस प्रकार की शिक्षाओं में रत रहे हैं। तो बेटा! देखो आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? वाक्य यह कह रहा है कि परमपिता परमात्मा के राष्ट्र में देखो अयोग्यता में सुयोग्यता नहीं होनी चाहिए। जब अयोग्यता में सुयोग्यता आ जायेगी, उसी समय देखो समाज में अशान्ति आ जायेगी और अशान्ति यहाँ तक बलवती हो जायेगी कि उसमें स्वार्थपरता आ जायेगी। क्योंकि समाज जब भी ऊँचा बना है, वह जब बना है, जब निस्वार्थ आ गया है और निस्वार्थ में प्रेम होता है और स्वार्थपरता में मानो देखो विभाजन की

प्रतिक्रिया होती है। वह विभाजन की प्रतिक्रिया मानव के जीवन में नहीं होनी चाहिये।

तो विचार-विनिमय क्या? आज का हमारा वाक्य क्या कह रहा है? कि हम परमपिता परमात्मा की अराधना करते हुए और देव की महिमा का गुणगान गाते हुए इस संसार-सागर से पार होने का प्रयास करें। बेटा! आध्यात्मिकवाद और भौतिकवाद दोनों ही मानो देखो पारायण रहने चाहिए। दोनों की गतियाँ एक ही सूत्र में रहनी चाहिए। क्योंकि एक ही सूत्र के दोनों मनके हैं। ये मनके एक सूत्र में पिरोने से ही महान् बनते रहें, इस समाज और मानव का तब अपने में अभ्योदय होता रहेगा। तो आज का वाक्य अब समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा, क्योंकि आज का हमारा वेद-मन्त्र कुछ राष्ट्र के सम्बन्ध में, अनुशासन के सम्बन्ध में विवेचित कर रहा था। तो आज का विचार यह सम्पन्न। अब वेदों का पठन-पाठन।

नई सड़क, दिल्ली-६
३०-३-६१

अध्वर्यु की ध्रुवाकला

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भाँति, कुछ मनोहर वेदमन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेदमन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव, परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है। क्योंकि जितना भी यह जड़-जगत् अथवा चैतन्य-जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, प्रायः वह मेरा देव दृष्टिपात् आ रहा है। वह देवत्व है, हम सब उस परमपिता परमात्मा के गर्भ में अथवा उसके ही आनन्द में आनन्दित होते रहते हैं। **जिस प्रकार माता का पुत्र होता है, माता के गर्भस्थल में उसकी पालना अथवा उसकी रचना होती है, वह उस मानो माता के गर्भस्थल में जिस प्रकार ओत-प्रोत रहता है, इसी प्रकार हम सर्वत्र जितने प्राणी मात्र हैं, उस परमपिता परमात्मा के गर्भ में सदैव निहित हो रहे हैं।**

आज का हमारा वेदमन्त्र हमें मानवीयता का एक दर्शन करा रहा है, क्योंकि यह जो मानवीयता है यह हमारे मानवीयत्व में निहित रहने वाली है। हम प्रायः उस परमपिता परमात्मा की

महती अथवा उसके अनन्तमयी ज्ञान और विज्ञान में सदैव निहित रहते हैं। क्योंकि जितना भी ज्ञान और विज्ञान है, वह उस परमपिता परमात्मा की महती है और उसी के गर्भ में हम उन क्रियाकलापों में सदैव तत्पर होते हैं, जहाँ उस परमपिता परमात्मा का यह मानो एक अनूठा जगत् विचित्र हमें दृष्टिपात् आता रहता है। तो आओ, मेरे पुत्रो! मैं विशेष विवेचना इस सम्बन्ध में प्रायः देना नहीं चाहता हूँ, केवल हमारा अभिप्रायः यह है कि जितना भी यह प्राणी-मात्र है, चाहे वह इस पृथ्वीमण्डल पर गमन करने वाला हो चाहे और भी लोक-लोकान्तरों का प्राणी मात्र हो, परन्तु वह सर्वत्र मानो उस परमपिता परमात्मा के गर्भ में निहित रहता है।

ज्ञान-विज्ञान के सूत्र–वेद-मन्त्र

आओ, मेरे पुत्रो! मैं आज इन वाक्यों के उच्चारण करने से पूर्व, आज का हमारा एक-एक वेदमन्त्र ऐसा अपने में सूत्रित हो रहा है जैसे माला का और धागे का दोनों का समन्वय रहता है। और, वे प्रत्येक मनके मानो उस एक सूत्र में पिरोये हुए होने से वह एक माला दृष्टिपात् आने लगती है, इसी प्रकार परमात्मा का जो एक-एक वेद का मन्त्र है, वह ज्ञान और विज्ञान और मानवीयता से गुथा हुआ है, मानो उसमें ऐसा दृष्टिपात् आता रहता है, तो इसीलिए वह परमपिता परमात्मा रूपी जो सूत्र है मानो उस सूत्र में प्रत्येक वेद का मन्त्र सूत्रित रहता है, और

एक-एक वेद में मानो व्यवहार और भौतिक-विज्ञान और आध्यात्मिवाद उसमें दृष्टिपात् आता रहता है। तो आओ, मेरे पुत्रो! विचार क्या? कि वेद का एक-एक मन्त्र हमें सृष्टि का वर्णन करा रहा है, एक-एक वेदमन्त्र हमें परमाणु की भान्ति मानो सर्वत्र ब्रह्माण्ड का चित्रण करा रहा है।

अध्वर्यु के पर्याय

आओ, मुनिवरो! आज का हमारा वेद-मन्त्र क्या कह रहा है? आज मैं, बेटा! तुम्हें उस मानव-आवृत्तियों में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ प्रत्येक मानव मानो अपनी मानवीयता और मानव-दर्शनों में निहित रहा है। क्योंकि मानव का कर्त्तव्य है कि अपने में अपनेपन का ही वह प्रायः दर्शन करता रहता है। हमारे यहाँ जब मानव अध्वर्यु बन जाता है, मानो देखो अध्वर्यु की चर्चा मैंने कई काल में की है। आज भी एक वेदमन्त्र आ रहा था 'ध्रुवणं ब्रह्मे कृता अश्वस्च प्रह्वा ध्रुवाणि गच्छतं मां ध्रुवा'। **मानो देखो यह ध्रुवा में, ऊर्ध्वा में, जो मध्य की प्रतिभा है, उसका नाम अध्वर्यु कहलाता है। हमारे यहाँ सूर्य का नाम प्रायः अध्वर्यु माना गया है। परन्तु अध्वर्यु माता को भी कहते हैं, जो अहिंसा में परिणित हो जाती है, जो अहिंसा में मानो नियुक्त रहती है। राजा का नाम भी अध्वर्यु कहलाता है। जिस राजा के राष्ट्र में हिंसा नहीं होती, मानो उस राजा का, राष्ट्र का नाम, अध्वर्यु कहलाता है।** इसीलिए हमारे यहाँ, जिस

भी काल में याग इत्यादियों का वर्णन आया है, वहाँ अध्वर्यु का वर्णन आता है।

बहुत पुरातन काल की वार्त्ता है, बेटा! मानो देखो ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम अथर्वा था। मानो देखो वे अंगिरस इत्यादि मुनियों के समकालीन रहे हैं, उससे पूर्व भी, मानो ऐसा माना गया है, तो अध्वर्यु की उन्होंने अपनी लेखानियाँ बद्ध कीं और यह कहा कि **'अध्वर्यु वह कहलाता है, जो देखो हिंसा से रहित होता है। जो प्राणीमात्र को जीवन देने वाला है, उसका नाम अध्वर्यु कहलाता है।'**

सूर्य का अध्वर्युवाद

आज के हमारे वेद के पठन-पाठन में भी प्रायः अध्वर्यु की चर्चा हो रही थी। मेरे प्यारे! अध्वर्यु नाम, सूर्य का माना गया है, जो हिंसा से रहित है। मानो देखो वह अहिंसक कहलाता है, जो प्राणीमात्र को मानो अपने आधिपत्य से ऊर्ध्वा में जीवन देता रहता है और उसे ऊर्ध्वा बनाता रहता है। ऊर्ध्वा देना ही, ऊर्ध्वता कहलाती है।

आत्मा का नाम अध्वर्यु

मेरे पुत्रो! मुझे बहुत सा काल स्मरण आता रहता है, जब मुनिवरो! देखो, मुझे वह काल स्मरण है जिस काल में गाड़ीवान रेवक मुनि महाराज के यहाँ एक मानो सभा हुई और सभा में

नाना प्रकार का यह प्रसंग उत्पन्न हुआ। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने वह अध्वर्यु नाम, बेटा! आत्मा को माना है। इस शरीर में जब आत्मा अध्वर्यु बन जाता है, वह अहिंसा में परिणित हो जाता है, तो अध्वर्यु बन करके, मानो जो भी मानव देखो, दिवस में, रात्रिकाल में, क्रियाकलाप करता रहता है, तो जब तक वह सुक्रियाओं में रहता है, तब तक मुनिवरो! देखो, आत्मा बड़ा प्रसन्न रहता है और जब यह मानो देखो, दुष्कर्म व्यवहार में आ करके कोई निकृष्टकर्म-क्रियाकलापों में रत होता है, तो उससे मानो आत्मा की वेदना जागरूक हो जाती है और आत्म-चेतना में जब वह मानो उसके वाक्यों को, उसकी प्रेरणा को हृदय से स्वीकार कर लेता है, तो बेटा! वह अध्वर्यु कहलाता है।

वह मानव ही अध्वर्यु है, आत्मा ही अध्वर्यु है, क्योंकि वह ज्ञान और प्रयत्न से युक्त है। तो बेटा! मैं इसलिए इस सम्बन्ध में विशेष विवेचना न करता हुआ केवल अध्वर्यु नाम, बेटा! वह है, बेटा! जिसकी प्राणीमात्र, रक्षा करने वाला होता है। सिंहराज भी उसकी रक्षा करता है, सर्पराज भी रक्षा करता है और बेटा! देखो राष्ट्रीयता को भी ऊर्ध्वा में बनाने वाला है। उसका नाम, मेरे पुत्रो! देखो अध्वर्यु कहलाता है।

महाराज विश्वामित्र का अध्वर्यु-वरण

वशिष्ठ आश्रम में महाराज सुनीत

मेरे प्यारे! देखो, आज मैं तुम्हें एक ऐसी सभा में ले जाना

चाहता हूँ, जिन वाक्यों की पुनरूक्तियाँ हमने कई कालों में की हैं, परन्तु आज भी मुझे प्रसंगवत स्मरण आ रहा है कि मानव कितना अध्वर्यु बनता है, अपने जीवन में। अपने जीवन को कितना आधिपत्य देता रहता है। मेरे प्यारे! तुमने सुनीत नाम के राजा का नामोकरण तो श्रवण किया ही होगा। मानो देखो वह अपने राष्ट्र में, अपनी वृत्तियों में रत रहते थे। एक समय, बेटा! वह सुनीत नाम के राजा अपनी सेना के सहित भ्रमण करने लगे। बेटा! भ्रमण करते उन्हें रात्रि का काल हो गया। रात्रि काल में, बेटा! देखो, कहीं उन्हें निकटतम आश्रम नहीं प्राप्त हुआ, तो बेटा! वह ऋषि वशिष्ठ मुनि महाराज के विद्यालय में, वशिष्ठ-मुनि-आश्रम में, बेटा! उन्होंने पदार्पण किया। ऋषि ने और माता अरुन्धती ने, दोनों ने, राजा का स्वागत किया और वह विराजमान हो गये। परन्तु कामधेनु गऊ, जो महाराजा इन्द्र के यहाँ से महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज को प्राप्त हुई थी, उसका उन्होंने उनको दुग्धाहार कराया। और भी कन्दमूल दे करके वह तृप्त किये गये और तृप्त होने से रात्रि समय विश्राम करने लगे।

कामधेनु के पर्याय

वह कामधेनु गऊ विचित्र प्रकार की थी, क्योंकि कामधेनु तृप्त करने वाली है। हमारे यहाँ कामधेनु के कई प्रकार के अर्थ माने गये हैं। कई प्रकार की मानो देखो, मानव उसके ऊपर टिप्पणियाँ करता रहा है। हम भी, बेटा! अपने में इन शब्दों के

ऊपर टिप्पणियाँ करते रहते हैं। मुनिवरा! देखो, कामधेनु नाम का पशु भी होता है। कामधेनु नाम बुद्धि को भी कहा जाता है, और कामधेनु मानो देखो जो ऋषि है, महात्मा महापुरुष है, जैसे राजा का नामोकरण भी मेरे पुत्रो! देखो, कामधेनु-वृत्तियों में रत रहा है।

मानो देखो, वह जब 'ब्रहा वणर्न वस्वनं ब्रह्मेकृतं लोकां वाचन्नमं ब्रह्मः' मेरे पुत्रो! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के यहाँ कामधेनु थी। कामधेनु नाम मानो प्रजा को भी कहते हैं। मेरे पुत्रो! देखो, राजा का स्वागत किया गया। वह विराजमान हो गये। मेरे पुत्रो! देखो, कामधेनु नाम संकल्पों को भी कहा जाता है। मानव जब अपने सुसंकल्प करता है, वह मानो देखो, धेनु के सदृश, तो उसकी इच्छा पूर्ण होने लगती है। जैसे रक्तबीज का वर्णन आता है। एक रक्त को, बिन्दु को, जब जाना नहीं द्वितीय उपस्थित हो जाता है। **बेटा! वैज्ञानिकों का यह निर्णय रहा है कि 'एक-एक रक्त के बिन्दु में जहाँ चित्र विद्यमान रहते हैं, वहाँ मानो देखो, उनका क्रियाकलाप, उनकी प्रतिभा भी उसमें दृष्टिपात् आती रहती है।'**

बेटा! मैं विज्ञान के युग में न जाता हुआ, केवल यह कि वहाँ महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने बेटा! उनके स्वागतार्थ, राजा की दृष्टि से उसका स्वागत किया।

सुनीत की कामधेनु-प्राप्ति-इच्छा

मेरे प्यारे! देखो, रात्रि समय सुनीत नाम के राजा के हृदय

में, बेटा! यह संकल्प और विकल्प बन गया कि ''ऐसी कामधेनु गऊ तो मेरे आश्रम में होनी चाहिए। यह कामधेनु बड़ी प्रिय है।'' तो मुनिवरो! देखो राजा यह संकल्प और विकल्प करते रहे, परन्तु देखो, अपने में कोई निपटारा नहीं हुआ। प्रातःकाल उन्होंने एक निपटारा किया कि 'वशिष्ठ से कहेंगे कि कामधेनु को हमें प्रदान कर दें और यदि प्रदान नहीं करते हैं तो अपने क्षत्रिय बल से अपने गृह में इसका वास होना चाहिए।' मेरे प्यारे! देखो, रात्रि समय वह 'ब्रह्मः कृतं वेद अस्वतं लोकः' मेरे प्यारे! देखो, वह ऋषिआश्रम में, अपने में 'वृणी वृत्तम्' रहे।

तो विचार-विनिमय करने वाला, बेटा! विचारता रहा है कि 'यह कामधेनु कितनी प्रियता में है।' प्रातःकाल होते ही राजा ने कहा ''हे भगवन्! इस कामधेनु को मुझे प्राप्त कराईये। मैं इस कामधेनु को अपने राष्ट्र में ले जाना चाहता हूँ'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! आप कामधेनु को ले जाना चाहते हैं तो यह आपकी इच्छा है और कामधेनु जाना चाहती है, तो मुझे मानो किसी प्रकार का दोषारोपण नहीं मानो मैं उसमें प्रसन्न हूँ। क्योंकि यह कामधेनु नहीं जाने वाली है, क्योंकि यह देवताओं की धरोहर है और इन्द्र के यहाँ से मुझे प्राप्त हुई है। यह देवत्त्व प्रवृत्ति वाली है। आज मैं इसे अपने मुखारबिन्दु से तुम्हें समर्पित नहीं करूँगा।'' परन्तु देखो, राजा ने कहा, ''हम क्षात्रबल से ले जायेंगे।'' उन्होंने कहा, ''यह आपकी इच्छा है।'' मेरे पुत्रो! देखो, ऋषि ब्रह्मवेत्ता थे, नम्र थे, ब्रह्मज्ञान में रत रहते थे। वह ब्रह्मज्ञान में इतना जान गये थे,

इतना यह मानो उनकी क्रियाओं में रत रहा है, इतना विचित्रत्व रहा है कि वह सदैव मानो देखो इसमें निहित होते रहे हैं। इस प्रतिक्रिया को वह सदैव जानते रहते थे। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने यह जान लिया था कि यह ब्रह्म है, यह उसके गर्भ में विद्यमान है और जो जिसके भोगारोपण, जो जिसके आंगन में आने वाली वस्तु है, वह अवश्य आयेगी। मानो देखो इसमें अपनी 'धीर-सताम्' अपनी नम्रता को ऋषि ने नहीं छोड़ा।

ब्रह्मवेत्ता का एक लक्षण नम्रता है। क्योंकि परमपिता परमात्मा भी नम्र है, अहिंसक है। मानो जब उसमें नम्रवाद आ जाता है, देखो, उसी प्रकार का जब मानव बन जाता है, तो वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है। वशिष्ठ मुनि महाराज को ब्रह्मवेत्ता इसीलिए कहते थे, क्योंकि वह ब्रह्मनिष्ठ, ब्रह्म को जानने वाले थे। तो मेरे प्यारे! देखो, जब वे क्षात्रबल से कामधेनु को गमन कराने लगे, तो वशिष्ठ ने और माता अरून्धती ने कहा, "हे कामधेनु! हमारी इच्छा नहीं है, कि तुम राष्ट्रगृह में प्रवेश करो, देखो तुम इन्द्र और देवताओं की धरोहर हो।" मेरे प्यारे! देखो, जब कामधेनु ने इन शब्दों को श्रवण किया, तो मुनिवरो! देखो, कामधेनु ने अपने सिंहनी के स्वरूप को धारण कर लिया। मानो देखो, वह ऋषि के शब्दों को पान करती रही। 'ब्रह्मः लोकां वाचन्नमं ब्रहे' ऐसा ऋषि ने वर्णन किया है। मुझे बेटा! कुछ ऐसा स्मरण आता रहा है जिससे मैं अपनी वार्ता प्रगट कर रहा हूँ।

गो-रक्षा की राष्ट्रीय प्रणाली

मेरे प्यारे! देखो, कामधेनु उनकी सेना को नष्ट करने लगी। देखो, उस समय एक राष्ट्रीय-प्रणाली में, पृथ्वी का एक नियम बना हुआ था कि कामधेनु का, गऊ का कोई भी 'आवृत्तम्' मानो देखो उसको सदैव आनन्द ही आनन्द के स्रोत्र से उसको श्रवण किया गया था। परम्परागतों से ही, बेटा! भगवान मनु के कुलों से ले करके, मानो देखो, जितने भी सर्वत्र राष्ट्रों के काल सम्पन्न हुए और जब से राष्ट्र का निर्माण हुआ है, उसी काल से मानो देखो गऊ, धेनु का बड़ा देखो सम्मान रहा है और वह एक आनन्द और अपने में एक हृदयग्राही एक सूचक बना रहा है। और वह सूचकता इसीलिए क्योंकि वह कामधेनु प्रियतम है। मेरे पुत्रो! देखो, जब राजा ने यह दृष्टिपात् किया कि यह सेना को नष्ट कर रही है, तो उन्होंने कहा, "हे धेनु! जाओ, तुम ऋषि के द्वार पर जाओ और हम तुम्हें त्याग रहे हैं और हम आपको अपने राष्ट्र में गमन नहीं करा रहे हैं।" मेरे पुत्रो! सेना को ले करके सुनीत नाम के राजा, बेटा! वह तो अपने राष्ट्र में जा पहुँचे और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के द्वारा जब कामधेनु उनके द्वार पर पहुँची तो 'कामधेनु ब्रह्मणं ब्रहे'।

वशिष्ठ की कामधेनु से ब्रह्मज्ञान-चर्चा

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने आश्वासन दिया। मानो देखो, उसको प्रीति से ब्रह्मज्ञान की चर्चाएं कीं—"हे कामधेनु! तेरे में

आत्मा है, तू आत्मवत है। मानो देखो, तू चेतनामय है। तू ज्ञान-युक्त और देखो 'विज्ञानं प्रह्नाणा' तेरे ही दुग्ध का आहार करके हम मानो विज्ञानवेत्ता बन सकते हैं"। जहाँ, बेटा! ब्रह्म बने हैं, वहाँ विज्ञानवेत्ता भी बनते रहते हैं। **अणु और परमाणुओं को जानने वाला विज्ञानवेत्ता है। परन्तु वह जब आध्यात्मिकवाद की प्रतिभा में रत होता है, तो वह अपने में, बेटा! ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। आत्मवेत्ता ही, ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।**

विश्वामित्र को कामधेनु से आत्म-प्रेरणा

आओ, मेरे प्यारे! वह राजा सुनीत जब अपने राष्ट्र में पहुँचा तो विचारने लगा, "यह तो बड़ी विचित्र एक घटना हुई है। बड़ा विचित्रवाद एक हमारे समीप आया है कि एक ऋषि की आज्ञा पाते ही, मानो देखो, एक कामधेनु, जो हमारे यहाँ गो नाम का पशु कहलाता है, उसमें मानो इतनी सत्ता इतनी महानता है, कि वह अपने में 'वृत्तं ब्रह्मः' मानो देखो, अपने में रत हो करके सेना को नष्ट करने लगी। यह बड़ा विचित्रवाद है! यह कौन सी सत्ता है? कौन-सी मानो महानता है, जिससे मानो देखो, प्राणी एक प्राणी की रक्षा कर रहा है? हिंसक प्राणी भी देखो, अहिंसा में परिणित हो जाता है! कामधेनु गऊ, मानो जो एक पशु के तुल्य है, एक पशु है, मानो उसे आध्यात्मिक-ज्ञान नहीं है, मानो प्रेरणा पा करके, वह उसमें भी अपने में मानो संलग्न रहती है; उसी में वह आनन्दित है। यह कौन-सी सत्ता है, जो ऋषि की आज्ञा को पान करते ही कामधेनु सेना को नष्ट करने लगे?"

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि विचारता रहा। मन्त्री-गणों की सभा उपस्थित हुई। उसमें. बेटा! देखो, सोमकेतु ऋषि महाराज विराजमान हुए और वृतिका और देखो, महर्षि लोमश इत्यादि मुनियों का आगमन हुआ। उनके उस समय राजपुरोहित, महर्षि तत्वेत्व ऋषि महाराज थे। उन्होंने, तत्वेत्व ऋषि से कहा, "प्रभु! यह क्या कारण है? आज हम वशिष्ठ आश्रम में पहुंचे थे और वहाँ एक कामधेनु हमारी सेना को नष्ट करने लगी, इसीलिए कि उसे हम अपने राष्ट्र में प्रवेश कराना चाहते थे।" मेरे प्यारे! देखो, ऋषि ने कहा कि "मैं तुम्हारा राजपुरोहित हूँ, परन्तु यह कामधेनु गऊ जब अपने में मानो संकल्पवादी बनती है और मानव की रक्षा करने के लिए तत्पर है, तो वह तुम्हारे गृह में आने वाली नहीं है"। राजा ने कहा, "तो मुझे क्या करना चाहिए?"

उन्होंने कहा, "प्रभु का, अन्तरात्मा का विषय है, यह हमारा विषय नहीं है। **क्योंकि अन्तरात्मा का जो विषय होता है, वह बड़ा विचित्र होता है। अन्तरात्मा जो प्रेरणा देती है अथवा प्रेरणा को कोई नष्ट कर देता है तो आत्मा का हनन हो जाता है। यदि आत्म-प्रेरणा के साथ-साथ मनुष्य अपने क्रियाकलापों में रत रहता है अथवा उसके अनूकूल अपने जीवन में बरतने लगता है। तो मेरे प्यारे! वह आत्म-उत्थान करने वाला है, वह आत्मवेत्ता बन जाता है, एक समय में।** परन्तु इसलिए, भगवन्! यह तुम्हारी अन्तरात्मा का विषय है।" तो राजा ने कहा, "प्रभु! तो मेरी इच्छा यह है कि मैं भी तप

करने जा रहा हूँ और मैं ब्रह्मवेत्ता बनूँगा और ब्रह्मवेत्ता उपाधि को प्राप्त करके मानो मेरा जीवन सार्थक बन सकेगा।'' राजा से उन्होंने कहा, ''बहुत प्रियतम!''

मेरे प्यारे! देखो, उनका जेठा पुत्र, देखो रेणकेतु नाम का मानो उनका पुत्र था, वह उन्हें देखो राज्य समर्पित करके भयंकर वनों में चले गये। और, भयंकर वनों में, कजली वनों में क्या, वह उससे ऊर्ध्वा वनों में जा करके तपस्या करने लगे। तो मेरे पुत्रो! जब वह तपस्या करने लगे तो गायत्री छन्दों का जपन, मानो पठन-पाठन करते रहे। मानसिक अपनी प्रतिक्रियाओं में रत रहे। परमात्मा का चिन्तन करते-करते, बेटा! बारह वर्षों का उन्होंने अनुष्ठान किया और बारह वर्ष का अनुष्ठान करने से उनके हृदय में एक आत्म-प्रकाश, मानो देखो गायत्री की, अनुपम वेद की प्रतिभा उसमें निहित हो गयी। परमाणुवाद के ऊपर उनका आधिपत्य होने लगा। तो मेरे पुत्रो, जब आत्मवेत्ता, बेटा! मानो देखो, बनने के लिए तत्पर हुए तो उन्होंने कहा, ''चलो, अब मैं ब्रह्म-उपाधि को प्राप्त करूँगा।''

राजर्षि विश्वामित्र

मेरे प्यारे! देखो, राजा अपने राष्ट्र में आये। तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने अस्त्रों-शस्त्रों से युक्त हो करके और, मुनिवरो! देखो, 'अस्त्रं ब्रह्मे कर्णं ब्रह्म विश्वस्तम्', जब राजा अपने अश्व पर सवार हो करके, बेटा! अस्त्रो-शस्त्रों से युक्त थे तो वह भ्रमण

करते हुए मानो देखो उन दण्डक वनों में पहुँचे, जहाँ महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का आश्रम था। माता अरून्धती और वशिष्ठ दोनों विद्यमान हैं! परन्तु देखो उन्होंने कहा–"ब्रह्मे।" मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, "आईये, राज-ऋषि जी! पधारिये!" 'राजर्षि', जहाँ उच्चारण किया और उसके हृदय में एक वेदना जागरूक हो गई। उन्होंने कहा "हे ब्राह्मण! तुझे यह अभिमान है कि मैंने तपस्या नहीं की है, परन्तु देखो मैं तपश्चर हूँ, मैं अप्रतिम हूँ।" मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा–"बहुत प्रिय! मानो, हे वृणम्! हे राजर्षि! बहुत प्रियतम!" मेरे प्यारे! देखो, उन्हें क्रोधाग्नि जागरूक हुई। उन्होंने, बेटा! उनका एक जो विद्यालय में ब्रह्मचारी, उनका पुत्र अध्ययन करता था, उसे क्रोधाग्नि में, बेटा! उसे दण्डमयी परिणित कर दिया। उसे मृत्युदण्ड दे दिया।

क्रोधाग्नि में क्या करें?

मृत्युदण्ड क्यों दिया? क्योंकि यह क्रोधाग्नि जब जागरूक हो जाती है तो वह मानो देखो, 'अप्रतिम् ब्रह्मः' अपने को ही निगल जाती है। **वह यह कहे, उच्चारण करे कि 'क्या तूने प्राणी, प्रत्येक मानव को अपने वंशीभूत किया है? यह असम्भव है, यह आत्मा का हनन है।' जब अपनी अन्तरात्मा से यह प्रश्न किया जाता है, तो बेटा! आत्मवेत्ता यह निर्णय देता है कि मानव को ऐसे क्रियाकलापों में तत्पर रहना चाहिए, जहाँ उसकी आत्मा का उत्थान होता हो।** तो मेरे

प्यारे! वह इतना नष्ट करके वहाँ से पुनः अपने राष्ट्र में आये। और राष्ट्र में, बेटा! जब विचारने लगे, तो उन्हें देखो, बेटा! स्वपनवत में यह दृष्टिपात् आने लगा कि "तेरे तो जन्म-जन्मांतरों के पुण्य ही समाप्त हो गये हैं! तूने एक ऋषि के आश्रम में एक निधन किया है, अप्रेत किया है!" मेरे प्यारे! देखो, वे पुनः तपस्या करने के लिए तत्पर हो गये और भयंकर वनो में जा करके, बेटा! जहाँ देखो, महर्षि पणपेतु और उद्दालक ने तपस्या की थी, बेटा! वहाँ एक आश्रम था, उसमें जा करके पुनः बेटा! गायत्री-छन्दों का पठन-पाठन करते हुए तप करने लगे। मुझे, बेटा! ऐसा स्मरण हो रहा है, जैसे कि हम उन तपस्वियों के मध्य में विद्यमान हों। मेरे प्यारे! देखो, तपस्या में परिणित हो करके, मानो देखो, पुनः उन्होंने लगभग, बेटा! बारह वर्ष के दो अनुष्ठान किये।

अनुष्ठान

अनुष्ठान का अभिप्रायः यह है कि वह मानव अनुष्ठान करता हे जो यह चाहता है कि मेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। **बेटा! संसार में जितना भी मानव क्रियाकलाप करता है, अनुष्ठान करता है, याग करता है, ज्ञान का उपार्जन करता है, मेरे प्यारे! आचार्य बनता है, वह केवल इसलिए कि तेरी मृत्यु नहीं होनी चाहिए। तू मृत्युंजय बन।'** मेरे प्यारे! देखो, सृष्टि के प्रारम्भ से यह प्रक्रिया चली आ रही है। प्रत्येक मानव के हृदय में यह वेदना सदैव जागरूक रहती है कि मैं 'ब्रह्मणं ब्रहे कृतम्' मानो देखो, मैं मृत्यु को प्राप्त न हो जाऊं।

विश्वामित्र का अमृती-अनुष्ठान

मेरे प्यारे! ऋषि ने इस प्रकार जब अपना वर्णन किया, उस वर्णन शैली में महर्षि अपने में तपस्या करने लगे। बेटा! गायत्राणी छन्दों का पठन-पाठन करते हुए उन्होंने, बेटा! 'अमृत' को प्राप्त किया। इस प्रकार अमृतमय बनते हुए, अमृत की प्रतिभा में रत रह करके उन्होंने बारह-बारह वर्ष के दो अनुष्ठान किये। उन अनुष्ठानों में आत्मा का साक्षात्कार होने लगा। आत्म-ज्ञान में, बेटा! वह तल्लीन होने लगे।

देखो, बारह वर्ष के दो अनुष्ठान करने के पश्चात्, चौबीस वर्षों की तपस्या के पश्चात्, 'ब्रह्मणे लोकां वाचं ब्रह्मः वृत्ते', मेरे प्यारे! देखो, उसी में वह रत हो गये और वह, मुनिवरो! अपने राष्ट्र-गृह में पुनः आये। राष्ट्र-गृह में आते ही उनकी बुद्धि और उनका जो अन्तिम विचार था, उसका परिवर्तन होना स्वाभाविक था। मेरे प्यारे! देखो, अस्त्रों-शस्त्रों से पुनः युक्त हो करके अपने अश्व पर सवार हो करके, बेटा! वह मानो देखो 'भ्रमणं ब्रहे' भ्रमण करते हुए, मानो देखो उन्हीं दण्डक वनों में पहुँचे जहाँ महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज तपश्चर्या करते थे, विद्यालय में ब्रह्मचारियों को शिक्षा देते थे और देखो 'मानव-दर्शन' का, 'दर्शन' का साक्षात्कार करते थे। तो मेरे प्यारे! जैसे ही उनके द्वार पर पहुँचे तो मानो देखो ऋषि ने राजा को दृष्टिपात् करके कहा, "आईये, राजर्षि जी!" "मेरे प्यारे! पुनः क्रोध छा गया और वह अपने में

यह अनुभव करने लगे, 'यह तो ब्राह्मण अभिमानी है।' मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने निश्चय कर लिया, 'आज मैं इसकी वाटिका में निहित हो करके और अपने अस्त्रों-शस्त्रों से रात्रि-काल में इसे नष्ट करूँगा। मेरे प्यारे! देखो, यहाँ तक उसकी प्रवृत्तियों में परिवर्तन आ गया। **जहाँ तपस्या करता है मानव, वहाँ यदि उसमें नम्रता नहीं आती, तेजोमयी नहीं बनता है, परमात्मा की छत्रछाया में अपने को स्वीकार नहीं करता है तो जानो उसका तपश्चर अभी पूर्णरूपेण नहीं हुआ है।** तो मेरे प्यारे! मुझे वह स्मरण आता रहता है, जब ऋषि ने 'राजर्षि!' कहा तो, बेटा! वहीं वाटिका में शान्त हो गये।

वशिष्ठ-अरुन्धती की पूर्ण चन्द्र-प्रशंसा

वह दिवस, बेटा! पूर्णिमा का दिवस था। चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त थे। मेरे पुत्रो! माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि महाराज, दोनों एक स्थली पर, मानो दोनों आसन पर विद्यमान थे। परस्पर विचार हो रहा था। हमारे यहाँ कोई भी मानव जो अपने गृह को स्वर्ग बनाना चाहता है, अथवा पति-पत्नी, दोनों ज्ञान और विज्ञान की चर्चा करें, जिससे ज्ञान-विज्ञान में रत हो करके हमारी आत्म-चेतना का उत्थान होता रहे। आत्मा, देखो आत्मवत बन सके। तो मुनिवरो! देखो, जब वाटिका में विद्यमान हो गये तो माता अरून्धती बोली कि—"प्रभु! आज तो चन्द्रमा अपनी सम्पन्न कलाओं से युक्त है! यह कैसा अमृत बहा रहा है! यही तो पृथ्वी के गर्भ में अमृत को बहाने

वाला है! यही तो वनस्पतियों में मानो अमृत को बहाने वाला है! यह कैसा प्रिय चन्द्रमा है! जब हम माता के गर्भ में, भगवन्! ओत-प्रोत रहते थे तो यह चन्द्रमा ही तो हमें अमृत देता था! यह चन्द्रमा अमृत को बहा रहा है! यह बड़ी वृत्तियों में रत हो रहा है और सम्पन्न कलाओं से युक्त है, प्रभु!"

तपस्वी का अतुल्य प्रकाश

मेरे प्यारे! देखो, महर्षि बोले, "देवी! तुम्हें यह प्रतीत होना चाहिए कि यह चन्द्रमा का जो प्रकाश है, यह विश्वमित्र की तपस्या के आगे मानो एक अंकुर के संतुलित कहलाया जाता है। मेरे विचारों में मानो देखो, इसका प्रकाश तो बहुत ही सीमित है और विश्वमित्र की तपस्या का जो मानो वृत्त है, वह बड़ा प्रियतम है।" मेरे प्यारे! देखो, माता अरून्धती बोली, "प्रभु! आपका एक जेठा पुत्र समाप्त कर दिया उसने और वह पुनः आपको अशुद्ध वाक्य उच्चारण करता है। प्रभु! आप उसकी प्रशंसा कर रहे हैं?" उन्होंने कहा "हे देवी! यह प्रश्नीय विचार, एक मानव का स्वाभाविक कहलाया जाता हैं। जो जिसका, जिसमें जैसे गुण होते हैं, उन्हीं गुणों के आधार पर मानव उसकी प्रशंसा करता है और जहाँ उसके अवगुण होते हैं, वहाँ उसी प्रकार उसको मानो अवगुण उच्चारण करता है। तो मानो देखो, मेरा विचार यह बन गया है। देवी! वह ब्रह्मर्षि बनना चाहता है, परन्तु देखो, ब्रह्मवेत्ता के योग्य और सुयोग्य नहीं है। क्योंकि जब तक मानव में अभिमान है,

परमात्मा को अपनी संरक्षणता में जो स्वीकार नहीं कर रहा है। परमात्मा के ब्रह्माण्ड को दृष्टिपात् करके मानव में नम्रता आती है। जैसे चन्द्रमा अमृत दे रहा है। चन्द्रमा अभिमान नहीं कर रहा है। वह चन्द्रमा सूर्य से ऊर्ज्वा लेता है, समुद्रों से मिलान होता है, वह जलों को अपने में ग्रहण कर लेता है, उसी को अमृत बनाता है। और, अमृत बना करके वही सर्वत्र प्राणी में बिखेर देता है। रात्रि के अन्धकार को अपने गर्भ में धारण कर लेता है। रात्रि का स्वामी बना हुआ है। जितना भी वह तप रहा है, वह मानो सबको अमृत देता है, रस देता है। वनस्पतियों में रस देता है और वह रस दे करके ही मानो देखो वह चन्द्रमा कहलाता है। वह प्रकाश नहीं है, परन्तु रात्रि का पति है। रात्रि को अपने गर्भ में धारण कर रहा है।"

मेरे प्यारे! देखो, ऋषि के इन वाक्यों को पान करके माता अरून्धती बोली, "प्रभु! यह तो प्रियतम है। परन्तु देखो, एक मानव को यदि आप एक मानो चन्द्रमा की उपमा दे रहे हैं, यह मुझे प्रिय नहीं लग रहा है।" उन्होंने कहा, "देवी! हे दिव्यासे! तुम यह नहीं जानती हो, तुम्हें यह ज्ञान होना चाहिए। अज्ञान अज्ञान ही रहेगा और ज्ञान का प्रतिस्रोत एक मानो स्रोत बना रहेगा।" मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा, "धन्य है, प्रभु! परन्तु यह चन्द्रमा से ही मानो समुद्र अपने में जलों को धारण करता है। यही तो पूर्णिम है। एक कला, द्वितीय कला से मानो यह पन्द्रह दिवस के रहस्यों को अपने गर्भ में, अपनी मानो देखो कान्तियों

में धारण किये हुए है। हे दिव्या से! यह चन्द्रमा है, परन्तु देखो जो तपस्वी होता है, आत्मवत् होता है, आत्मज्ञानी होता है वह चन्द्रमा में ही, परमपिता परमात्मा का दिग्दर्शन करता है। उसमें मानो 'दर्शन' को अपने में ग्रहण करता है। तो मानो देखो वह चन्द्रमा का प्रकाश अथवा कोई प्रकाश उस तपस्वी के आगे नहीं रहा करता है।''

प्रभु-दर्शन

मेरे प्यारे! क्या विचित्र वाक्य हैं, जहाँ यह विचार हो रहे हैं! देखो वाटिका में शान्त वह मृत्यु-दण्ड देना चाहता है! उसके हृदय में मानो अश्रुपात होने लगे और यह विचारने लगा, ''अरे, यह तो महादेवत्व है, यह तो मानो 'प्रभु का दर्शन' करने वाला है। तूने प्रभु का दर्शन नहीं किया। 'प्रभु का दर्शन' क्या है? परमपिता परमात्मा का दर्शन क्या है? मानो जो इस संसार का एक-एक कण-कण का अध्ययन करने के पश्चात्, जो अपने 'मानव-दर्शन' का स्वतः अपने में अध्ययन करता है। अपने में यह स्वीकार करता है कि मैं परमात्मा के गर्भ में विद्यमान हूँ। परमात्मा का गर्भाशय कितना विशाल है! कितना व्यापक है! परन्तु देखो, 'वह' निरभिमानी है, अभिमान भी उसके द्वारा नहीं है, परन्तु मैं अभिमानी बना हुआ हूँ।''

राजर्षि से ब्रह्मर्षि

मेरे प्यारे! देखो, वाटिका में शान्ति में मुद्रित हो करके अपने

में चिन्तन कर रहा है। बेटा! देखो अश्रुपात जा रहे हैं और महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज के चरणों में ओत-प्रोत हो गये। और अश्रुपात जा रहे हैं। मेरे प्यारे! देखो, ऋषि कहता है, "आईये, ब्रह्मवेत्ता! विराजो!" मेरे प्यारे! ब्रह्मवेत्ता को एक आसन दे दिया और वह ब्रह्मवेत्ता बन गये, नम्रता आते ही! क्योंकि परमपिता परमात्मा निरभिमानी है, वह इसी प्रकार हमें भी निरभिमानी बना करके रखना चाहते हैं। परमात्मा की छत्रछाया में, परमात्मा के अनूठे राष्ट्र में हम विद्यमान हैं। **बेटा! एक-एक कण 'प्रभु का दर्शन' बना हुआ है। एक-एक कण-कण में, मानो एक-एक वेद का मन्त्र, एक-एक परमाणु का वर्णन करता है, तो ब्रह्माण्ड उसमें रहता है। अरे, प्रभु का विज्ञान कितना अनूठा है!** बेटा! आज जब मैं प्रभु के विज्ञान के ऊपर जाता हूँ तो उसने लोक-लोकांतिरों की माला बनाई है। यह माला बना करके ही मानो देखो मेरे प्रभु ने ब्रह्माण्ड को दर्शाया है, उसे ब्रह्मांडत्व कहते हैं।

ब्रह्मवादी का समाष्टिवाद

मेरे पुत्रो! देखो, आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ, मैं कोई व्याख्याता नहीं हूँ, केवल एक शब्दों का परिचय देने के लिए आया हूँ। और वह परिचय क्या है? **जो भी मानव आध्यात्मिकवाद में प्रवेश करना चाहता है, बेटा! आध्यात्मिक बनना चाहता है, आत्म-दर्शन करना चाहता है, तो बेटा! देखो व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश करना होगा और समष्टि में ही ब्रह्मवाद है।**

ब्रह्मवादी जितने है, सब समष्टि में रहे हैं। व्यष्टि को उन्होंने त्याग दिया है और समष्टि में प्रवेश कर गये हैं। बेटा! व्यष्टि कहते हैं, संकीर्णता को और समष्टि कहते हैं, व्यापकवाद को। ज्ञान के द्वारा जो विवेकी बनता है, वह समष्टि में चला जाता है। तो बेटा! देखो महर्षि विश्वामित्र अपने में व्यष्टि को त्याग करके समष्टि में चले गये।

प्रत्येक लोक-लोकान्तरों के विज्ञान को, उनके क्रियाकलाप को जानना, मस्तिष्क में स्थिर करना और प्रभु का उसमें दर्शन करना, बेटा! उसका नाम मानवीयत्व कहलाता है। वह मानव अपनी मानवीयता का दर्शन करता है और वह ब्रह्मवेत्ता बन करके। वह ब्रह्मवेत्ता क्यों बनता है? क्योंकि प्रभु का जितना भी ब्रह्म-ज्ञान है, उसको अपने में धारण करके उसका प्रसार करना अथवा उसको विशुद्ध रूप से देखो द्वितीयों को देना और समर्पित करने का नाम ही, मेरे पुत्रो! देखो, हमारे यहाँ, एक 'मानव-दर्शन' है। अपने में वह ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। बेटा! एक विज्ञानवेत्ता बनता है, जो एक-एक परमाणु के ऊपर अन्वेषण कर रहा है।

मुझे, बेटा! बहुत-सा काल स्मरण आता रहता है। आज मैं उस काल में जाना नहीं चाहता हूँ। वह महान् विश्वामित्र, जिन्होंने वशिष्ठ की आज्ञा पा करके ही, बेटा! देखो, दण्डक वनों में एक धनुर्याग का आयोजन किया था, उस याग की चर्चा तो मैंने तुम्हें कई कालों में प्रगट की है, मानो कैसे भव्य याग होते रहते थे। हमारे यहाँ, देखो भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन प्रायः

हमारे वैदिक-साहित्य में आता रहा है। मानो देखो प्रेरणा को प्राप्त करता हुआ, प्रेरित हो करके अपने में बेटा! देखो महर्षि विश्वामित्र एक ब्रह्मवेत्ता बने। 'प्रेरणा' कहाँ से प्राप्त हुई? एक गऊ से प्रेरणा उसे प्राप्त हुई। कामधेनु गऊ, जो वशिष्ठ-आश्रम में निवास करती थी। मानो देखो उसी से प्रेरणा को पा करके, बेटा! वह राजा से तपस्वी बने। तपस्वी से ब्रह्मवेत्ता बने और मानो तपस्वी से ही ब्रह्मवेत्ता बन करके, बेटा! उस व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश कर गये।

अध्वर्यु का समष्टिवाद

मेरे प्यारे! देखो समष्टि और व्यष्टि में जाना ही देखो वह 'ध्रुवम् ब्रह्मः' में उद्गीत गा रहा था कि ध्रुवा, 'अध्वर्यु ब्रह्मणे' देखो अध्वर्यु कहलाता है। यह आत्मा ही तो, बेटा! अध्वर्यु है! आत्मवत बनना ही तो अध्वर्यु बनना है। हिंसक प्राणियों को अहिंसा में दृष्टिपात् करना ही तो अध्वर्यु बनना है। मेरे प्यारे! देखो मैंने कई काल में ये चर्चाएं की हैं। बेटा! महाराज अश्वपति के यहाँ, कई कालों में वृष्टि यागों का आयोजन होता रहा, परन्तु आज मैं, बेटा! तुम्हें यह उच्चारण करने के लिए जा रहा हूँ कि प्रत्येक मानव को यहाँ तपस्वी बनना है। और वह तपस्वी जब बन जाता है तो जीवन एक सार्थक बन जाता है, महान पवित्र बन जाता है। राजा राष्ट्र को त्याग करके, मानो वह तपस्या में परिणित हो जाता है और ब्रह्मवेत्ता बन जाता है। वह राष्ट्र और देखो वह राष्ट्र-वृत्तियों में देखो

सहस्रों राजाओं के रक्षार्थ, बेटा! देखो वह महान् बना करता है।

आओ, मेरे प्यारे! आज का विचार हम क्या दे रहे थे? कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए, देव की महिमा का गुण-गान गाते हुए हम, बेटा! इस संसार-सागर से पार हो जाएँ। आजका विचार क्या? जितना भी, बेटा! मानो यह जड़-जगत् और चेतनामयी जगत्, जो दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में, वह प्रभु विद्यमान रहते हैं। मानो यह संसार जब यह स्वीकार कर लेता है कि 'मैं परमात्मा के गर्भ-स्थल में निहित हूँ' तो कल्याण हो जाता है। बेटा! उसका गर्भाशय इतना विशाल है, इतना महान् है! माता अपने में अभिमान कब करती है कि 'मेरे गर्भ से मानो पुरुषों का जन्म होता है, पुत्रियों का जन्म होता है?' हे माता! तू तो निमित मात्र है। जैसे मानव अपने क्रियाकलापों में निमित मात्र होता है। परन्तु यह एक संकल्प मात्र है, तुम्हारा संकल्प चल रहा है। जैसे सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानो देखो सूर्य उदय होता है; सूर्य अस्त हो जाता है। मानो देखो वह परमपिता परमात्मा का सृष्टि के कर्म में एक संकल्प बना हुआ है। उसी संकल्प के आधार पर, मानो देखो यह संसार चल रहा है। समय पर सूर्य उदय होता है; समय पर सूर्य अस्त होता है। लोक-लोकान्तर अपनी प्रतिभा देना प्रारम्भ कर देते हैं। मेरे प्यारे! देखो इसी प्रकार माता के गर्भस्थल में, रचना करने वाली माता नहीं हुआ करती है, वह प्रभु ही रचना कर रहा है। बेटा! ऐसी विचित्र रचना कर रहा है कि माता को

प्रतीत नहीं होता कि कौन रचनाकार है! कौन विश्वकर्मा बन रहा है, और विश्वकर्मा बन करके मानो विश्वसनीयता दे रहा है! मेरे प्यारे! देखो माता तो अपने में एक निमित मात्र कहलाती है, परन्तु रचनाकार तो प्रभु है। मानो सूर्य की रचना सृष्टि के प्रारम्भ में जब हो गयी है उसके पश्चात् भी बेटा! देखो सहस्रों पृथ्वियों को, वह तीस लाख पृथ्वियों को अपने में धारण करने वाला है। कैसा विचित्र, उस मेरे प्यारे प्रभु का ज्ञान और विज्ञान है! इसीलिए हमें प्रभु के ज्ञान और विज्ञान को जानना, अपने में विवेक उत्पन्न करना चाहिये। मेरे प्यारे! देखो इसी से हमारा जीवन सार्थक बनता है। आज का विचार अब यह सम्पन्न होने जा रहा है।

आज के विचारों का अभिप्रायः यह है कि हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुण-गान गाते हुए हम, बेटा! इस संसार-सागर से पार हो जायें। हमारे आने का उद्देश्य, हमारे इस संसार में आने का उद्देश्य केवल यही है कि हम परमपिता परमात्मा को जानते हुए अपने 'मानव-दर्शन' को जानें और मानो देखो वही हमारा जीवन सार्थक बन जाता है। यह है, बेटा! आज का वाक्य। अब मुझे समय मिलेगा, मैं तुम्हें शेष चर्चाएं कल प्रगट करूँगा। वशिष्ठ और विश्वामित्र की दोनों की चर्चाएं, मैं कल प्रगट करूंगा। आज का विचार अब समाप्त होने जा रहा है। अब वेदों का पठन-पाठन।

७ मार्च १९८८
गंगा नगर, राजस्थान

याग-चयन और संगतिकरण

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस मेरे देव परमपिता परमात्मा की महती का वर्णन किया जाता है, क्योंकि जितना भी यह जड़-जगत् अथवा चैतन्य-जगत् हमें दृष्टिपात् आ रहा है, उस सर्वत्र ब्रह्माण्ड के मूल में वह मेरा देव दृष्टिपात् आ रहा है।

हमारे यहाँ, वैदिक साहित्य में, मानो यागों का प्रायः वर्णन आता रहता है, क्योंकि सृष्टि के प्रारम्भ में हमारे ऋषि-मुनियों ने मानो एक याग की रचना की और याग में उन्होंने अपने में ब्रह्माण्ड और पिण्ड की कल्पना की है, मानो उसका संगतिकरण किया है। **कोई भी संसार का क्रियाकलाप है, यदि 'मंगलं ब्रीहि' मानो उसमें संगतिकरण नहीं हो पाता तो वह कार्य सफलता को प्राप्त नहीं होता। तो इसलिए हमारे ऋषि-मुनियों ने यागों का बड़ा चयन किया।**

अथर्वा-आश्रम में महर्षि अंगिरस का याग-चयन

हमारे यहाँ, ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा हुए हैं। तो ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने कुछ ऋषि-मुनियों को एकत्रित किया और उन्होंने कहा

कि "यागों का वैदिक साहित्य में, मन्त्रार्थ में बड़ा वर्णन आया है। हमारे यहाँ जैसे 'अग्निष्टोम याग' का वर्णन आया। 'अश्वमेध याग' का भी वर्णन आता रहता है।"

ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा जी ने यह कहा ऋषियों से कि "महाराज! यह जो याग है यह क्या है? मैंने वेदों का अध्ययन किया है, आचार्यों के चरणों में विद्यमान हो करके। इसका निर्णय आत्मिक रूप से करता रहता हूँ। परन्तु मेरे विचार में यह नहीं आ रहा है कि इस याग का मानव के जीवन से भी तो समन्वय होना चाहिए? उसी के पश्चात् वह संगतिकरण कहलाता है।"

याग का मानव-जीवन से समन्वय

मेरे पुत्रो! अथर्वा जी के यह वाक्य उच्चारण करते ही महर्षि अंगिरस ने कहा कि "यह जो याग है, यह मानव-जीवन ही तो है। मानो इसका समन्वय क्या कर सकोगे? **मानो देखो सुगन्ध आती है, उसका घ्राण से समन्वय रहता है; मानो उसमें तेज होता है, मानव के जीवन से उसका समन्वय होता है; मानो उसमें, अग्नि के मुख में, प्रदान किया गया कोई भी पदार्थ हो, उसका वह भेदन कर देती है।"**

प्राणों से याग-समन्वय

"मानव के शरीर में, हमारे यहाँ, जब हम प्रारम्भ में भोज करने लगते हैं तो 'पंचां ब्रह्म वाचो' जैसे 'अग्निः वर्चस स्वाहा',

कहते हैं इसी प्रकार प्राणाय, व्यानाय, अपानाय, समानाय, उदानाय, मानो उन प्राणों के सम्बन्ध में ये पाँच आहुति दी जाती हैं प्रायः। **तो यह जब हम उसको अपने में पान करते हैं, तो प्राण का शोधन होता है और प्राण का सम्बन्ध याग से होता है, क्योंकि अग्नि बिना प्राण के अपने में सूत्रित नहीं होती। अग्नि अपने में, वायु भी वही है, प्राण के द्वारा सूत्रित होती रहती है। और वही प्राण, बेटा! हमारे मानव शरीरों में क्रियाकलाप कर रहा है। तो विचार क्या? मानो देखो एक-एक जो गतियाँ हैं, प्राण की प्रतिष्ठा कहलाती हैं। इस प्राण को यदि हम भौतिक याग से विच्छेद करते हैं तो हमारा संगतिकरण ऊँचा नहीं बनता।''**

शौनक ऋषि की प्राण-साधना और तरंग-अध्ययन

हमारे ऋषि-मुनि जब याग करते हैं, तो जिस स्थली पर वे साधना के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं तो वहाँ के वायुमण्डल को पवित्र बनाया जाता है। देखो, उन्होंने, अंगिरस ऋषि ने कहा कि ''जब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करता था, तो एक समय उनके, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव के हृदय में, उनका नाम था शौनक ऋषि महाराज था, उनके हृदय में यह आशंका हुई कि 'मैं तप करने के लिए चलूँ।' वह जब भयंकर वन में तप करने के लिए पहुँचे तो वहाँ अपनी साधना में वह परिणित हो गये। जब वह साधना करने लगे तो उनके मस्तिष्क में प्राण की जो

तरंगें, मानो जो वायुमण्डल में तर्यगत हो रही थीं, तो वे तरंगें अशुद्ध उन्हें प्रतीत हुईं, मानो जब अशुद्ध प्रतीत हुईं कि उसमें चित्र सुन्दर नहीं आ रहे थे।''

गो-घृत-याग से अशुद्ध तरंगों का शोधन

''जब मस्तिष्क में उसका अध्ययन कर रहे थे तो उसमें तरंगें प्रिय नहीं आ रही थीं। उन तरंगों के प्रिय न आने पर उन्होंने विचारा कि 'मुझे क्या करना चाहिए?' तो भयंकर वनों से मानो देखो साकल्य एकत्रित करने लगे। और अब उन्होंने विचारा कि इस मानो शोधन के लिए तो मुझे गो-घृत चाहिए। अब वह एक समय भ्रमण करते हुए मानो महाराजा इन्द्र के द्वारा पहुंचे और महाराजा इन्द्र से यह प्रार्थना की कि 'महाराज! मैं मानो साधना के लिए याग करने जा रहा हूँ, मुझे गऊ चाहिए।' राजा ने, बेटा! वह गऊ उन्हें प्रदान कर दी। उस गऊ को ले करके वह भयंकर वनों में, मानो उसी स्थली पर आ गये और आ जाने के पश्चात् उन्होंने याग किया। वायुमण्डल का शोधन होने लगा।''

याग में हृदय का संगतिकरण

क्योंकि याग इतना सूक्ष्मतम रहस्यमय संगतिकरण माना गया है कि **मानो यज्ञमान का हृदय उस याग में रहना चाहिए। यज्ञमान की जो मनोनीत भावना होती है वह उस**

याग में परिणित होनी चाहिए। उसे यह स्वीकार करना चाहिए कि 'मेरा जो हृदय है, वह भी याग है और यह जो भौतिक याग हो रहा है, यह भी मेरा ह्रदय है।' तो मानो जब इस भावना से, अपने हृदय से, जब यज्ञमान याग करता है, तो वायुमण्डल पवित्र हो जाता है। दूषित तरंगें समाप्त हो जाती हैं।

ऋषि ने जब इस प्रकार का याग प्रारम्भ किया तो मानो वह नित्यप्रति याग करते और उसके पश्चात् वह साधना करते। तो साधना करते-करते मानो वह अपने प्राणायाम में, अपनी साधना में सफलता के मार्ग के लिए उन्होंने गमन किया। जब गमन करने लगे तो एक समय उनके आश्रम में महर्षि कौतुक ऋषि महाराज आ गये। तो कौतुक ऋषि महाराज ने उस याग में एक साकल्य प्रदान किया।

याग में तीन समिधाएं

क्योंकि हमारे यहाँ परम्परा से यह माना गया है, मानो तीन समिधा ले करके याग के समीप जाते हैं। तीन समिधा—'ज्ञान, कर्म और उपासना' का वह प्रतीक माने गये हैं; 'आत्मा-परमात्मा-प्रकृति' का वह प्रतीक माने गये हैं; 'भूः, भुवः, स्वः' इन तीन मात्राओं की प्रतीका में वह रत रहते हैं।

महर्षि शौनक के याग में कौतुक ऋषि की अशुद्ध-आहुति

इस भाव से जब वह कौतुक ऋषि महाराज ने मानो देखो उस याग में तीन समिधा प्रदान कीं, तो उनके हृदय की तरंगें पवित्र नहीं थीं, वह जब मानो देखो अग्नि के मुख में वह समिधा और साकल्य प्रदीप्त हुआ तो ऋषि महाराज को जो साधक बने हुए थे, उनके अनुभव में, बेटा! देखो वे जो तरंगें समिधा में, वह अग्नि की धाराओं में, प्राण की प्रतिभा में जब रत हुईं तो उन्होंने कहा "कौतुक ऋषि! तुम्हारा हृदय पवित्र नहीं है। इसलिए तुमने मेरे याग को (विकृत कर दिया है), आध्यात्मिकवाद से मैं संगतिकरण कर रहा था, उसका जो समन्वय था, उसका विच्छेद होने लगा है।" तो मेरे प्यारे! जब कौतुक ऋषि से यह वाक्य कहा तो उन्होंने ऋषि के चरणों को स्पर्श किया, "हे भगवन्! वास्तव में मैं तो हृदय को शोधन करने के लिए याग में पधारा।" उन्होंने कहा, "भाई! तुम मेरे से पूर्व मानो इसकी कुछ विचारधारा कर लेते, तो बहुत प्रिय होता।"

तो विचार-विनिमय क्या? मुनिवरो! देखो जब ऋषि ने यह वाक्य सभा में वर्णन किया कि "मेरे पूज्यपाद गुरुदेव याग करते थे। याग से वायुमण्डल का शोधन पवित्रम हो गया। मानो देखो साधना का क्षेत्र बन गया।"

अग्निमान यजमान का शरीर-याग-संगतिकरण

देखो इस याग का अभिप्रायः क्या है? 'यागां रूद्रो भागां

बृहि वृत्ताम्', तो इसलिए प्रत्येक मानव को यह विचारना चाहिए कि याग मेरा हृदय है और हृदय ही याग है। क्योंकि यही तो मानव को वायु की वृत्तियों में रमण करा देता है। अग्न्याधान करने वाला, वह अग्नि के स्वरूप में परिणित हो जाता है।

बेटा! आज मैं विशेष चर्चाएं तो देने नहीं आया हूँ, क्योंकि मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्दों की विवेचना भी करेंगे। आज का हमारा वाक्य तो यह कह रहा है कि मानो देखो हमारे यहाँ परम्परागतों से ऋषि-मुनियों ने, बेटा! याग की एक रचना की है। एक मानो अपने शरीर का संगतिकरण किया है। और संगतिकरण का अभिप्रायः यह कि एक-दूसरे से समन्वय होना चाहिए, मिलान होना चाहिए।

याग-चलन-सनातनता

इसी प्रकार जब ब्रह्मा के पुत्र अथर्वा ने अंगिरस मुनि महाराज से चर्चाएं कीं तो ऋषि-मुनियों ने, बेटा! यह स्वीकार किया और बुद्धिमानों का यह जो क्रियाकलाप है, (याग का), यह परम्परा से चला आ रहा है। सृष्टि के प्रारम्भ से वर्तमान के काल तक और सृष्टि के अन्तिम चरण क्या अन्तिम तक, बेटा! यह समाप्त नहीं होगा। जैसे परमपिता परमात्मा ने मानो सूर्य, चन्द्रमा, तारागण आदि का निर्माण किया और यह सृष्टि इसी प्रकार, बेटा! मानो देखो बारम्बार प्रलय हो जाती है, प्रलय के

पश्चात पुनः उसी क्रम से सृष्टि का निर्माण होता है। वही मानो देखो समुद्र, सूर्य इत्यादि का उसी प्रकार निर्माण होता है, इसी प्रकार मानो जैसे वेद है, प्रकाश है, ज्ञान का पुंज है, तो मानो उसी के साथ-साथ इस याग की रचना भी (होती है) क्योंकि परमपिता परमात्मा ने सृष्टि रूपी याग का ही तो निर्माण किया है।

माता का याग

मानव के शरीर में, जब माता मानो देखो अपने हृदय से बालक को जन्म देती है, तो यह जानती है कि मेरा हृदय, मेरे हृदय में पनप रहा है, जब यही भावना रहती है कि 'मैं याग कर रही हूँ, यह मेरा याग हो रहा है।' हमारे यहाँ, मानो 'सन्तानां पुत्रा भविते' सन्तान, पुत्र को उत्पन्न करना भी, बेटा! एक याग की संज्ञा प्रदान की है। याग क्यों है वह? क्योंकि देखो माता के हृदय में एक त्याग-भावना की प्रवृत्ति होती है और जब माता त्याग-भावना से सन्तान को जन्म देती है, मानो देखो उसे सुयोग्य बना देती है, तो वह प्रतीत नहीं होता कि वह राष्ट्र की सम्पदा बन जाये या ब्रह्मवेत्ता बन जाये, तो माता की सम्पदा नहीं रहती। वह सम्पदा संसार की सम्पदा बन जाती है। **एक माता का पुत्र यदि ब्रह्मवेत्ता बन जाता है, तो वह संसार की सम्पदा बन गई है। एक योगी, एक माता का पुत्र, यदि योगी बन जाये, प्राण के मिलान को जानने लगे, तो मानो देखो विश्व की**

सम्पदा बन गई है। तो माता जब अपने में त्यागपूर्वक सन्तान को अपने में जन्म देना अथवा वह याग करती है

माता मदालसा का 'गर्भ-याग'

'यागां हिरण्यं ब्रह्मः वाचः' बेटा! मैंने तुम्हें बहुत पुरातन काल में माता मदालसा का वर्णन किया था। हमारे यहाँ, देखो एक कौड़क वृत्ति नामक ब्रह्मचारी थे, उनकी माता का भी वर्णन किया। **मेरे प्यारे! माता के गर्भ में जब बाल्य होता है, तो वह देवपूजा ही तो करती है। ब्रह्म का चिन्तन करती है। सृष्टि को अपने नेत्रों से, जहाँ तक दृष्टिपात् आती है, दृष्टिपात् करती रहती है।**

बेटा! माता मदालसा ने जब यह विचारा कि 'मेरा पुत्र ब्रह्मवेत्ता हो। मेरा पुत्र राजा नहीं होना चाहिए।' तो उस समय माता मदालसा प्रातःकालीन्, ऊषा काल में वह मानो सृष्टि की आभा को निहारती रहती थी और नेत्रों से दृष्टिपात् करती। कहाँ तक नेत्रों की ज्योति जाती है, मानो देखो ज्योति को दृष्टिपात् करते-करते अन्त में वह अर्न्तमुखी हो करके अपने हृदय में उसी आकार को दृष्टिपात् करती। माता का जो प्रिय बालक गर्भस्थल में होता है, मानो देखो उसके हृदय में भी वही भाव, वही तरंगें मानो देखो, उसमें प्रवेश कर रही हैं। यह प्रभु का विज्ञान, बेटा! कितना अनन्तमयी है! प्रभु का विज्ञान कितना महान है!

माता का लोरी-पान में याग

मानो देखो माता मदालसा जब यही करती रहती तो बाल्य जब लोरियों में होता तो उसे निहारती रहती, 'देखो संसार को दृष्टिपात् करो। यह सूर्य को दृष्टिपात् करो। यह सूर्य कितना त्यागमय है, कितना तपस्यामय है। यह प्रकाश देता ही रहता है! यह इसका प्रकाश थकित नहीं हो रहा है।' तो बालक उसको निहारता है, माता निहारती है। लोरियों में जो दुग्ध बालक के लिये प्रवेश कर रहा है, वे तरंगें उसमें प्रवेश कर रही हैं। तो कितना प्रिय संगतिकरण हो रहा है! बेटा! विचारने से प्रतीत होता है कि कितना प्रिय संगतिकरण है! यह प्रभु ने कैसा संगतिकरण निर्माणित किया है। विचार क्या? बेटा! अब मैं अपने विचारों को विराम दे रहा हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे–

पूज्य महानन्द जी का प्रवचन–'ओ३म् दधिमा सर्वं भद्राः मां गताः यज्ञं भविते मनः'

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि मण्डल! मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी यागों का चयन करा रहे थे और हम अपने में यह अनुभव कर रहे थे जैसे हम यज्ञशाला में विद्यमान हों। ऐसा हम अपने में अनुभव कर रहे थे, जैसे हम अथर्वा के आश्रम में विद्यमान हों। ऐसा अनुभव कर रहे थे, जैसे साधक अपनी साधना में रत हो जाता है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव तो सदैव ब्रह्माण्ड की नाना वार्त्ताओं में रत हो जाते हैं। परन्तु, जहाँ यह हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहाँ भी मानो देखो यज्ञशाला ही प्रतीत हो रही है। 'यज्ञं भवितं मयो वर्णम्' मानो मेरा सदैव यह भाव रहता है। जिस स्थली पर यह आकाशवाणी जा रही है, वहाँ एक याग का चयन हुआ। मानो मेरा हृदय सदैव यज्ञमान के साथ रहता है। हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! सौभाग्य का अभिप्रायः यह है कि गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, द्रव्य की पूजा होती रहे। क्योंकि ऋषि-मुनियों का जो रचाया हुआ कर्म है, क्रियाकलाप है, जो पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी प्रकट करा रहे थे, मानो वह इसी प्रकार चलता रहे। मेरे हृदय की यही वेदना रहती है!

याग में बलि का अभिप्रायः

हमारे यहाँ यागों का चलन मध्य काल में मानो अशुद्धियों के क्षेत्र में चला गया। ब्राह्मण समाज ने दो वेदियों को बनाना प्रारम्भ किया। एक वेदी पर देवताओं का पूजन और द्वितीय वेदी पर जब अग्न्याधाने किया जाता तो स्वार्थ में आ कर उसमें मांसों की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। मानो देखो गो-मेध में गऊ, अजामेध में मानो अजा, बकरी और अश्वमेध में देखो घोड़े की आहुति देना प्रारम्भ किया। मानव ने जाना नहीं। वाजपेयी याग में गऊ के बछड़े की बलि देना प्रारम्भ किया। परन्तु देखो इसी

प्रकार अग्निष्टोम याग में मानो देखो और पशुओं की बलियाँ प्रदान करने लगे। तो बलि के अभिप्रायः को मानव ने जाना नहीं, मध्यकाल में। **प्रायः हमारे यहाँ बलि का अभिप्रायः यह है—पुरुषार्थ करना। प्रत्येक मानव जब पुरुषार्थ करता है तो वह बलि का प्रतीक कहलाता है। उसको नष्ट करना नहीं है।**

राजा का धर्म

बलि का अर्थ केवल यह है कि वह पुरुषार्थी बने। इसीप्रकार 'अश्वमेध याग' में, 'अश्व' नाम राजा का है, उसको पुरुषार्थी होना चाहिए। जब राजा पुरुषार्थी नहीं होता, राजा के गृह में देव-पूजा नहीं होती, तो मानो देखो वह राजा आलसी और प्रमादी बन जाता है और राजा के आलस्य और प्रमाद के आने पर मानो उसका आत्मा हननता को प्राप्त हो जाता है। दूसरों के वैभव को मानो अपने में धारण करने लगता है। दूसरी पुत्रियों के श्रृंगार को हनन करने लगता है। तो इस प्रकार का जो राजा होता है, वह कोई राजा नहीं होता।

अश्वमेध-यागी राजा

राजा वह होता है, जो 'अश्वमेध-याग' करता है। **'अश्व' कहते हैं, राजा को। जब राजा के राष्ट्र में पाण्डित्व ऊँचे हों और मानो देखो, वह समय-समय पर विश्व को विजय**

करके विश्व को अपने अनूकुल बना करके याग करता रहे, देव-पूजा करता रहे। तो वह राजा अश्वमेध-यागी होता है।

जब वह अश्वमेध याग करता है, तो मानो उसके राष्ट्र में किसी प्रकार की हानि नहीं होती। उस राजा के राष्ट्र में प्रजा सम्पन्न होती है और प्रजा में राजा के प्रति मानो श्रद्धा होती है और राजा के राष्ट्र में हिंसा नहीं होती। **और जो अश्वमेध याग राजा करता है, उसके गृह में देव-पूजा होती है तो उस राजा के राष्ट्र में रूढ़िवाद नहीं होता और जब रूढ़िवाद नहीं होता तो उसके राष्ट्र में मानो एक वैदिकता, एक प्रतिभा, एक मानवीय-धर्म पनपता रहता है। और, वह जो मानवीय दर्शन है, मानवीय जो धर्म है, वही मानो देखो राजा के राष्ट्र को ऊँचा बनाता है।**

परम्परा का राष्ट्रवाद

इस प्रकार मेरा तो सदैव यह मन्तव्य रहता है कि राजा ऊर्ध्वा में रहने चाहिए। राजा रावण ने जब अश्वमेघ याग किया था, तो राजा के राष्ट्र में प्रसन्नता थी। जब महाराजा अश्वपति के यहाँ अश्वमेध याग होता, तब सब प्रजा राजा को मानो देखो अपनी कृतियों में पालन करती रही है। 'असुतो ब्रह्मः' राजा को ब्रह्म ज्ञान होना चाहिए कि 'परमात्मा सदैव तेरे साथ है।' जब राजा अपनी रक्षार्थी के लिए, रक्षा करने के लिंए मानव का

आश्रय लेता है तो राजा ब्रह्मज्ञानी नहीं होता। वह राजा मानो देखो राष्ट्रीयत्व में महान् नहीं बनता।

परम्परागतों से, बहुत पुरातन काल में जब राजा दशरथ मानो गमन करते थे, तो केवल स्वयं और पत्नियाँ मानो देखो अपने में उनके अस्त्रों-शस्त्रों से मानो वह स्थिर रहतीं और एक-दूसरे की एक-दूसरे में रक्षा होनी चाहिए। परन्तु देखो इसी प्रकार राजा अश्वपति रात्रि समय अपने राष्ट्र में भ्रमण करते थे और वह दृष्टिपात् करते थे कि प्रजा में कोई दुःखित तो नहीं है। तो इसी प्रकार वह भमण करते हुए अपने में मानो शान्त रहते थे।

आधुनिक राष्ट्रीय प्रणाली

आधुनिक काल का जो राजा है, आधुनिक काल की जो राष्ट्रीय परम्परा है, प्रणाली है, वह बड़ी विचित्र बन गई है। वह विचित्र क्यों बन गई है? क्योंकि निस्वार्थ न रह करके स्वार्थवाद आ गया। जब राष्ट्र अपनी प्रजा के लिए नहीं विचारेगा, मानव के लिए चिन्तन नहीं करेगा, रूढ़ियों के लिए रूढ़ियों के क्रियाकलापों को दमन कराता रहेगा, उनकी त्रुटियों को दमन कराता रहेगा, तो एक समय वह त्रुटियाँ मानो ऊर्ध्वा में बन करके राष्ट्र को निगल जायेंगी। वे उस राजा को निगल जाती हैं, प्रजा तो ज्यों की त्यों रहती है, परन्तु उसको निगल जाती हैं।

धर्म की परिभाषा

इसी प्रकार मैं बहुत समय से यह कहता चला आता हूँ कि राजा के राष्ट्र में रूढ़ि नहीं होनी चाहिए, क्योंकि **मानव-दर्शन तो एक है, धर्म एकोकी वचन है। धर्म में मानो देखो नाना रूप नहीं हैं, उसमें सजातीयता होती है।** धर्म तो केवल एक ही आभा कहलाती है।

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में यह प्रकट कराया, मैंने भी, अपने वाक्यों में, हमने भी कहा है कि **नेत्रों का धर्म दृष्टिपात् करना है। सुदृष्टिपात् करोगे वह धर्म है, कुदृष्टिपात् करना, मानो वह अशोभनीय बन जाता है।** तो इसी प्रकार, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने कई काल में और मैंने भी अपने पूज्यपाद गुरुदेव को परिचय कराया, इसमें विज्ञान का दोष नहीं होता, इसमें दर्शन का दोषारोपण नहीं होता, यह तो राष्ट्र की त्रुटियाँ होती हैं।

कई काल में हमने कहा है कि राजा को चाहिए जब रूढ़ि हो जाये तो रूढ़ियों के जो प्रवर्तक हैं, उनका एक सम्मेलन हो और उनका परस्पर शास्त्रार्थ हो और राजा ब्रह्मवेत्ता हो या राष्ट्र का पुरोहित ब्रह्मवेत्ता, उनके मध्य में विद्यमान हो और जो मानो ज्ञान और विज्ञान पर और जो भी कोई दर्शनों पर, दर्शन पर जो भी स्थिर हो जाये मानो उसी को अपनाना चाहिए। वही राजा के राष्ट्र में एक धर्म रहना चाहिए। मानो देखो, वह मानवता से

ऊँचा हो और यदि अज्ञानता की रूढ़ियाँ बनती रहती हैं तो वह राजा के राष्ट्र को निगलती चली जाती हैं। एक समय वह होता है कि रक्तभरी क्रान्तियाँ होती हैं।

मानो देखो मेरा विचार केवल क्या है कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी यागों का वर्णन कर रहे थे। मैं उच्चारण कर रहा था कि हमारे यहाँ मानो देखो याग का जो क्रियाकलाप रहा है, वह केवल मैंने बलि के अर्थों का वर्णन किया। बलि के अर्थों को जाना नहीं समाज ने। बलि का अर्थ है, मानव को पुरुषार्थ करना चाहिए और उसकी बलवती होनी चाहिए। **परन्तु अपनी रसना के आनन्द में आ करके स्वार्थी, अज्ञानी ब्रह्माणों ने मानो बलि देना प्रारम्भ किया। आज भी मानो देखो पर्वतीय क्षेत्रों में प्रायः कहीं-कहीं ऐसे याग होते हैं, मानो देखो उन्हें नष्ट कर देना चाहिए। ऐसे ब्रह्माणों को नष्ट कर देना चाहिए, मानो जो रूढ़ि और यागों में इस प्रकार के वायुमण्डल को अशुद्ध कर सकें।**

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी यागों के सम्बन्ध में कहा था कि याग तो हृदय है मानव का और हृदय चाहता है कि मोक्ष में जाऊँ तो याग यदि विचारों से हो जैसे पूज्यपाद गुरुदेव कौतुक ऋषि इत्यादि की चर्चाएं कर रहे थे। मानो देखो उनके कैसे ऊर्ध्वा में विचार रहे हैं। कि जो वायुमण्डल को उससे याग से पवित्र बना रहे हैं साकल्य घृत के द्वारा और अपने में साधना कर रहे

हैं। वायुमण्डल की अशुद्धता को, मानो देखो अशुद्ध तरंगों को शुद्धता में परिवर्तित कर रहे हैं।

आधुनिक काल का विज्ञान भी यह जानकर कुछ मानो संघर्ष कर रहा है। आधुनिक काल का विज्ञान भी इसमें लग रहा है कि हमारा वायुमण्डल कैसे पवित्र हो? क्योंकि वायुमण्डल में, वैज्ञानिक का यह कथन है कि कुछ समय के पश्चात् मानो वह काल आ रहा है, जब वायुमण्डल इतना दूषित हो रहा है कि वायुमण्डल में श्वास लेने में भी आपात्कालीन प्राणी बन सकता है। आधुनिक काल के वैज्ञानिक का यह मानो तत्पर एक विचार बन गया है और वह इस विचार में लगे हुए हैं कि क्या करना चाहिए?

कुछ वैज्ञानिक यह विचार रहे हैं कि वह 'वाग्रं गोघृतानि वस्तम्' **मानो गो-घृत में यह सत्ता है कि उसे अग्नि में प्रवेश करने से, अग्नि में दाह करने से, अग्नि के मुख में देने से वायुमण्डल पवित्र बन सकता है। ऐसा कुछ विचार वैज्ञानिकों का बन रहा है।** परन्तु देखो यह कर्मकाण्ड और क्रियाकलाप ऊँचे-ऊँचे वैदिक ब्राह्मणों से तुम प्राप्त करो। हे वैज्ञानिको! आओ, हमारे यहाँ ऋषि-मुनियों ने सृष्टि के प्रारम्भ में जो मानवीय क्रियाकलाप बनाया था, वह वायुमण्डल को शोधन करने का था। आज, मानो देखो उसमें अपवाद आ गया है। अपवाद के आने से मानो देखो उसका केवल एक अपवाद ही, देखो एक अशोभनीय कृतियाँ बन गईं। मानो देखो जहाँ मानव का अंग है

वहाँ याग है, जहाँ मानव का सर्वत्र क्रियाकलाप ही याग है, तो वहाँ मानव ने देखो इसको अशुद्धियों में परिणित किया। यहाँ महाभारत काल के पश्चात् बहुत सा अज्ञान आया।

'वाजपेयी-याग'

परन्तु आज मैं विशेषता देने नहीं आया हूँ। विचार क्या? केवल बलि का अभिप्रायः यह है कि हम मानो देखो याग करें। जैसे 'वाजपेयी याग' हुआ, 'वाजपेयी याग' का अभिप्रायः यह है कि वृष्टि होती है उस याग से। जब वृष्टि हुई और वृष्टि होते ही बैल की बलि का वर्णन आता है। वहाँ गऊ के बछड़े की बलि का वर्णन क्या है? क्या जब वृष्टि हुई तो पृथ्वी मानो देखो जल-मग्न हुई, जल उसका शुष्क हुआ तो उस समय गऊ के बछड़े को मानो देखो, उससे पृथ्वी की चमड़ी को उधेड़ कर के उसमें 'ब्रीहि वाचन्नमः अन्नादं भूतानि', उससे अन्न उत्पन्न करते हैं। तो बह बैल की, मानो उसका जो पुरुषार्थ है, उसकी बलि का वर्णन हो गया। मानो उसमें संगतिकरण हो गया।

'अजामेध-याग'

इसी प्रकार, जैसे 'अजामेध याग' है, 'अजामेध याग' होता है, किसी को हमें विजय करना है। चाहे हमें अपने हृदय को विजय करना है, चाहे हमें अपनी किसी भी इन्द्री पर विजय करना है, यदि किसी भी मानो देखो जैसे 'सत्-असतं ब्रह्मचर्य' इस प्रकार हमें अपने को धारण करना है तो 'अजयमेध' याग होना चाहिए।

अजय कहते हैं, हमारे यहाँ अजा नाम बकरी को भी कहते हैं और उसकी बलि का वर्णन आता है। अजय नाम इन्द्रियों का भी है। मानो देखो में 'अप्रतां देवाः' जब वह याग करता है, 'अजामेध याग' राजा करता है तो दूसरे राष्ट्र को विजय कर लेता है, उसे अजय कहते हैं।

मानो देखो, **'अजामेध' याग का अभिप्रायः यह है कि हम अपने लिए अपनी इन्द्रियों को विजय करना चाहते हैं, अजय होना चाहते हैं, तो वह 'अजामेध याग' करता है। तो उसकी बलि दी जाती है। बलि का अभिप्रायः यह है कि जो उसमें चंचलता है, इन्द्रियों में, किसी भी प्रकार की चंचलता हो, परन्तु चंचलता को हम याग में आहुति दे दें, उसको मानो साकल्य बना करके, उसको 'स्वाहा' कह देते हैं।**

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने तो मुझे बहुत वर्णन कराया था। पी काल में, मानो जब हम अपने पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा अध्ययन करते थे, तो 'अजामेध याग' करते थे। और, 'अजामेध याग' का अभिप्रायः यह होता था कि वह जो पशु है, वहाँ पशु किसे कहते हैं? इन्द्रियों को पशु कहा जाता है, वहाँ बकरी का कोई समन्वय नहीं होता। मानव ने, स्वार्थी प्राणियों ने महाभारत काल के पश्चात् 'अजामेध-याग' में बकरी की आहुति देना प्रारम्भ कर दिया। **अभिप्रायः तो यह था कि हम अपनी इन्द्रियों का शोधन करें।** परन्तु देखो आधुनिक काल में, यह महाभारत के

काल के पश्चात् उसका अभिप्रायः, अब भी मानो पर्वतीय क्षेत्रों में ऐसा होता रहता है। तो 'अप्रहे ब्रह्म वाचः' तो मैं पूज्यपाद गुरुदेव से यह उच्चारण करा रहा था, परिचय दिला रहा था कि आधुनिक मानो देखो 'यागां भविते देवाः' राजा के यहाँ राष्ट्र में देखो जो अघटित घटनाएं होती हैं, उसके मूल में उसका आत्मबल, उसके मूल में उसकी आत्मीय जो ऊर्जा है, मानो वह इतनी बलवती नहीं है, उसको ब्रह्म ज्ञान होना चाहिए, आत्म प्रकाश उसे मिलना चाहिए। तो मानो देखो उसे निर्भीकता हो जाये राजीयता में। राष्ट्रीयता में उसे अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना है और प्रजा को महान् बनाना है। प्रजा को ऊर्ध्वा में ले जाना है।

इस प्रकार के ये विचार हैं। मैं अपने विचारों को अब विराम दे रहा हूँ। पूज्यपाद ने 'आवृत्तः देवः' इतनी मुझे आज्ञा दी। मेरे विचार क्या हैं, विचार तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव प्रकट करा रहे थे। आज का, मैं पुनः से, जहाँ हमारी आकाशवाणी जा रही है, वहाँ मानो देखो, मेरे अस्वुतो यज्ञमान, मानो देखो 'जीवनं ब्रहा', उनके जीवन की प्रतिभा सदैव अखण्ड बनी रहे! जीवन का सौभाग्य प्रतिपादित रहे! और उनका हृदय पवित्रतम में परिणित होता रहे! अपने में वे यज्ञमान सौभाग्यशाली होते हैं, जिनके यहाँ द्रव्य का सदुपयोग होता है। अग्नि के मुख में चरु प्रदान किया जाता है। हमारे यहाँ यही तो त्याग भावना की प्रवृत्ति होती है। अब मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ।

पूज्यपाद द्वारा उपसंहार—मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी

मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने कुछ शब्दों को उच्चारण किया। इनके शब्द प्रायः संगतिकरण में कहलाए गए। मानो देखो इनके हृदय में एक यह है कि त्रुटियाँ नहीं रहनी चाहिए। इनके हृदय में एक दाह है कि राजा के राष्ट्र में रूढ़ि ही समाज में रक्त भरी क्रांति लाती है। तो इसलिए आज का विचार क्या? कि हम परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाते रहें। और, हे यज्ञमान! तुम्हारे जीवन की प्रतिभा महान् बनी रहे! यह आज का वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हमारे यहाँ याग जो कर्म है, यह सृष्टि के प्रारम्भ से जैसे परमपिता परमात्मा सृष्टि का प्रादुर्भाव करते हैं, इसी प्रकार ज्ञान वेदों में है। ऋषि-मुनि वेदों में से आख्यिका मानो धारण कराते रहते हैं। वह क्रियात्मक कर्म होता रहता है। वह याग कहलाता है। यह आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन–

ओ३म् देवानां रथः आप्यां लोकम्।
सर्वं भद्राः वाचन्नमः गतम् आभ्यां देवाः ॥
ओ३म् अग्निः वर्धश्चमां मानं ग्रहाणां त्वामायो।
आपः रथं अधो मन्थः गायन्त्वाः मां रयीश्चः ॥

श्री ओंकार नाथ गुप्ता
मोदी नगर
१४-११-८४

यज्ञोमयी विष्णु

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति, कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुण-गान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही, उस मनोहर वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में, उस महामना मेरे देव, जो यज्ञोमयी स्वरूप है, मानो याग उसका आयतन माना गया है मानो उस परब्रह्म परमात्मा की प्रायः हम महती का वर्णन कर रहे थे। क्योंकि प्रत्येक वेद-मन्त्र उस परमपिता परमात्मा का निर्वाचन करता रहता है। उसके गुणों का वर्णन प्रत्येक शब्द में प्रायः हो रहा है। जितना भी यह ब्रह्माण्ड है, मानो यह उसकी गाथा और उसकी प्रतिभा है अथवा यह सर्वत्र जगत् उसका आयतन माना गया है।

आज मैं विशेषता में कोई वाक्य प्रगट करने नहीं आया, केवल विचार यह देने के लिए कि **वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है। वेद का मन्त्र उसे विष्णु कहता है और उसका उद्घोष कर रहा है कि वह पालन करने वाला है, अनुपम है, विष्णु है, वह ध्रुवा है, मानो वह ऊर्ध्वा में भी गति करने वाला है।** तो वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है।

ब्रह्मचारी के याग

इन्द्रिय-अनुशासन

आओ, मेरे प्यारे! आज मैं यागों के सम्बन्ध में कोई विशेष चर्चा तो नहीं, परन्तु हमारे यहाँ सृष्टि के प्रारम्भ से ले करके वर्तमान के काल तक यागों का चयन ऋषि-मुनियों के मस्तिष्कों में नृत्य करता रहा है। विद्यालय में ब्रह्मचारी अध्ययन कर रहा है, परन्तु उसको सबसे प्रथम यह उपदेश देते हैं कि "हे ब्रह्मचारी! तू याग में परिणित हो जा।" मुझे स्मरण है, जब महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज को उनके पितर रेंगणी भारद्वाज ने जब मानो देखो महर्षि तत्व मुनि आश्रम में उन्हें प्रवेश कराया तो सबसे प्रथम उन्होंने यह कहा--"चक्षुं मे शुन्धामि, हे ब्रह्मचारी! तू मानो चक्षु में ब्रह्मचारी है। आओ, मानो यज्ञोमयी याग का संकल्प करो कि तुम्हारी प्रत्येक इन्द्रियाँ यागमय होनी चाहिए।" 'चक्षुं मे शुन्धामि, श्रोत्रं मे शुन्धामि', जब प्रत्येक इन्द्री को आचार्य अपनी आभा में निहित कर लेता है, तो मानों वही आचार्य ब्रह्मचारी को पवित्र बनाता है, यज्ञोमयी बना देता है।

गोमेध-याग

मानो वही ब्रह्मचारी को पवित्र बनाता हुआ, वह गो-मेध याग हो रहा है। क्योंकि 'गो' और 'मेध' दो ही शब्द हैं, जो मानव के जीवन में सार्थक बन करके आते हैं। मानो गो नाम पशु का

है और मेध नाम प्रकाश में रत्त रहने वाला है, वहाँ प्रकाश है। तो मानो देखो 'गो-मेध भविते ब्रह्मब्रह्मा' कि गो से मेधावी की वह उड़ान उड़ता है, गो से मेधा को प्राप्त करता है। मानो जब वह मेधावी बन जाता है, तो उसका जीवन यज्ञ में परिग्गित हो जाता है, यज्ञ में ही ओत-प्रोत हो जाता है। 'यज्ञोमयी संकल्प ब्रहे', क्योंकि हमारे यहाँ आचार्यों ने प्रारम्भ में ही मानो देखो याग का वर्णन किया कि ब्रह्मचारी को याग करना चाहिए। याग क्या, यहाँ तक ऋषि ने कहा है कि 'वागृति वाचप प्रहे लोकाम्' मानो वह गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा करे।

गार्हपथ्याग्नि-पूजक

गार्हपथ्य नाम की अग्नि की पूजा कौन करता है? यज्ञमान करता है। मानो ब्रह्मचारी कर रहा है। विद्यालयों में प्रवेश हो करके, आचार्य करता है।

वाजपेयी याग

बेटा! मैंने कई काल में तुम्हें निर्णय कराया था, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज की चर्चाएं प्रायः होती रहती हैं, परन्तु देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, माता अरुन्धति और नाना ब्रह्मचारी, उनके यहां नित्यप्रति मानो वाजपेयी याग का चलन होता रहता, वाजपेयी याग होता रहता। जब भी मानो किसी ऋषि-मुनि-आश्रम में उनका आगमन होता, तो वे ब्रहा और आत्मा की कुछ चर्चाएं

करते रहते थे। विशेष कर महर्षि कागभुषुण्ड जी तो प्राण की ही चर्चा करते रहते थे। 'यागां भविते ब्रह्मवाचा', बेटा! यहाँ राजा को भी याग करना है, जैसा पुरातन काल में हमनें वर्णन किया।

प्रजापति-चाक्रायण का याग-विज्ञान-मन्थन

उद्‌गीथ का देवता

आज मैं कोई विशेषता में नहीं ले जाऊंगा। प्रजापति के यहाँ याग हो रहा है। मानो दखो चाक्रायण ऋषि, बेटा! याग में परिणित हुए और याग में उद्‌गाता बने। जब उद्‌गीथ गाने लगे तो राजा ने यह प्रश्न किया कि "तुम बिना आज्ञा के उद्‌गाता बन गये हो, परन्तु जिस उद्‌गीथ को तुम गा रहे हो, उसका देवता कौन है?" मेरे प्यारे! ऋषि ने यह वर्णन कर दिया कि उसका देवता सूर्य है। **उद्‌गीथ गाने वाला सूर्य के समान तेजोमयी बन जाता है। वह तेज की उपासना करता है। अग्नि से अग्नि का चयन करता है। राजा सन्तुष्ट हो गया।**

उद्‌गाता का प्रेरणा-स्रोत

राजा ने पुनः यह प्रश्न किया कि "हे उद्‌गाता! तुम बिना आज्ञा के उद्‌गाता बने हो, यह किससे तुम्हें आज्ञा अथवा प्रेरणा प्राप्त हुई है?" तो चाक्रायण कहता है कि **"प्रेरणा का सूत्र मानव का हृदय है। हृदय ही प्रेरणा का स्रोत्र माना गया है।**

उसी हृदय की प्रेरणा से, उसी हृदय के उद्गार से मानो मैं उद्गाता बना हूँ।" राजा सन्तुष्ट हो गया।

उद्गाता का दिशा-समन्वय

राजा ने कुछ समय पश्चात् यह प्रश्न किया कि "हे उद्गीथ गाने वाले, उद्गाता! मानो जो तुम उद्गीथ गाओगे, वह उद्गीथ का देवता कौन है?" मेरे प्यारे! ऋषि चाक्रायण ने कहा "उद्गीथ का देवता कौन है? मानो ये दिशाएं मानी गई हैं। दिशाओं में ही तो शब्द गति कर रहा है और वह दिशाओं से ही हमारा जब समन्वय होता है तो उद्गारों का प्रारम्भ हो जाता है; उसका देवता मानो दक्षिणाय है; उसका देवता सोम कहलाता है।"

उद्गाता का दिशा-स्थान

मेरे प्यारे! देखो राजा ने कहा कि "सोम और दक्षिणाय दो शब्द बन गये हैं। दक्षिणाय और यह सोम दोनों शब्द कैसे बने हैं? इसका परस्पर समन्वय कैसे होगा?" तो मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने कहा कि **"शब्द प्रथम मानो दक्षिण दिशा, दक्षिणाय को प्राप्त होता है, उसमें पितर रहते हैं और पितरों से जो शब्द आता है, वही मानो देखो उत्तरायण में जा करके उद्घृत होता है, इसीलिए उद्गाता का स्थान यज्ञशाला में उत्तरायण कहलाता है।"** राजा, बेटा! यह उच्चारण करके मौन हो गया।

स्वाहा का देवता

जब वह मौन हो गये तो कुछ समय के पश्चात् राजा ने पुनः उनसे प्रश्न किया कि मानो तुम जो उद्गीथ गा करके 'स्वाहा' उच्चारण करते हो, मानो इसका देवता यह कहाँ समाहित होता है?" तो मेरे प्यारे! देखो महर्षि चाक्रायण ने कहा कि "महाराज! यह तो दो वाक्य हो गये कि एक समाहित होना है और एक देवता होना है" उन्होंने कहा, "दोनों का उत्तर दीजिए।" चाक्रायण ने कहा कि "मानो देखो यह 'सम्भवितो ब्रह्मवाचा अग्नि' यह अग्नि में ही तो समाहित हो जाता है और अग्नि में समाहित हो करके मानो देखो उद्गीथ गाने वाला समिधा कहा जाता है और समिधा के समन्वय से ही तो मानो देखो अग्नि का चयन होता है, और वह अग्नि उद्घृत हो जाती है, प्रकाश में रक्त हो जाती है।" मेरे पुत्रो! जब चाक्रायण ने यह उत्तर दिया तो उस समय राजा ने कहा, "यथार्थं ब्रहे!"

उद्गाता का कर्त्तव्य

मेरे प्यारे! कुछ समय के पश्चात् उन्होंने एक प्रश्न और किया "तुम जो उद्गीथ गाने वाले हो, गाना है तुम्हें, वह किसके लिए, मानो क्यों गाओगे?" महाराजा चाक्रायण ने कहा कि "मैं जो उद्गीथ गा रहा हूँ सबसे प्रथम तो देवताओं को मैं प्रदीप्त करना चाहता हूँ, उसके पश्चात् मैं अपनी अन्तरात्मा में, जो मेरे हृदय में जो एक मानो उद्गीथ गाया जा रहा है, उसका बाह्य

स्वरूप बन करके, मेरा अन्तर्हृदय मानो यज्ञमान के हृदय से उसका समन्वय हो जायेगा और मेरे हृदय से उसका समन्वय हो जायेगा और मेरे हृदय की यह कामना है कि यज्ञमान की वाणी और उसका हृदय दोनों का एक समन्वय हो करके, मानो वह श्रद्धा में परिवर्तित हो करके, मानो देखो वह द्यौ-लोक को प्राप्त हो जाये, द्यौ में उसकी स्थिति हो जाये।'' मेरे पुत्रो! देखो जब चाक्रायण ने यह उत्तर दिया तो प्रजापति ने कहा, ''यथार्थ!''

मेरे पुत्रो! देखो उन्होंने कहा कि ''यज्ञमान उद्गीथ जो गवा रहा है, मानो इसका उद्देश्य क्या है?'' मुनिवरो! देखो उन्होंने, चाक्रायण ने कहा कि ''इसका जो उद्देश्य, यह जो 'उद्देश्यां ब्रीहि ब्रहो वाचय प्रव्हा' वेद की आख्यिका कुछ ऐसी कहती है, मानो देखो जो यज्ञमान है वह चाहता है कि मेरे हृदय की जितनी ग्रन्थियां हैं, जितना मेरे हृदय का उद्गार है, मानो वह तो मेरा राष्ट्र है, मेरा राष्ट्र पवित्रता में परिवर्तित हो जाये, सदाचार और मानवता की प्रतिभा में रत्त हो जाये,'' ऐसा मानो देखो, यह उच्चारण करके, बेटा! राजा ने यह उच्चारण किया कि ''तुम्हारा जो ज्ञान है, वह अपार है! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूँ!''

यज्ञशाला का देवता

उस समय जब विराजमान होने लगे तो चाक्रायण ने कहा ''राजा! बस, शान्त हो गये हो? आगे तुम्हारा प्रश्न तो रह ही गया है।'' राजा ने कहा ''प्रभु! उस प्रश्न को मैं नहीं जान रहा

हूँ। वह कौन-सा है?" उन्होंने कहा "तुमने यह प्रश्न नहीं किया कि इस यज्ञशाला का देवता कौन है?" उन्होंने कहा "प्रभु! वास्तव में मैं यह नहीं जान पाया।" "मानो देखो, यह जो यज्ञशाला है, यह रथ है और अग्नि की धाराओं पर विद्यमान हो करके यह द्यौ-लोक को प्राप्त हो जाता है।" यह उत्तर दे करके चाक्रायण मौन हो गये और उद्गीथ गाने लगे, उद्गाता बन करके उद्गीथ गाने लगे तो मानो याग प्रारम्भ हो गया।

तो मुनिवरो! देखो विचार-विनिमय हमारा क्या है कि **हम याग में जब परिणित होते हैं तो याग के देवताओं को अंगों-उपांगों से जानने लगते हैं तो हमारा अन्तर्हृदय पवित्र हो जाता है, हम उस पवित्रता की वेदी में रक्त हो जाते हैं।**

विष्णु

सूर्य का नाम विष्णु

जहाँ मानो देखो यह विष्णु शब्द आया है, वेद में विष्णु शब्द आ रहा है। तो मुनिवरो! देखो विष्णु नाम सूर्य का है और उसका एक, केवल एक ही अभिप्रायः है—वह जो पालन करने वाला है, उसका नाम विष्णु कहा जाता है, वैदिक साहित्य में। कई काल में मैंने ये चर्चाएं की हैं, आज भी मैं उसकी पुनरूक्ति ले रहा हूँ। हम कह रहे हैं कि जो भी पालन करता है, वह विष्णु के रूप में रक्त रहता है।

प्रथम विष्णु–परमात्मा

सबसे प्रथम विष्णु परमपिता परमात्मा को कहा जाता है, जो परमपिता परमात्मा, मानो देखो महान् बन करके पालन करता है। सर्वत्र प्राणी का निर्माण-पालन करना, मानो देखो, संहार की प्रतिभा में रक्त कर देना, परन्तु अभिप्रायः यह कि पालन करने वाले को ही विष्णु कहते हैं।

माता का विष्णु नाम

वैदिक साहित्य में और बहुत से पयार्यवाची शब्द हैं जैसे विष्णु नाम परमपिता परमात्मा का है। विष्णु नाम माता को भी कहा जाता है, क्योंकि वह पालन कर रही है।

राजा का विष्णु रूप

विष्णु नाम सूर्य को कहा जाता है, जो प्रकाश दे रहा है, जो पवित्र बना रहा है, तेजोमयी बना रहा है। मानो विष्णु नाम राजा का है जो अनुशासन में लाने वाला है। स्वयं अनुशासन में रक्त रहने वाला, प्रजा को अनुशासन में लाना, उसका नाम भी विष्णु है। तो बहुत से पर्यायवाची शब्द आते हैं, परन्तु अभिप्रायः केवल एक ही है कि जो पालन करता है उसका नाम विष्णु है।

पृथ्वी का विष्णु रूप

यहाँ पृथ्वी को भी विष्णु के रूप में वर्णन किया है, क्योंकि

यह नाना प्रकार के व्यञ्जनों को प्रदान कर देती है, नाना प्रकार के खाद्य और खनिज-पदार्थों को प्रदान करती हुई मानव के जीवन का संचालन करती है। इसी के गर्भ में तो, बेटा! मानव पनप रहा है, इसी के गर्भ में तो नाना प्रकार की वनस्पतियों को पान कर रहा है, इसी के गर्भ में तो नाना प्रकार के अन्नाद को पान कर रहा है। वाह रे, मेरे देव! तेरे मानो देखो विष्णु के रूप में यह पृथ्वी ही पालन कर रही है, अपने गर्भ में धारण कर रही है। मानो यह कहीं वसुन्धरा के रूप में, कहीं पृथा के रूप में, कही गो के रूप में, कहीं धेनु के रूप में, मानो इस पृथ्वी का वर्णन वैदिक साहित्य में होता रहा है। तो आज मैं विशेष विवेचना न देता हुआ यह वाक्य अब मैं समाप्त करने वाला हूँ।

विष्णु रूपी अखण्ड ज्योति से समन्वय

मानो देखो, आज का हमारा जो विचार है, वह यह है कि हमें अपने हृदय में अगम्य-ज्योति को जानना चाहिए। वह जो हृदय में अनुपम एक ज्योति जागरूक हो रही है, जिसका समन्वय अखण्ड-ज्योति से रहता है। वह अखण्डमयी ज्योति हमारा पालन करने वाली है। तो मानो देखो अब मैं अपने विचारों को विराम दे रहा हूँ। मेरे प्यारे महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी का प्रवचन—'ओ३म् सर्वा गायनत्वा मां भविन्धमाः' मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! मेरे भद्र ऋषि-मण्डल! अभी-अभी

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ऊर्ध्वा में जाने वाले उपदेश, मानो उनके उद्‌गार हमारे अन्तःकरण को स्पर्श करने वाले हैं। हमारा अन्तःकरण जभी पवित्र बनता है, जब तपे हुए विचार, दर्शनों से गुथे हुए विचार, जब मानव के अन्तःकरण को स्पर्श करते रहते हैं, तो अन्तःकरण में एक पवित्र प्रकाश आने लगता है।

आज हमारी यह आकाशवाणी जिस स्थली पर जा रही है, वहां एक याग का चयन हुआ। मानो मैं सदैव दृष्टिपात् करता रहता हूँ कि मानव अपने कर्त्तव्य की आभा से 'आभा' में रक्त हो करके कहीं का कहीं परिवर्तित होता रहता है। पूज्यपाद गुरुदेव के जीवन के ऊपर जब मैं दृष्ट्रि-पात् करने लगता हूँ तो मानो हृदय में एक विडम्बना उत्पन्न हो जाती है। मैं उस विडम्बना के स्रोत्र में भी जाना नहीं चाहता हूँ, क्योंकि यह प्रत्येक आत्मा के साथ में जो अन्तःकरण लगा हुआ है। **अन्तःकरण, चित्त का एक मण्डल कहलाता है; उसमें जो संस्कार हैं, जो क्रियाकलाप हो रहे हैं मानो उसके ऊपर मानव का जीवन निर्धारित हो जाता है और उसी में वह रक्त रहता है।**

आज मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव को अपनी आभा में दृष्टिपात् कर रहा था। परन्तु मैं आज इन वाक्यों को न लेता हुआ, केवल क्या, आज मेरा अन्तरात्मा, अन्तर्हृदय प्रसन्न हो करके, यज्ञमान के साथ मेरा हृदय रहता है और मैं यह कहा

करता हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! क्योंकि जीवन की धाराएं ही एक याग का स्रोत्र माना गया है। मानो जब यज्ञमान अपने जीवन की धारा को महानता में ले जाता है तो मेरा अन्तःकरण यह कहता रहता है, हे यज्ञमान! याग तेरी एक मौलिक आभा है, क्योंकि तू त्याग और तपस्या में रक्त हो करके, तू अपना देखो द्रव्य का सदुपयोग कर रहा है। जिस गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह गृह वास्तव में देव की प्रतिभा कहलाती है। तो हे यज्ञमान! मेरे जीवन में सदैव यह कामना रहती है यज्ञमान के लिये कि तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे।

परम्परा का वैष्णवी राष्ट्रवाद

मानो देखो इस प्रकार जैसा मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी कुछ याग के विज्ञान की चर्चा कर रहे थे, याग का कहां-कहां समन्वय होता है। परन्तु राजा बुद्धिमानों से प्रश्न कर रहा है और बुद्धिमान उसका उत्तर दे रहा है, उसका उद्गीथ गा रहा है। यह मैं क्या दृष्टिपात् कर रहा हूँ! परन्तु कहाँ वह महाराजा प्रजापति वाला पालन, कहाँ आधुनिक काल की चर्चाएं! पूज्यपाद गुरुदेव को मैं परिचय देता रहता हूँ और वह परिचय यह है कि पुरातन राष्ट्र की प्रतिभा कितनी विचित्र रही है! मानो देखो ऊंचे-ऊंचे, महान् से महान् पवित्र आत्माओं को भयंकर वनों से लाया जाता और यागों की रचनाएं हुआ करतीं। परन्तु राजा प्रसन्न हो रहा

है, प्रजा प्रसन्न हो रही है। राजा अपने में स्वयं कला-कौशल करके उदर की पूर्ति करता है। प्रजा के वैभव को संग्रह नहीं कर रहा है। प्रजा के वैभव को अपने में ग्रहण नहीं कर रहा है। वह यह जानता है कि "मेरा यह कर्तव्य नहीं। मेरा कर्तव्य है, मुझे सेवा करनी है। मेरा कर्त्तव्य है कि मैं स्वयं कला-कौशल करके उदर की पूर्ति करके मैं अपने गृह में याग करूं।"

महाराजा सुनीत का राष्ट्रवाद

मानो देखो पूज्यपाद जिस राजा की चर्चा कर रहे थे, वह सुनीत नामक राजा थे। और, सुनीत राजा के यहाँ, इन्होंने नियम बनाया था कि पति-पत्नी अपना स्वयं कला कौशल करते मानो कृषि का उद्गम करते और उसमें अपने उदर की पूर्ति करते और मानो एक वर्ष में जितना भी अपने उदर से अतिरिक्त कृषि में द्रव्य का उपभोग होता, परन्तु उसी के द्वारा बुद्धिमानों को ऋषि-मुनियों को ला करके उसका याग करते थे। प्रातःकालीन् तो याग होता ही था। देव-पूजा किया करते थे, क्योंकि देवता प्रसन्न रहें राष्ट्र में। राष्ट्र में समय पर वृष्टि हो जाये, अनावृष्टि नहीं, मानो इन्द्र प्रसन्न रहे। मानो अग्नि में पदार्थों को देकर अग्नि उसका विभाजन कर देती है। वही तो विभाजन-क्रिया है, जो सुनीत राजा अपने राष्ट्र में किया करते थे। परन्तु ऋषि-मुनि जाते उस अन्न को वह पान कराते थे जिस अन्न को मानो कृषि में उद्यम करके उन्हें प्राप्त होता।

राष्ट्र का प्राण

राजा यह जानता था कि मेरे राष्ट्र में, मेरे राष्ट्र का यदि कोई प्राण है तो बुद्धिमान पुरुष है, मेरे राष्ट्र का यदि कोई प्राण है, तो वह बुद्धिजीवी है। मानो यदि बुद्धिजीवी का ह्रास हो गया तो राष्ट्र का प्राण चला जायेगा। मानो देखो, महाराजा सुनीत वेदों की प्रतिभा, दर्शनों की आभा में अपने वाक्य को उच्चारण करते थे। क्योंकि यदि बुद्धिमान की बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, तो वह बुद्धि रूढ़ि में परिवर्तित हो जाती है और वह रूढ़ि में परिवर्तित हो करके वह स्वार्थ की परता पर आ जाती है और वह स्वार्थपरता पर आ करके मानो राष्ट्र में रक्तभरी-क्रांति के अवशेषों का जन्म हो जाता है।

वेद का आदेश

मानो देखो इस प्रकार हमें राजा को विचारना चाहिए। राजा चाहता क्या है? राष्ट्र क्या चाहता है? मानो यह वेदमन्त्र क्या कहता है? वेद-मन्त्र, वेद के ऋषि क्या कहते हैं? और क्या उनकी इच्छाएं हैं? परन्तु वेद का ऋषि केवल यही कहता है कि यदि **राजा को अपने राष्ट्र को ऊंचा बनाना है तो उसके राष्ट्र में याग होने चाहिए, परन्तु यागों से सुगन्धित होनी चाहिए। यदि सुगन्धि होगी, तो वायुमण्डल पवित्र रहेगा और वायुमण्डल के पवित्र रहने पर समय-समय पर वृष्टि होगी, अनावृष्टि नहीं होगी।**

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने मुझे कई काल में राजाओं की गाथाएं प्रगट की हैं कि राजाओं के यहां इच्छा हुई की वृष्टि होनी है तो मानो वह याग करते थे, बुद्धिमानों के द्वारा। मानो देखो वह स्वयं कृषि में रक्त हो करके, कृषि को प्राप्त करते थे। विचार क्या? मानो देखो आज मैं पूज्यपाद गुरुदेव को तो क्या परिचय दूँ? पूज्यपाद गुरुदेव तो इस विद्या को! जानते हैं।

सुनीत से प्रजाप्रति

परन्तु मैं तो केवल इतना उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि यह सुनीत राजा की मेरे पूज्यपाद चर्चा कर रहे थे। वही सुनीत मानो आगे चल करके प्रजापति के रूप को उन्होंने धारग किया। क्योंकि जब प्रजा में कुशलता आ गई, प्रजा में सुगन्ध और ऋणों से उऋण होने वाला राष्ट्र बन गया तो मानो उन्हीं को प्रजापति कहने लगे। वह प्रजापति, मानो देखो सुनीत राजा के रूप में सुचेता के रूप में भी रहे। परन्तु विचार मेरा उच्चारण करने का यह है कि उनमें कितनी बुद्धि, कितना उद्गार, कितनी ब्रह्म-विद्या में पारायण राजा रहता है, जो ऋषि से प्रश्न कर रहा है! चाक्रायण वह ऋषि, जिन्होंने मानो देखो एक सौ एक वर्ष तक तो अनुष्ठान किये मानो देखो आयु को बलवती करने के लिए। वही मानो देखो चाक्रायण तपस्वी, जो सूर्य की किरणों के साथ में विज्ञान को भी जानते थे।

आध्यात्मिक और भौतिक-विज्ञान समन्वय

ऋषि-मुनियों का यह कथन रहा है कि जो आध्यात्मिक विज्ञान को जानता है वही भौतिक विज्ञान में पारायण है। प्रत्येक मानव के हृदय में, राजा के हृदय में यह आकांक्षा रहती रही है कि मेरे राष्ट्र में विज्ञान होना चाहिए। परन्तु जब तक विज्ञान का आध्यात्मिक विज्ञान से समन्वय नहीं होगा, जब तक आध्यात्मिकवाद का और भौतिक-विज्ञान का, दोनों का समन्वय नहीं होगा, तब तक राजा अपने राष्ट्र में शान्ति की स्थापना नहीं कर सकता। क्योंकि राजा स्वयं मानो देखो शान्ति चाहता है, हृदय को अगम्य चाहता है, मानो देखो परमपिता परमात्मा की महती से वह ऋषि-मुनियों के जीवन को उद्गार और आयुशील बनाना चाहता है। तो मेरे पूज्यपाद गुरुदेव से मैंने कई काल में वर्णन किया कि जब मैं परम्परा के राष्ट्रों को विचारता हूँ, जब मैं पूज्यपाद गुरुदेव के द्वारा यागों में परिणित होता रहा, राजाओं के यहां जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, उनकी मानो देखो श्रद्धा, उनकी आस्था उनका ज्ञान, मानो कितना नम्र, कितना विचारणीय रहता था।

आधुनिक राष्ट्र-व्यवस्था

जब मैं आधुनिक काल के राष्ट्र में प्रवेश करता हूँ, आधुनिक काल, जो वर्तमान का काल है, जब मैं उसे दृष्टिपात् करता हूँ तो मेरा हृदय मानो विडम्बनित हो जाता है। मेरा हृदय विडम्बनित क्यों होता है? क्योंकि जो वह क्रियाकलाप है, वह न

रहने से प्रजा और राष्ट्र दोनों में अशान्ति का वायुमण्डल छाया हुआ है। (ऐसे) वायुमण्डल की प्रतिभा में प्रत्येक प्राणी मानो देखो रक्त हो रहा है।

याग-कर्म पाखण्ड नहीं

मैंने बहुत पुरातन काल में पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराया है कि याग जैसे क्रियाकलाप को आधुनिक काल का मानव एक पाखण्ड की भाषा उच्चारण कर रहा है। मानो जब मैं यह विचारता हूँ कि तेरे जीवन का जो नित्यप्रति का क्रियाकलाप है, मानो क्या यह पाखण्ड में परिणित नहीं है? **पाखण्ड उसे कहते हैं, जो वेद के विपरीत, जो प्रकाश के विपरीत अन्धकार में ले जाने वाला क्रियाकलाप हो, उसी का नाम पाखण्ड कहलाया जाता है।** मानो देखो इसके ऊपर मानव को सदैव विचार-विनिमय कर लेना चाहिए। इसके ऊपर मनन करते हुए चिन्तन करना चाहिए, क्योंकि मेरे पूज्यपाद इससे पूर्व काल में यह उच्चारण कर रहे थे कि राष्ट्र में राजा ऊँचा बनेगा, तो प्रजा ऊँची बनेगी!, प्रजा ऊँची बनेगी तो मानो देखो इस समाज में स्वर्ग आ जायेगा, वायुमण्डल पवित्र बनेगा। वायुमण्डल पवित्र बनेगा तो परमाणुवाद में एक क्रान्ति आ जायेगी, सु-क्रान्ति आ करके मानो देखो वायुमण्डल में अपनी इच्छा के अनुकूल वृष्टि और सर्वत्र क्रियाकलाप होना प्रारम्भ हो जाता है।

इस प्रकार मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को वर्णन कराया कि

आधुनिक काल का जो राष्ट्र है, जब प्रातःकाल ही वह हिंसा में परिणित होने लगता है। आहार भी उसका हिंसामयी बन जाता है, तो वायुमण्डल कैसे पवित्र बना सकता है? परन्तु देखो मैं इन वाक्यों में जाना नहीं चाहता हूँ। आहार और व्यवहार की प्रतिभा में जब मैं रक्त होने लगता हूँ, ऋषि-मुनियों ने क्या आहार किया और क्या उन्होंने हमें प्रदान किया है! मानो **महर्षि कणाद जब आहार करते थे तो मानो वह कणक को ले करके जल में खरल बना करके उसका दुग्ध बना करके उसका पान करते थे और उनकी जो उड़ान थी, वह विज्ञान की रहती थी। वह मानो परमाणुवाद में रत्त रहते, उड़ान उड़ने रहते थे।** यह उन्होंने कहा "हे प्रभु! मेरी यदि सहस्रों वर्ष की आयु हो, और मैं तेरे विज्ञान के ऊपर अध्ययन करता रहूं, तो प्रभु! हे भगवन्! वह भी मेरी आयु सूक्ष्म है। इतना विशाल विज्ञान प्रभु का है!

आज के विज्ञान की विडम्बना

मानो देखो आज का मानव उससे विपरीत है। वह कहता है कि जो भी कुछ हम जान रहे हैं (वह पूर्ण है) परन्तु जो जान रहा है वह कुछ समय के पश्चात् निष्क्रिय बन जाता है और निष्क्रिय बनने के मूल में यह कि जो विज्ञान में आज जिस परमाणु को जाना है, जिस तरंग को जाना जाता है, वे तरंगें कल परिवर्तित हो जाती हैं, क्योंकि देखो प्रभु के विज्ञान में अनन्तता

है। एक तरंग को जाना, वही तरंग ऐसी नहीं है जो उसी को जान करके हम विज्ञानवेत्ता बन गये हैं। परन्तु द्वितीय तरंगें जो उपस्थित होती हैं, तो मानो देखो वह जो प्रथम तरंग को जाना है उसका मूल रूप मानो देखो द्वितीय तरंग में प्रवेश कर जाता है; द्वितीय तरंग को जानता है, तृतीय तरंग में वह प्रवेश कर जाता है। मानो एक परमाणु, परमाणु में ओत-प्रोत हो रहा है और ओत-प्रोत हो करके देखो जिस यन्त्र का आज निर्माण किया है, वह यन्त्र ही नहीं कि यन्त्र का एक ऊर्ध्वा रूप बन करके मानो देखो विज्ञान इससे भी ऊँचा एक परमाणु-अस्त्रों का निर्माण हो जाता है। तो उच्चारण करने का अभिप्रायः हमारा यह है कि हम, मुनिवरो! देखो विज्ञान में मेरे पूज्यपाद गुरुदेव को तो यह सब प्रतीत है, मानो देखो कहीं याग से विज्ञान की धाराओं का जन्म होता है, कहीं मानो अग्नि के परमाणु जल की धाराओं में रक्त होने से परमाणुवाद का जन्म होता है और जन्म क्या अनावृत्तियों में रक्त रहने वालों से उनको जाना जाता है। तो किस प्रकार, हम किस माध्यम से अपने जीवन को ऊंचा बनाना चाहते हैं?

मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव से यह वर्णन कराया था, बहुत पुरातन काल में कि आधुनिक काल का जो विज्ञानवेत्ता है, वह समाज को मृत्यु का त्रास देता रहता है, जो मैंने पुरातन काल में भी कहा है। यह कहता है कि एक ऐसा यन्त्र अमुक राष्ट्र ने निर्माणित कर लिया है, जो वायुमण्डल में त्यागा जायेगा तो मानव मात्र समाप्त हो जायेगा। अरे, भोले प्राणी! हे वैज्ञानिक!

तू मानो प्रजा को त्रास क्यों दे रहा है? यह विज्ञान तो आधुनिक काल में ही नहीं, यह सृष्टि के प्रारम्भ से ही मानो देखो विज्ञान की उपलब्धि तो मानो परमपिता परमात्मा ने सूक्ष्म रूपों में वर्णित की है। इसको मानव जानता रहता है और जानता हुआ इसको ऊर्ध्वा में ले जाता है, समय आता है, वह निम्न चला जाता है, निचली स्थलियों में प्रवेश कर जाता है। परन्तु तू त्रास क्यों दे रहा है? हे वैज्ञानिक! तेरा त्रास देने का कर्तव्य नहीं है। हे वैज्ञानिक! आज जहाँ तू मृत्यु का दण्ड, मृत्यु का मापदण्ड देना चाहता है, वहाँ जीवन का भी तो मापदण्ड देना चाहिये कि जीवन कितना है, जीवन को उद्‌बुध बनाने के मानो हमने इस प्रकार के यन्त्रों का निर्माण किया, इससे मानव का जीवन ऊंचा बनेगा। परन्तु वह भी तो यन्त्र होने चाहिए। जहाँ आग्नेय अस्त्र हैं, अग्नि प्रचण्ड हो रही है, वहाँ मानो वरूणास्त्र, शान्त होने वाले भी होने चाहिए। परन्तु देखो इस प्रकार मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई काल में यह वाक्य प्रगट कराया है।

आधुनिक विज्ञान और भस्मासुर

आधुनिक काल का विज्ञान कैसा है? आधुनिक काल का विज्ञान ऐसा है, मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गाथा वर्णन करते रहते हैं, वह गाथा मुझे भी स्मरण आती रहती है। एक समय, भगवान् शिव अपने आसन पर विद्यमान थे। क्योंकि शिव-विज्ञान में रक्त रहते थे, विज्ञानवेत्ता थे। मानो देखो जब वह विज्ञानवेत्ता थे तो

उनके द्वारा भस्मासुर आ गये और भस्मासुर ने मानो उनके द्वारा एक मानो देखो कणु-अस्ति था, एक मानो देखो यन्त्र था और वह भुजों में मानो देखो पारित वस्तुत होता था, जब उसको मानो उन्होंने प्रदान किया कि "महाराज! इसको मुझे प्रदान कर दीजिये।" जब वह मानो वह यन्त्र प्रदान कर दिया वह कौड़ी-जुड़े रूप में, कड़े के रूप में मानो देखो उन्होंने अपने भुज में अर्पित कर लिया, मानो उसे धारण कर लिया। धारण करने के पश्चात् उसमें यह विशेषता थी कि यदि वह सिर, देखो वह सिरों के ऊर्ध्वा भाग में गति कर जाये मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भाग में, तो वह भस्म हो जायेगा। मानो देखो उस यन्त्र में यह विशेषता थी, उस कड़े में यह विशेषता थी।

एक समय, मानो देखो भस्मासुर के मन में बहुत समय के पश्चात् यह आ गया कि मैं महाराजा शिव को भस्म कर सकता हूँ और मेरे हृदय में यह अमृती आनी चाहिए की यह जो पार्वती है, यह सती है, यह मानो मेरी अर्धांगिनी बन करके रहे। ऐसा जब भस्मासुर के मन में विचार आया तो मानो देखो, उन्होंने एक समय महाराजा शिव से कहा "महाराज! मैं आपको, इससे मानो आपको भस्म करूंगा अपने भुजों से। मैं पार्वती को अपनाना चाहता हूँ। यदि मुझे अर्पित नहीं करोगे तो मैं आपको भस्म करूंगा। मेरे प्यारे! 'पाप ब्रहे' मानो यह वाक्य बड़ा विचित्र बन गया। महाराजा शिव ने विचारा, "यह तो मर्यादा का विनाश होने जा रहा है। अब क्या करें?" उन्होंने वहाँ से गमन किया। वह

महाराजा विष्णु के द्वार पर पहुंचे और विष्णु से कहा कि "महाराज! मानो देखो भस्मासुर का यह कथन है और मैं नष्ट हो जाऊंगा। यह मर्यादा का विनाश हो रहा है। इस मर्यादा की रक्षा होनी चाहिये।" महाराज विष्णु ने कहा कि "महाराज! आप ब्रह्म के द्वार जाईये। वह बुद्धिमान हैं, ब्रह्मवेत्ता हैं, वह इसका निर्णय देंगे।" जब ब्रह्मवेत्ता के द्वारा ब्रह्म के द्वार पर पहुंचे तो ब्रह्मा जी ने शिव का स्वागत किया और चरणों की वन्दना करके बोले "कहो, भगवन्! आप तो बड़े मानो ह्रास में हो रहे हैं, इसके मूल में क्या है? आप किसी भी काल में ह्रास नहीं होते हो। आज कैसे ह्रासता आ रही है?" उन्होंने कहा "मैं क्या करूं, महाराजा भस्मासुर को मैंने यह एक मानो कड़वा प्रदान कर दिया था और वह यन्त्रों की प्रतिभा है और वह मानो देखो मस्तिष्क के ऊपरले भाग में जा करके भस्म कर देता है तो इसलिए मुझे ही वह भस्म करना चाहता है, पार्वती को अपनाना चाहता है, क्योंकि यह मर्यादा का विनाश है।"

मेरे प्यारे! देखो ऐसा प्रतीत है कि महाराजा शिव ने मानो देखो जब यह कहा तो महाराजा ब्रह्म ने, ब्रह्मवेत्ता ने कहा कि "महाराज! यह तो बड़ा सहज है, आप इस वाक्य को मानो देखो माता पार्वती से क्यों नहीं उच्चारण कर रहे हैं? वह तुम्हें कोई युक्ति प्रगट करेगी। तो मानो देखो उन्होंने वहाँ से गमन किया और पार्वती के द्वारा विद्यमान हो गये। पार्वती बोली कि "महाराज! आप इस प्रकार क्यों ह्रासता में हैं?" उन्होंने कहा,

"देवी! तुम्हें प्रतीत नहीं है? महाराजा भस्मासुर ने यह घोषणा की है कि मैं शिवजी को भस्म करूंगा और पार्वती को अपनाना चाहता हूँ।" उन्होंने कहा "प्रभु! इसकी युक्ति तो बड़ी सहज है। मानो देखो, मेरा और भस्मासुर का, दोनों का नृत्य हो जाना चाहिए और जहाँ मेरा भुज जायेगा, वहाँ भस्मासुर का अवश्य जायेगा वह मस्तिष्क के ऊपरले भाग में पहुंचेगा, तो वह स्वतः भस्म हो जाएगा।"

मानो देखो सती ने जब यह वाक्य कहा तो वह वाक्य महाराजा शिव को स्वीकार हो गया। तो उन्होंने महाराजा भस्मासुर से कहा "हे भस्मे! आओ, देखो तुम, मानो देखो पार्वती और तुम्हारा दोनों का मैं नृत्य दृष्टिपात् करना चाहता हूँ।" तो मानो देखो उस समय दोनों ने नृत्य किया और जब नृत्य होने लगा तो जहाँ पार्वती का भुज जाता, वहीं नृत्य में उनका जाता तो मानो देखो भस्मासुर का जो ऊपरले मस्तिष्क के ऊर्ध्वा भाग में भुज पहुंचा तो वह स्वतः भस्म हो गया। तो यही दशा आधुनिक काल के समाज की है, आधुनिक काल के विज्ञान की है, जो मैं दृष्टिपात् करता हूँ। तो पूज्यपाद गुरुदेव ने यह गाथा मुझे बहुत पुरातन काल में प्रगट की थी कि मानो देखो विज्ञान अपने को ही, मानो देखो अपने ही यन्त्र को भस्म करना चाहता है, अपने में ही भस्म होने के लिये तत्पर हो रहा है। ऐसा मानो देखो मुझे दृष्टिपात् हो रहा है। आज मैं विज्ञान के वांगमय में तो नहीं जाना चाहता हूँ। पूज्यपाद गुरुदेव को मुझे यह प्रगट

कराना है कि आधुनिक काल का मानव मानो देखो त्रास देता है समाज को, सामाजिक-ह्रासता उससे हो रही है और यह विचारता है कि विज्ञान का क्या बनेगा? परन्तु मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को पूर्व भी कहा, आज भी मुझे वह वाक्य पुनः से स्मरण आ रहे हैं कि **विज्ञान मानो देखो अपनी स्थलियों पर विचित्र रहता है और वह मानो मानव के नष्ट करने में लगा हुआ है। परन्तु देखो मानव इस प्रकार नष्ट नहीं हुआ करता है। यह तो विज्ञान है। परन्तु विज्ञान अपने में अधूरे पन में रहता है विज्ञान में विडम्बना, अभिमान जागरूक हो जाता है और स्वतः विज्ञान अपने आप में समाप्त हो जाता है।** यह परम्परा का एक समय-प्रताप कहलाता है। राजा रावण के राष्ट्र में पूज्यपाद गुरुदेव ने कहा, कितना विज्ञान था, जो अभी वह राजा रावण की भांति विज्ञान इकाई में भी नहीं पहुंचा है। आधुनिक काल का विज्ञान ईकाई में भी नहीं है, मानो देखो पुरातन काल के विज्ञान के आगे!

रक्त भरी क्रान्ति का कारण

आज मैं जब इन वाक्यों का उच्चारण करता हूँ तो मेरा हृदय विडम्बनित हो जाता है। हे राजन्! तू अपने राष्ट्र को ऊंचा बना। परन्तु एक राजा का वैज्ञानिक मानो चन्द्रमा की यात्रा कर रहा है या मंगल की यात्रा कर रहा है, राष्ट्र में रक्तभरी-क्रांति के अवशेषों का जन्म हो रहा है। तो वह जो विज्ञान है, चन्द्रमा

में जाने वाला जो यन्त्र है, मानो वह राजा के राष्ट्र में शान्ति को स्थापित नहीं करेगा। **सबसे प्रथम राष्ट्र का कर्तव्य है कि वह अपने राष्ट्र में शान्ति की स्थापना करे और शान्ति उस काल में आती है, मानो देखो जब प्रभु को एकोकी वचन में मानो उच्चारण होने लगता है। धर्म एक है, नाना धर्म नहीं कहलाते हैं।** जब राष्ट्र नाना धर्म उच्चारण करता है, तो वही मानो देखो निन्दनीय दशा बन जाती है, निन्दनीय एक विचार बन जाता है। हमारा क्योंकि धर्म तो एक ही है, यह नाना धर्मों में क्यों प्रवेश कर रहा है? जब नाना धर्मों को उच्चारण करने वाला राजा हो तो रक्तभरी-क्रान्ति अवश्य आयेगी। हे मानव! इसे कोई भी शान्त नहीं कर सकता।

रूढि-निराकरण

राजा को चाहिये कि बुद्धिमानों के सम्मेलन होने चाहिये और मानो देखो जिस रूढ़ि का जो प्रर्वतक है, उसके द्वारा मानो देखो शास्त्रीय विचार होना चाहिये। दर्शनों की आभा में, विज्ञान में उसको रक्त करके विज्ञान के मार्ग से हो करके जो मानो ऊर्ध्वा में गति करने वाला एक नृत्य है, क्रियाकलाप है, वही धर्म पवित्र कहलाता है। तो मानो देखो इस प्रकार का जब राष्ट्र, अपने राष्ट्र को शान्ति और महानता में ले जाना चाहता है तो उसके द्वारा एकोकी वाक्य है, एकोकी क्रियाकलाप है कि वह मानो रूढ़ियों को न पनपने दे। यहाँ जितनी भी रूढ़ि होगी राजा के यहाँ,

अशांति का कारण बन करके रहेगी। यह परम्परा में भी कई राष्ट्रों में, कई काल में ये रूढ़ियाँ आई हैं। परन्तु आज मैं उन रूढ़ियों में तो जाना नहीं चाहता हूँ, **मेरा तो केवल एक ही वाक्य है कि रूढ़ियाँ, रक्त भरी क्रान्ति का एक मूल कारण बनती है।** मैं तो यह कहा करता हूं कि राजा को, बुद्धिमानों को अपना संरक्षक बना देना चाहिये। जब राजा के बुद्धिमान उसके अंग-संग रहेंगे और बुद्धिजीवी यौगिक पुरुष रहेंगे; यौगिक पुरुषों को देखो निर्माणित किया जायेगा। राजा के राष्ट्र में, तो राजा निर्भय रह करके ब्रह्मवेत्ता बन करके वह मानो भ्रमण करेगा। जब तक राजा को मृत्यु का भय रहेगा, वह राजा राष्ट्र का पालन नहीं कर सकता। मानो देखो यह परम्परा का शब्द है। हमारे यहाँ राजा देखो परम्परागतों में मैंने जो दृष्टिपात् किया है, पूज्यपाद की अनुपम कृपा से, राजा रात्रि-समय प्रजा के दुःखार्तों को मानो श्रवण करते रहते थे और वह श्रवण करके उनको प्रातःकालीन उनके दुःखार्तों की चर्चा करके उनको निमंत्रण दिया करते और यह कहते कि दुःखित है, परन्तु उसके दुःखों का निवारण, उनकी मानो दुःखद आभाओं का निवारण करने वाला एक राजा ही होता है। परन्तु राजा इतना पवित्र होना चाहिये कि जिससे प्रजा में शान्ति और मानवता की स्थापना हो जाये।

आज मैं विशेष चर्चा प्रगट करने नहीं आया हूँ मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा। मुझे बहुत पुरातन काल में

पूज्यपाद गुरुओं के द्वारा राजाओं के यहाँ, मानो देखो सुनीति राजा के यहाँ भी जाने का सौभाग्य प्राप्त होता रहा है। जो राजा इतना बुद्धिमान है, याग कर रहा है, याग में प्रसन्न हो रहा है, परन्तु यह परीक्षा ले रहा है कि यह इतना बुद्धिमान है, या नहीं है। इस पदाधिकारी का इसको अधिकार है अथवा नहीं। आज जब अनाधिकार-चेष्टा हो रही है, वर्तमान में वह अनाधिकार चेष्टा ही अन्धकार के मूल में ले जा रही है, प्रजा को।

यह आज का वाक्य अब समाप्त होने जा रहा है। मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा, परन्तु देखो मेरा तो मन्तव्य सदैव एक ही रहता है, हे यज्ञमान! तेरें जीवन की प्रतिभा महान् बनी रहे! गृह के सदुपयोग, द्रव्य का सदुपयोग हो करके देवताओं का भोज बनता रहे। वायुमण्डल में पवित्रता होने से तेरे शब्द द्यौ-लोक को प्राप्त हो जाये। परन्तु ऐसी मेरी सदैव कामना रहती है। उसके हृदय में अपने हृदय का सामंजस्य करने वाला मानो अपनी आभाओं में मैं यह उच्चारण करता रहता हूँ, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! महान् और पवित्रता की वेदी पर अपने जीवन को ऊर्ध्वा में गति में ले जाने का प्रयास कर! और अब मेरा आज का विचार यह समाप्त।

पूज्यपाद द्वारा उपसंहार—मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने मानो राष्ट्र के हृदय में इनकी एक विडम्बना बनी हुई है। मुझे तो यह प्रतीत नहीं की वर्तमान का काल, राष्ट्र

किस प्रकार की आभा में है? परन्तु इन्होंने पुरातन काल का जो राष्ट्र अथवा उसका जो रूपान्तर किया है, उसको रूपक के रूप में जो उद्घृत किया है, वह प्रायः ऋषि-काल में रहा है। मेरे प्यारे महानन्द जी ने बहुत युक्ति संगत कहा कि राष्ट्र में रूढ़ियाँ नहीं होनी चाहिए। यह परमपिता के नामों की जो नाना रूढ़ियाँ बन जाती हैं, वे अपने में स्वाभिमान चाह करके अन्धकार में प्रवेश हो जाती हैं। तो इस प्रकार यह पुरातन काल में भी राष्ट्रों में ऐसा होता रहा है और जिस भी काल में हुआ, वह राष्ट्र अन्धकार में प्रवेश कर गया है। तो आज का विचार, अब यह समाप्त होने जा रहा है। हे यज्ञमान! जैसा पुत्र ने कहा है, मेरा तो यही आशय है कि तेरे जीवन का सौभाग्य पवित्रता में परिणित रहे! आज का विचार समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन।

श्री वैजनाथ अबरोल,
पंजाबी बाग,
१४-४-८५

याग-अनिवार्यता

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष, पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही उस मनोहर वेदवाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेदवाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा महिमावादी हैं और वह यज्ञोमयी स्वरूप माने गये हैं। मानो याग उसका आयतन है, उसका गृह है और उसका सदन है, और प्रायः वह उसी मे वास कर रहा है।

याग में व्यापकवाद

आज का हमारा वेद-मन्त्र उस परमपिता परमात्मा के यज्ञोमयी स्वरूप का वर्णन कर रहा है और यह कह रहा है कि वह परमपिता परमात्मा यज्ञों में निहित रहते हैं, क्योंकि यागों का अभिप्रायः यह है—जहाँ व्यापकवाद हो और उस व्यापकवाद की आभा में एक याग उसमें ओत-प्रोत रहता है। क्योंकि जैसे **मानव का एक अनुपम विचार होता है और उसका समन्वय हृदय से होता है और हृदय का समन्वय जब ज्ञान में परिणित हो जाता है, अथवा ज्ञान से सम्बन्ध हो जाता है, तो हृदय में**

एक व्यापकवाद आ जाता है और मानव के हृदय और परमात्मा के हृदय का, दोनों का समन्वय हो जाता है, तो मानो वह अपने में अभ्युदय हो जाना है। और, वह मानव इस संसार को यज्ञों में ही परिणित कर देता है, क्योंकि व्यापकवाद का नाम ही एक याग के रूपों में वर्णित किया गया है।

संसार रूपी यज्ञशाला

आज का हमारा वेद-मन्त्र उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गान गा रहा है और परमात्मा के गुणों का वर्णन कर रहा है, क्योंकि परमपिता परमात्मा ने यह जो संसार है, यह एक प्रकार की यज्ञवेदी के रूप में मानो इसका गठन किया है और इसका निर्भाण किया है। क्योंकि वही निर्माणवेत्ता है, तो वह उसी में रत रहने वाला है, इसीलिए यह जो संसार रूपी यज्ञशाला है, यह परमात्मा का गृह है और सदन है, मानो देखो वही उसमें वास कर रहा है। इसीलिए हम परमपिता परमात्मा को और उसके क्रियाकलापों को यज्ञोमयी स्वीकार करें और अपने में याज्ञिक बन करके अपने जीवन को महान् बनाते रहें।

याग-विविधा

एक आचार्य अपने ब्रह्मचारी को शिक्षा दे रहा है, मानो वह याग में परिणित हो रहा है। विद्यालय में शिक्षार्थी को एक शिक्षा

में परिणित करने वाला है, वह मानो देखो, ज्ञान-विज्ञान में उसे परिणित कर रहा है, तो यह भी एक प्रकार की यज्ञवेदी है, क्योंकि वहाँ निर्माण हो रहा है। जैसे माता अपनी लोरियों का पान करा करके अपने बाल्य का निर्माण करा देती है, इसी प्रकार प्रत्येक मानव अपने में यागों में परिणित रह करके इसको यज्ञोमयी स्वीकार करके, मानो देखो इसमें रत रहना चाहिए।

याज्ञवल्क्य आश्रम में याग-शिक्षा

आओ, मेरे प्यारे! आज मैं तुम्हें महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज के विद्यालय में ले जाना चाहता हूँ, जहाँ विद्यालय गें, मानो देखो, नैतिक-शिक्षा में वह प्रायः प्रातःकालीन् यागों का आयोजन किया करते थे। हमारे यहाँ, विद्यालयों में सबसे प्रथम मानो ब्रह्मचारी को जब शिक्षा प्राप्त होती, तो उसके पश्चात् उसे याग का सब विधानवत् वर्णन करते रहे हैं।

याग में नैतिकवाद

मुनिवरो! देखो, मुझे वह काल स्मरण है, जब महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने विद्यालय में ब्रह्मचारियों के मध्य में विद्यमान हो करके शिक्षा दे रहे थे। क्योंकि आज मुझे याग के ऊपर अपना कुछ विचार-विनिमय करना है; याग की मुझे कहीं से प्रेरणा प्राप्त हो रही है, उसी प्रेरणा के आधार पर आज मैं यागों के सम्बन्ध में अपना कुछ मन्तव्य देना चाहता हूँ। यूँ तो

भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का आयोजन होता रहता है, परन्तु आज केवल यह कि वह जो नैतिक शिक्षा में मानो प्रायः यागों का आयोजन किया जाता है, महर्षि याज्ञवल्क्य मुनि महाराज अपने विद्यालय में विद्यमान हो करके, ब्रह्मचारियों को जब वेद-मन्त्रों का उद्गीत गाते और यह कहते रहे हैं कि "हे ब्रह्मचारियो! तुम प्रातःकालीन् अपने जीवन को यज्ञमयी वेदी स्वीकार करके, अपने जीवन को महान् बनाने की चेष्टा करो, उसी में रत रहने का प्रयत्न करो।" तो जब इस प्रकार, मुनिवरो! ब्रह्मचारियों को वह शिक्षा दे रहे थे कि **"तुम प्रातःकालीन् याज्ञिक बनो और तुम्हारा जीवन जो परमपिता परमात्मा ने निर्माण किया है, वह एक यज्ञशाला के रूप में है और वह यज्ञशाला में ही रमण करने वाला है, उसमें तुम सदैव रत हो जाओ।"**

सुविधा में याग–अपरिहार्यता

इस प्रकार जब ब्रह्मचारियों को वह शिक्षा दे रहे थे, तो एक यज्ञदत्त नाम का ब्रह्मचारी उपस्थित हुआ और यज्ञदत्त ने कहा कि "हे भगवन्! हम याग कैसे करें? क्या-क्या साकल्य होना चाहिए।" तो उस समय ऋषि ने कहा, "तुम्हारी यज्ञशाला हो और यज्ञशाला भी भिन्न-भिन्न प्रकार के कोणों वाली होती है, परन्तु यज्ञशाला दस खम्बों वाली हो और यज्ञशाला मानो देखो, सुन्दर सजातीय होनी चाहिए और उसके पश्चात् तुम्हारा साकल्य

हो। गो-रस, मानो देखो, गो-घृत हो और श्रद्धामयी तुम्हारा जो घृत है, उसमें ओत-प्रोत हो करके, तुम प्रातःकालीन और सायंकालीन्, जब भी तुम्हें समय प्राप्त हो, उसके पश्चात् तुम प्राणों की आहुति देना प्रारम्भ करो, क्योंकि प्राण ही हमारे यहाँ एक देवत्त्व कहलाया जाता है।''

वह कहता है, 'यज्ञमानं ब्रह्मणं वृत्ते' ब्रह्मचारी कहता है, देखो 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा' 'समानाय स्वाहा' और वह 'उदानाय स्वाहा' कह करके अपने प्राणों को उद्बुद्ध करता है। **तो मुनिवरो! देखो, ब्रह्मचारी का जब प्राण उद्बुद्ध हो जाता है तो वह विद्या रूपी जो तरंगें उसके हृदय में से उत्पन्न होने लगती हैं और वह विद्या को ग्रहण करता है।** अपने में महानता के लिए सदैव उपास्य और 'उपां व्रते', देखो, उसी में रत रहने का प्रयास करता है।

मेरे प्यारे! देखो, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज ने कहा कि—''तुम्हारा साकल्य हो, इसमें अन्न हो, जिसमें श्रद्धा रूपी मानो घृत भी हो और वह स्थूल रूप में भी घृत के द्वारा तुम याग करो।'' जब इस प्रकार, मुनिवरो! देखो उन्होंने कहा, तो वे बड़े प्रसन्नचित हुए। और, उन्होंने कहा, ''तुम्हारी दस खम्भों वाली यज्ञशाला होनी चाहिए, जैसे परमपिता परमात्मा ने यह जो ब्रह्माण्ड की जब रचना की है, संसार रूपी यज्ञशाला की, तो मानो यह दस खम्भों वाला एक ब्रह्माण्ड कहलाया जाता है, जो दसों प्राणों के प्राण रूपी

खम्बों के ऊपर स्थिर रहता है और इसमें मानो एक-दूसरे में प्राणी आवास कर रहा है, प्राणी मात्र एक-दूसरे में ओत-प्रोत हो रहा है।"

असुविधा में याग-नैतिकता

ब्रह्मचरिष्यामी के लिये भी अनिवार्य–समिधा-याग

इस प्रकार, मुनिवरो! देखो, जब ऋषि ने कहा तो यज्ञदत्त ने कहा "हे प्रभु! हम यह जानना चाहते हैं कि जब मानो कहीं यज्ञमान एक यज्ञ करना चाहता है और उसको यह सुविधा नहीं है कि यज्ञशाला भी नहीं है और देखो साकल्य भी नहीं है, तो वह, भगवन्! याग कैसे करे?" **उन्होंने कहा, "यज्ञमान को चाहिए कि वह यज्ञ करना चाहता है, चाहे वह ब्रह्मचारिष्यामी हो, परन्तु देखो, वह अग्न्याधान करे और अग्नि में मानो देखो समिधा के द्वारा याग करे।** समिधाओं के द्वारा याग करता हुआ कहे 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा' 'समानाय स्वाहा' 'उदानाय स्वाहा' कह करके हूत करना चाहिए। अग्नि प्रदीप्त हो रही है, क्योंकि अग्नि देवताओं का मुख माना गया है। अग्नि में ही मानो देखो सर्वत्र 'अमृतं ब्रह्मे' यही अग्नि मानो देखो माता के गर्भस्थल में जब प्रदीप्त होती है, तो इसी अग्नि को पान करता हुआ, मानो देखो, शिशु अपने में अग्निमयी स्वीकार करता है। वह यज्ञवेदी है, उसमें अग्नि प्रदीप्त हो रही है। इसी प्रकार अग्नि देवताओं का मुख होने से, मानो

देखो, वह देवत्त्व कहलाता है तो उसमें प्राणों की आहुति देनी चाहिए। **हे ब्रह्मचारियो! तुम्हें, मानो देखो, प्रातःकालीन् अपनी अग्नि को प्रचण्ड करने के लिए प्राणों को अपना साक्षी बनाना होगा और समिधाओं के द्वारा अग्नि प्रदीप्त करके तुम याग करो। वह अग्नि उस समय तुम्हारा एक आवृत्त बन जाता है, तो उसके द्वारा तुम याग करो। वही तुम्हारा वर्चस्व बन जाता है और वर्चस्वी बनना इस संसार में बहुत अनिवार्य है।"**

जल-याग की नैतिकता

उन्होंने कहा "हे भगवन्! हम यह जानना चाहते हैं कि जब मानो देखो अग्नि भी, कहीं मानो समिधा भी हमें प्राप्त न हो और अग्नि भी न हो तो भगवन्! यज्ञमान याग कैसे करेगा? हम उस याग को जानना चाहते हैं।" मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, "देखो, 'अग्नं ब्रह्मः' यदि अग्नि भी न हो, समिधा भी न हो, तो तुम मानो देखो, जल के द्वारा, जल को अंजलि में ले करके कहो, 'प्राणाय स्वाहा' 'अपानाय स्वाहा,' 'व्यानाय स्वाहा,' 'समानाय स्वाहा', 'उदानाय स्वाहा'।"

सृष्टि में जल-याग

यह जल तुम्हारा अमृत है यह जल ही तो मानो देखो बाल्य का ओढ़न और बिछोना रहता है। माता के गर्भस्थल में जब मानो

देखो शिशु होता है और शिशु के प्रवेश होते ही तो मानो देखो जल ही, आपो ही इसका ओढ़न रहता है, आपो ही आसन् रहता है, और आपो ही इसमें पाशे बन करके, मुनिवरो! ओत-प्रोत रहता है। इसीलिए जल को अंजलि में ले करके कहो, 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा', 'व्यानाय स्वाहा', 'समानाय स्वाहा', 'उदानाय स्वाहा।' कह करके और तुम हूत करने के लिए सदैव तत्पर हो जाओ और आहुति दो।'' मुनिवरो! देखो, यह आपो ही इस संसार का, इस ब्रह्माण्ड का अमृत कहलाया जाता है। वही अमृत है और वही वर्चस् है, वही मानो देखो, तुम्हारा उद्गीत है।

मुनिवरो! देखो, वेद का ऋषि कहता है कि ''तुम जल को अंजलि में ले करके याग करो। वेद-मन्त्रों का उद्गीत गाते रहो और अंजलि में जल ले करके 'स्वाहा' की ध्वनि होनी चाहिए जिससे वायु मण्डल तुम्हारे स्वाहा से परिणित हो जाये, उसमें भरण हो जाये। तो इस प्रकार का तुम याग करने के लिए सदैव तत्पर हो जाओ।''

तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, ''माता के गर्भस्थल में जब शिशु होता है, तो सब देवताजन रक्षा करने के लिए आपो का आश्रय ले करके ही मानो गमन करते हैं। यह 'प्राणं ब्रह्मः', मानो यही जल समुद्रों से ले करके मानो देखो वह वचर्स देवत्व बनाता है और यह जो चन्द्रमा है, यही आपो को ले करके, मुनिवरो! उसमें परिणित कर देता है, तो परिणाम यह है कि 'अमृतम्' देखो, यही

इसका ओढ़न है, यही विछोना है और यही पाशे बन करके, बेटा! इसी में हम वास करते रहते हैं।''

रज-याग–नैतिकता

मेरे प्यारे! देखो, जब ऋषि ने इस प्रकार वर्णन किया तो ब्रह्मचारी यज्ञदत्त बोले कि ''हे प्रभु! हम जानना चाहते हैं जब कहीं ऐसा हो कि हमें मानो जल भी प्राप्त न हो तो याग कैसे करें?'' उन्होंने कहा, ''तुम पृथ्वी की रज को अंजलि में ले करके उस समय कहो कि 'प्राणाय स्वाहा' 'अपानाय स्वाहा.....।' क्योंकि यह जो रज होती है, यह भी तो मानो माता के गर्भस्थल से क्या, मानव का जो निर्माण है, वह रज के द्वारा होता है। इसमें गुरुत्त्व होता है और उस गुरुत्त्व के द्वारा, जैसे वैज्ञानिकजन अपने में गुरुत्त्व परमाणु को ले करके याग करते हैं, इसी प्रकार हमें भी याग करना चाहिए और कहना चाहिए देखो 'अमृतम्' देखो 'इस पृथ्वी की रज को ले करके मैं याग कर रहा हूँ।''

पिण्ड-विज्ञान

मुनिवरो! देखो, यह पृथ्वी है, जो गुरुत्त्व-अमृत बन करके मानव को स्थूल बनाती है। जितना भी यह स्थूल जगत् मुझे दृष्टिपात् आ रहा है, चाहे वह लोक-लोकान्तरों के रूप में हो, चाहे माता के गर्भस्थल में मानो देखो स्थूल रूप में हो, जितना भी यह पिण्ड बन रहा है, वह आपो और देखो गुरुत्त्व के रूप में परिणित

दृष्टिपात् आ रहा है। तो हमें विचारना है कि हम गुरुत्त्व को ले करके पिण्डों को दृष्टिपात् करते रहें। एक मानव का पिण्ड बना हुआ है, जो माता के गर्भस्थल में जिसका निर्माण होता है। एक पिण्ड है, जो लोक-लोकान्तरों के रूप में दृष्टिपात् आ रहा है। यह सर्वजगत् एक पिण्ड के रूप में ही दृष्टिपात् आता है। हमें इस पिण्डाकार जगत् को दृष्टिपात् करना चाहिए। यह लिंगमयी ज्योति कहा जाता है। यह मानो देखो, अपने में ज्योतिमान् बन करके संसार को ज्योतियों में परिणित करता है। यह गुरुत्त्व की प्रतिभा में निहित रहता है। यह पृथ्वी का मानो देखो गुण माना गया है।

मेरे प्यारे! देखो, यह 'आपं ब्रह्मः' यदि तुम्हें जल भी प्राप्त न हो तो तुम पृथ्वी की रज को ले करके प्राण में प्राण को समेटते चले जाओ, तुम्हारा कल्याण हो जायेगा। तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने कहा, ''प्राणं ब्रह्मे वृत्तं अस्वतं देवा' क्या तुम मानो गुरुत्त्व को ले करके देवत्त्व को प्राप्त हो जाओ।''

केवल वाणी से याग की नैतिकता

मेरे प्यारे! देखो, जब उन्होंने यह श्रवण किया और उन्होंने यह विवेचना की, तो ब्रह्मचारी यज्ञदत्त ने कहा, ''प्रभु! हम जानना चाहते हैं, यदि कहीं हमें, गुरुत्त्व भी न प्राप्त हो, हमें पृथ्वी की रज भी प्राप्त न हो, भगवन्! तो याग कैसे करें?'' उन्होंने कहा, ''यदि तुम्हें यह भी प्राप्त न हो, तो तुम शान्त-मुद्रा में विद्यमान

हो जाओ और उसमें देखो अपनी वाणी से कहो 'प्राणाय स्वाहा', 'अपानाय स्वाहा' 'व्यानाय स्वाहा', और देखो 'समानाय स्वाहा' उच्चारण करके 'उदानाय' कह करके तुम हूत करना प्रारम्भ करो। 'स्वाहा' उच्चारण करते रहो, क्योंकि जो परमात्मा का अनूठा जगत् है, यह परमात्मा की प्रतिभा कहलाई जाती है।''

''हे ब्रह्मचारियो! तुम वेदमन्त्रों का उद्‌गीत गाते रहो और वेद-मन्त्रों का उद्‌गीत गाने से यह वायुमण्डल तुम्हारा पवित्रता को प्राप्त हो जायेगा, क्योंकि वेद-मन्त्रों का उद्‌गीत गाने से तुम जब स्वाहा उच्चारण करोगे तो वायुमण्डल में तुम्हारी यह जो ध्वनि है यह जाती रहेगी। यह अशुद्ध ध्वनियों को निगलती हुई और उसका शुद्धिकरण करती चली जायेगी इसलिए तुम मानो देखो वेद-मन्त्रों का उद्‌गीत गाते रहो। शान्त-मुद्रा में विद्यमान हो करके, एकान्त स्थली में विद्यमान हो करके, तुम उस अपने 'हूत' को वायुमण्डल में त्यागने वाले बनो, जिससे तुम्हारा मानवीय जीवन पवित्रता को प्राप्त होता चला जाये।''

इसीलिए वेद का ऋषि कहता है, ''हे ब्रह्मचारियो! तुम मानो देखो मन-कर्म-वचन को एकाग्र करते हुए एकान्त स्थली में, मानो अपने को एकान्त में ले जाओ और मन को देखो प्राण से समन्वय करो और देखो मन और प्राण का आत्मा से समन्वय, हृदय से उसका समन्वय हो जाये, जिससे तुम अपने अन्तर्हृदय

में याज्ञिक बन करके परमात्मा की प्रतिभा को प्राप्त करने लगो।" बेटा! जब ऋषि ने इस प्रकार अपना मन्तव्य प्रकट किया तो ब्रह्मचारी बड़े प्रसन्न हुए और ब्रह्मचारियों ने कहा, "धन्य है!"

मेरे प्यारे! देखो, प्रत्येक दशा में मानव को वेद-मन्त्रों का उद्‌गीत गाना चाहिये, जिससे वाणी तुम्हारी पवित्र हो जाये और वायुमण्डल में वह ध्वनि मानो प्रवष्ठि करके अशुद्ध परमाणुओं को निगलती हुई चली जाये और उसका शुद्धिकरण हो जाये और, शुद्ध परमाणुओं से, मेरे प्यारे! परमात्मा का यह जगत् भव्यता को प्राप्त हो जाये।

विचार आता रहता है, मेरे प्यारे! आज मैं विशेपता में नहीं, याज्ञवल्क्य मुनि महाराज प्रातःकालीन् ब्रह्मचारियों को इस प्रकार नैतिक-शिक्षा प्रदान करते रहते थे, क्योंकि यह जो ज्ञान है, यह गम्भीरत्व में प्रवेश रहता है। ज्ञान के ऊपर जो मानव अपने जीवन को ज्ञानी बना देता है, वह अपने में महान् बन करके संसार से पार हो जाता है। अब मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, अब मेरे प्यारे! महानन्द जी दो शब्द उच्चारण करेंगे।

महानन्द जी के उद्‌गार—'ओ३म् यमा सर्वं भवितं देवं रथाः।'

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि मण्डल! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरुदेव गागर में सागर की कल्पना कर रहे थे अथवा गागर में सागर को भरण कर रहे थे। एक-एक

वाक्य की व्याख्या में बड़ा समय और उसमें बड़ी विचित्रताओं का जन्म होता रहता है। तो आज मैं विशेष विचार न देता हुआ विचार केवल यह कि आज जहाँ हमारी यह वाणी जा रही है, हमारा आकाश में विचार जा रहा है, उस स्थली पर एक याग का आयोजन हुआ है और मेरा अन्तरात्मा याग के ऊपर सदैव बड़ा प्रसन्न रहता है और मैं यह कहा करता हूँ, 'यज्ञं ब्रह्मः'।

मैं सदैव अपने यज्ञमान को अपनी वार्ता प्रगट करता रहता हूँ और यह कहा करता हूँ 'यजनं ब्रह्मः वरुणं ब्रह्मे वसुन्धरं ब्रह्मः वर्चस्वता', यह कहता रहता हूँ, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और सदैव प्रत्येक गृह में देखो द्रव्य का सदुपयोग होता रहे! जिस गृह में यागों के द्वारा, देखो, याग के द्वारा 'अमृतम्' द्रव्य का सदुपयोग होता है, वह गृह एक आनन्द और प्रकाश में चला जाता है। तो इसीलिए, हे यज्ञमान! तेरे जीवन की प्रतिभा बनी रहे और जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! ऐसा मेरा मन्तव्य रहता है।

वाममार्गीय समाज

वास्तव में तो देखो यह जो जगत् चल रहा है, यह वाम-मार्ग का जगत् है। मैं वाम-मार्ग उसे कहा करता हूँ, जिसमें मानव उल्टे मार्ग पर गमन कर रहा है, सुरा और सुन्दरी में गमन कर रहा है और अपने द्रव्य का दुरुपयोग करता हुआ वह सुरा में परिणित

हो रहा है। तो यह जगत् मानो देखो उल्टे मार्ग पर है। मैं उसकी विशेष आलोचना या अपने में उच्चारण नहीं करना चाहता हूँ, केवल यह कि यह जो जगत् है उसमें मैं इसको 'अमृतम्' देखो, यज्ञमान का सौभाग्य स्वीकार करता हुआ कहता रहता हूँ, हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और द्रव्य का तेरे गृह में सदुपयोग होता रहे! ऐसा मेरा मन्तव्य रहता है। क्योंकि वास्तव में तो आधुनिक काल का जो राष्ट्र है, वह वाम-मार्ग है और देखो यह जो जगत् है, समाज है उसका यह भी वाम-मार्ग की प्रतिभा में लगा हुआ हैं। आज मैं इस सम्बन्ध में विशेष नहीं, केवल यह कि उसमें अंकुर को, अपने में अंकुर जागरुक करना चाहिए। अंकुरित हो करके ही मानव देखो अपने में महान् बनता रहता है।

तो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने अभी-अभी गागर में सागर की कल्पना की। इनका विचार मानो एक बड़ा भव्यता में परिणित रहता है। आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ, केवल यह कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! द्रव्य का सदैव सदुपयोग होता रहे और तुम्हारा जीवन महानता में परिणित होता रहे! अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाऊंगा।

पूज्यपाद द्वारा उपसंहार

मेरे प्यारे ऋषिवर! अभी-अभी महानन्द जी ने अपना भव्य

विचार दिया। इनके विचारों में यज्ञमान के लिए अपना एक भव्यतम विचार रहा है। इनके विचारों में मार्मिकता और इनका हृदय प्रसन्नता में परिणित रहता है। इसीलिए आज का विचार हमारा क्या कह रहा है? **कि प्रत्येक मानव अपने में याज्ञिक बने। याग के कई प्रकार के स्वरूप होते हैं। विचारों में याग हो, कर्म में याग हो, वह महान् बना रहे।** आज का हमारा वाक्य अब सम्पन्न होने जा रहा है। शेष चर्चाएं कल प्रगट करेंगे। आज का वाक्य समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन होगा। आज के विचारों का अभिप्रायः यह कि हम याज्ञिक बनें और इस याग को व्यापक रूप से अपने में धारण करें, जैसे परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है; उसका यह संसार यज्ञमयी वेदी है। इसको इस प्रकार स्वीकार करके परमात्मा को हम एक-एक कण-कण में दृष्टिपात् करते हुए अपने को व्यापकवाद में ले जाएं। आज का विचार अब सम्पन्न। अब वेदों का पठन-पाठन होगा।

रजपुरा, मेरठ
११.१०.६१

याग से द्यौ-निर्माण

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, यह पाठ्यक्रम परम्परागतों से ही विचित्र माना गया है। क्योंकि नाना प्रकार से हम एक-एक ध्वनियों का, ध्वनित रूपों में वेद-मन्त्रों का गान गाते रहे हैं और नाना ऋषिवर अपनी-अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके इस वेदज्ञ ध्वनि के द्वारा अपनी मानसिक प्रवृत्ति को ऊर्ध्वा में ले जाने का प्रयास करते रहे हैं।

यज्ञोमयी पुरोहित

आज का हमारा वेद-मन्त्र यज्ञोमयी स्वरूप का वर्णन कर रहा है। मानो देखो वह परमपिता परमात्मा यज्ञोमयी स्वरूप है। याग उसका आयतन, उसका गृह, उसका सदन माना गया है। वह उसी में ओत-प्रोत रहने वाला पुरोहित कहलाता है। हमारे यहाँ पुरोहित के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न प्रकार की विवेचनाएं प्रायः होती रही हैं और वर्णनवेत्ताओं ने यह वर्णन किया है कि **जो पराविद्या को जानने वाला है, वह उस परमपिता परमात्मा की महती में सदैव रत रहा है। वह परमपिता परमात्मा पुरोहित कहलाता है। आज हम पुरोहित बनने के लिए सदैव**

तत्पर रहें। उस परमपिता परमात्मा को पुरोहित और जो पराविद्या में रत रहने वाला देवत्त्व है, उसको (भी) हम पुरोहित अपने में स्वीकार करते हुए 'यज्ञं ब्रह्मणं ब्रह्म कृतम्' मानो उस ब्रह्म की विवेचना में सदैव तत्पर रहें।

प्रेरणा स्रोत

आज का हमारा वेद-मन्त्र कुछ हमें प्रेरित कर रहा है। क्योंकि यहाँ प्रकृति का एक-एक कण एक-दूसरे कणों को प्रभावित करने वाला है और मानव तो विशेषकर प्रेरणा को प्राप्त करके ही प्रेरित होता हुआ नाना प्रकार की विवेचनाओं में और क्रियाकलापों में लगा रहता है। तो इसी प्रकार आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें कुछ प्रेरणा दे रहा है। 'यागां भवितां ब्रह्मणं यागां रुद्र भागः', मानो वेद का मन्त्र यह कहता है, 'हे मानव! तू याज्ञिक बन।' परमपिता परमात्मा ने इस संसार की जब रचना की तो मानो तभी से यह प्राणी मात्र यागों में परिणित रहा है।

याग

याग उसे कहते हैं, जो देवत्व से सम्बन्धित है और देवता जिससे महानता का दर्शन अपने में निहित करने लगते हैं। तो उसको 'यागां ब्रह्मणा' उसको याग कहा जाता है। एक-दूसरा प्राणी, प्राणी में ही ओत-प्रोत होता हुआ एक-दूसरे में इस ब्रह्माण्ड की कल्पना करता हुआ मानो वह अपने में 'यागां

ब्रह्माण्डजं यागा' वह याग माना गया है। प्रायः वास्तव में जब हम अपने में अपने पन और ब्राह्मण्ड को विचारने लगते हैं तो प्रायः ऐसा दृष्टिपात् होता है कि हम उस मनोनीत परमपिता परमात्मा, जो पुरोहित हैं, उसी की पराविद्या को अपने में धारण कर रहे हैं और याग में परिणित हो रहे हैं। जैसे आज का हमारा वेद-मन्त्र हमें यह प्रेरणा दे रहा है कि प्रत्येक प्राणीमात्र इस ब्रह्माण्ड में याज्ञिक बना हुआ है और वह याग करता रहता है। परन्तु **याग का अभिप्रायः यह है कि जितने भी सुक्रियाकलाप हैं, सुकर्म हैं, आत्मीय प्रसन्नता वाले जितने भी क्रियाकलाप हैं, उन सर्वत्र का नाम एक याग माना गया है।** मानो देखो जिनसे राजा अपने राष्ट्र में प्रजा को ऊँचा बनाना चाहता है और प्रजा में एक महानता की ज्योति देना चाहता है, तो मुनिवरो! देखो 'यागा ब्रह्मणं ब्रहे' वह प्रिय याज्ञिक बना हुआ है और वह याग कर रहा है।

मेरे पुत्रो! हमारे यहाँ भिन्न-भिन्न आचार्यों ने इस याग के सम्बन्ध में बड़ी अनूठी उड़ानें उड़ी हैं, क्योंकि आचार्यजनों का यह कथन रहा है कि "एक-एक शब्द में मानो देखो 'द्यौ लोक' का निर्माण होता रहता है।" "एक परमाणु में ब्रह्माण्ड का दर्शन होता रहता है," यह विज्ञानवेत्ताओं का एक कथन रहा है।

मुनिवरो! देखो, आज मैं याग के सम्बन्ध में तुम्हें, बेटा! एक

ऋषि के आसन पर ले जाना चाहता हूँ जहाँ ऋषि-मुनि अपने में बड़ा एक अनूठा अनुसंधान करते रहे हैं। मैंने यह वाक्य तुम्हें कई कालों में प्रघट किया है। बहुत समय मैंने इसकी पुनरूक्तियाँ भी की हैं परन्तु यह जब स्मरण आता है तो अन्तरात्मा, अन्तर्हृदय गद्-गद् हो जाता है। मेरे प्यारे! मुझे वह काल स्मरण आता रहता है।

वैशम्पायन का वेद-मन्थन

एक समय महर्षि वैशम्पायन ऋषि महाराज, मेरे प्यारे! महाराज अश्वपति के यहाँ से 'अश्वमेध याग' की सम्पूर्णता को प्राप्त करके अपने आश्रम में उनका पदार्पण हुआ। परन्तु देखो जब वह निद्रा की गोद में जाते थे तो ऋषि वेदों का अध्ययन करते-करते निद्रा में तल्लीन हो जाते। **मेरे प्यारे! देखो हमारे यहाँ, ऐसे ऋषि हुए हैं जो वेदमन्त्रों के द्वारा ही उद्‌गीत गाते हुए, गान गाते हुए, निद्रा में तल्लीन होते रहे हैं। परन्तु यदि वेद का मन्त्र उद्‌गीत रूपों में नहीं गया गया है, तो निद्रा से वञ्चित रहे हैं।** तो उनमें एक ऋषि महाराजा वैशम्पायन भी थे।

याग में द्यौ-दर्शन की जिज्ञासा

महर्षि वैशम्पायन, बेटा! कुछ वेद-मन्त्रों का उद्‌घोष अथवा उद्‌गीत गाते हुए मानो देखो जब सायंकाल के समय जब निद्रा

की गोद में जाने के लिऐ तत्पर हुए तो कुछ न्यौदा में मन्त्र उन्हें स्मरण आये और वह मन्त्र यह कहता है, 'यज्ञं ब्रह्मः देवस्सुतः प्रव्हा वाचन्नमं ब्रह्मः द्यौ लोका यज्ञमानं रथं ब्रहे', **मानो देखो यज्ञमान का रथ बन करके द्यौ लोक में प्रवेश करता है। स्वाभाविक है कि जो वेद-मन्त्र कहता है, तो द्यौ लोक वाले रथ को दृष्टिपात् करने की प्रायः उत्कण्ठ इच्छा बनी रहती** है। जब, बेटा! देखो ऋषि यह 'मननग्रहं' विचार करते हुए, बेटा! निद्रा की गोद में चले गये और मध्य रात्रि में जब जागरूक हुए मानो वही वेद-मन्त्र स्मरण आने लगे। वेद-मन्त्र कह रहा था कि 'यज्ञमान का रथ बन करके, वह रथ में विद्यमान हो करके, द्यौ लोक को जाते हैं।' मानो देखो, ऋषि कहता है कि—"वेद-मन्त्र तो मिथ्या हो नहीं सकता और इसका निर्णय कैसे किया जाये? साक्षात्कार कैसे दृष्टिपात् किया जाये?"

मेरे प्यारे! देखो ऋषि विचारने लगा और अपने चिन्तन में चिन्तनीय अपना एक विषय बनाया परन्तु देखो वह अपने में निपटारा नहीं कर सका। प्रातःकाल हो करके सूर्य उदय हो गया महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज का आश्रम निकटतम में था परन्तु उन्होंने विचारा, "ऋषि ने आसन् को नहीं त्यागा है, इसके मूल में कोई न कोई रहस्य विद्यमान है!" तो मेरे प्यारे! देखो महर्षि विभाण्डक मुनि महाराज अपने आश्रम को त्याग करके वह वैशम्पायन के द्वार पर पहुंचे और महर्षि वैशम्पायन मुनि से बोले, "कहो, भगवन्! आज अपने आसन् को नहीं त्याग रहे हो? इसके

मूल में क्या है?'' उन्होंने कहा, ''मैं प्रभु का दर्शन और यह विचार रहा हूँ कि 'वेदां ब्रह्मण चित्रं रथम्' मानो देखो यह चित्र बन करके द्यौ लोक में प्रवेश हो जाते हैं और यज्ञमान का रथ भी द्यौ लोक को प्रवेश करता रहता है। तो प्रभु! में उस द्यौ लोक वाले रथ को दृष्टिपात् करने की अभिलाषा से अनुसन्धान कर रहा हूँ। मेरी प्रबल इच्छा बन चुकी है।''

वैशम्पायन आश्रम में ऋषि-समुदाय

मेरे प्यारे! देखो इसी चिन्तन में विभाण्डक मुनि भी अपने विचारों में तत्पर होने लगे, परन्तु दर्शन तो वही रहा कि मानो देखो द्यौ लोक में रथ जाता है। अब साक्षात्कार कैसे दृष्टिपात् किया जाये? मेरे प्यारे! विचार-विनिमय होते हुए बहुत समय व्यतीत हो गया। मुनिवरो! देखो और भी नाना ऋषि और मुनियों का समाज आ पहुँचा, जिसमें ब्रह्मचारी कबन्धी और सुकेता जो बड़े महान विज्ञानवेत्ता थे और वे याज्ञिक भी कहलाते हैं। परन्तु महर्षि वैशम्पायन के द्वार पर त्रिवेत ऋषि महाराज और पारेत्वर और मोहिककृतिका, प्रवाहण, शिलभ और दालभ्य इन सर्वत्र ऋषि-मुनियों का आगमन हुआ।

ऋषि ने, प्रवाहण ने कहा, ''महाराज! यह क्या कारण है कि आप शून्यता को प्राप्त हो रहे हैं?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! हम शून्यता में नहीं हैं, वेदमन्त्र कहता है कि यज्ञमान का रथ बन करके द्यौ लोक को जाता है। उस द्यौ लोक वाले रथ को दृष्टिपात

करना चाहते हैं; क्योंकि विज्ञान के तथ्य भी इस प्रकार का निर्णय दे रहे हैं, आध्यात्मिकवादी भी इस प्रकार का अपना निर्णय दे रहे हैं, परन्तु हम अपने में कोई निपटारा नहीं कर पा रहे हैं। तो हे प्रभु! हमारी इच्छा यह है कि हम मानो रथ को साक्षात्कार दृष्टिपात् करना चाहते है।''

मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, "बहुत प्रियतम!" इसी विचार को ले करके उन्होंने एक विचार दिया कि "देखो हमारे समीप दो ऐसी स्थली हैं, जहाँ हम इसका निर्णय कर सकते हैं। एक तो उद्दालक गोत्र में शिकामकेतु हैं, जो उनकी पत्नी और वे पति, दोनों एक सौ पच्चासी वर्ष हो गये हैं, अनुसन्धान करते-करते। मानो और द्वितीय हमारे यहाँ भारद्वाज मुनि का आश्रम है। भारद्वाज मुनि के यहाँ ब्रह्मचारी अध्ययन करते हैं, वे भी निर्णय पर पहुँचा सकते हैं। परन्तु द्वितीय यह कि अयोध्या में जा करके क्रियात्मक याग की रचना हो और उसमें निमन्त्रण के कथनानुसार ऋषियों का आगमन हो तो मानो वे भी अपना कोई वक्तव्य प्रगट कर सकते हैं।" मेरे प्यारे! देखो इसी विचार को ले करके महर्षि वैशम्पायन मुनि ने विचारा, कि "अब कहाँ जाना चाहिये। मानो चलो अयोध्या में अपना गमन करते हैं और राम के द्वारा एक याग का आयोजन होना चाहिये।"

मेरे पुत्रो! देखो ऋषि-संकल्प को ले करके उन्होंने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते बेटा! सायंकाल का समय हो गया

तो 'सुनीति विश्वानं ब्रह्मे कृतं ब्रह्मः' मानो शौनक ऋषि आश्रम उन्हें प्राप्त हुआ। महर्षि वैशम्पायन और भी ऋषिवर शौनक मुनि के आश्रम में, बेटा! विराजमान हो गये। उन्होंने मानो उनका आतिथ्य सेवन किया। आतिथ्य करने के पश्चात निद्रा की गोद में चले गये। प्रातःकाल होते वहाँ से उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए, बेटा! अयोध्या में आ पहुँचे।

ऋषि समाज का अयोध्या-आगमन

हमारे यहाँ एक नियम माना गया है कि देखो इस अयोध्या में नाना प्रकार के यागों का आयोजन होता रहा है। नाना प्रकार के याग अपनी स्थलियों पर रमण करते रहे हैं। तो 'हे प्रह्ला सम्भवा वर्णनं ब्रह्मे कृतं ब्रह्मः' मानो देखो एक 'यागां सम्भवः' मेरे प्यारे! देखो राम का यह कर्त्तव्य था कि प्रातःकालीन यज्ञशाला में विद्यमान हो करके और यज्ञशाला में अपने में याग करते हुए मानो अपने में घोषणा, उद्घोष करते रहते थे।

राम की उपदेश-मञ्जरी

मुनिवरो! देखो जब वह ऋषियों का आगमन हुआ, याग तो सम्पन्न हो गया था, परन्तु देखो उपदेश-मञ्जरी प्रारम्भ हो गयी थी। राम का यह कर्त्तव्य था कि याग करने के पश्चात् कुछ उपदेश मञ्जरियों में परिणित होना। तो मेरे प्यारे! देखो जब उपदेश हो रहे थे, ऋषिवर अपने-अपने आसनों पर विद्यमान हो

गये; क्योंकि यज्ञशाला में ब्रह्मवेत्ताओं का आसन् भिन्न लगा हुआ था, ब्रह्मवर्चोसी, जो ब्रह्म का चिन्तन और मनन करने वाले थे, उनकी स्थली भिन्न थी। वे सब अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो गये।

राम का उपदेश चल रहा था। अपनी उपदेश मञ्जरी प्रारम्भ हो रही थी। राम यह उच्चारण कर रहे थे कि "हमें अपने राष्ट्र और समाज को ऊँचा बनाना है।" क्योंकि हमारे यहाँ, बेटा! **वैदिक साहित्य एक ऐसा साहित्य है, जहाँ आत्म-चर्चाएं और राष्ट्रवेत्ता बनाने के लिए भी प्रबल इच्छा रही है।** मानो देखो हमारे यहाँ प्रबल इच्छाओं में यह प्राणीमात्र लगा हुआ है।

मेरे प्यारे! देखो जब वह 'ऋषि अप्रतिं ब्रह्मः वृण ब्रहे केतुं हिरण्यं रथः', मेरे पुत्रो! देखो मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है, ऐसी कुछ प्रतीति हो रही है, जैसे बेटा! महर्षि वैशम्पायन अपनी स्थलियों पर विद्यमान हो करके ऊर्ध्वा में उड़ानें उड़ रहे हैं। परन्तु राम का उपदेश यह प्रारम्भ था, "हे राष्ट्रवेत्ताओ! तुम्हें अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना है और राष्ट्र उस काल में उन्नत होता है जबकि एक ही विचारधारा प्रजा में होती है। एकोकी विचारों का प्रादुर्भाव करने वाला मानो देखो द्वितीय पक्ष होता है।" तो मुनिवरो! देखो 'यज्ञं ब्रह्म कृतं विश्वा रूद्रो भागाम्', मेरे प्यारे! देखो, राम उच्चारण कर रहे थे कि "हमें अपने राष्ट्र को उन्नत बनाना है। राष्ट्र में अजामेध यागों का चलन होना चाहिये।

अश्वमेध यागों का चलन होना चाहिये परन्तु उससे हमारा राष्ट्र और विचार और 'विचारकृतम्' हम उसी में विचरण करते रहते हैं।"

संसार-सागर से पार होने का विधान

आओ, मेरे प्यारे! देखो ऋषि, अपने में उद्घोष करके उद्गीत गा रहे हैं, उच्चारण कर रहे हैं कि "हमें वास्तव में देखो अपनी प्रतिभा को ऊँचा बनाना है। राम का यह कथन है कि राष्ट्र में एक-दूसरा प्राणी, प्राणी का सहायक होना चाहिए। जैसे परमपिता परमात्मा ने इस सृष्टि का सृजन किया है—आपो जल को सहायता दे रहा है, आपो ही मानो देखो अग्नि को उज्ज्वल बना रहा है, अग्नि ही मानो देखो 'हिरण्यम्' अपने में गमन कर रही है और वह समाहित हो रही है।" तो मेरे प्यारे! देखो यह भव्य विचार देते हुए आचार्यजन कहते हैं, मानो देखो आचार्यजनों ने एक वाक्य कहा, कि **"हम प्रायः अपने में उज्ज्वल बन करके सागर में सागर से पार हो सकते हैं। और यदि हमारा उज्ज्वल स्वरूप नहीं रहा, तो हम इस संसार में मानो रत रहते रहेंगे।"**

तो विचार यह है, मेरे प्यारे राम उच्चारण कर रहे थे, "हे राष्ट्रवेत्ताओ! **राजा के राष्ट्र में, प्रत्येक गृह में, तुम्हारे यहाँ याग होना चाहिए। प्रत्येक गृह में सुगन्धि होनी चाहिए, जिससे तुम्हारा राष्ट्र पवित्र बन करके सागर से पार हो जाये।"**

मेरे प्यारे! देखो मुझे स्मरण आता रहता है, जब यह उद्‌घोष हो रहा था, यह विचार हो रहा था तो राम का यह कथन था कि हम अपने को ऊर्ध्वा में और 'ध्रुवाणी ब्रह्मणं ब्रहे', हम ऊर्ध्वा में अपने को ले जाना चाहते हैं। मेरे प्यारे! राम के बहुत से उपदेश ऐसी गम्भीर मुद्रा का वर्णन कर रहे थे। जैसे उन्होंने कहा, ''पवस्वां ब्रहे वृत्तम्' मानो देखो 'पवस्वा' का अर्थ नहीं जान पाते तो पवस्वा का मन्तव्य यह है कि मानव देखो अपने मन्तव्य को जान करके प्राणत्त्व और मनस्त्व को सम्मिलित करके मानो इसको जानना ही 'पवस्वा' कहलाता है।'' तो मेरे प्यारे! विचार क्या? मैं विचार यह तुम्हें देने के लिए गम्भीर मुद्रा में ले जाना नहीं चाहता हूँ, विचार केवल इतना है कि **हम अपने मानवीयत्व को ऊँचा बनाने के लिए और राष्ट्र को सम्पन्न बनाने के लिए तत्पर रहें और राष्ट्र में एक-दूसरा अपने-अपने क्रियाकलापों में निहित होता रहे।**

मेरे प्यारे! देखो वह राष्ट्र और मानवता की चर्चाएं प्रायः हुआ करती थीं परन्तु देखो इस स्थली पर आ जाओ, जहाँ मानव अपने में मानवीयता और हर्ष ध्वनि करता हुहा उद्‌गीत गा रहा है, उच्चारण कर रहा है कि ''हम अपने को द्यौ लोक में ले जाना चाहते हैं।'' तो रथ कैसे बनता है? मेरे प्यारे! देखो, राम का यह उपदेश जब सम्पन्न हो गया तो राम ने दृष्टिपात् किया, ''यहाँ तो ब्रह्मवेत्ता ऋषिजन विद्यमान हैं।'' उन्होंने बारी-बारी उन ऋषियों के चरणों को स्पर्श किया और कहा कि ''महाराज! आज

बिना सूचना के मेरे राष्ट्र में आपका आगमन हुआ है। मैं यह नहीं जान पाया हूँ कि आपका आगमन इस प्रकार क्यों हुआ है?" तो मेरे प्यारे! 'आगमनं ब्रहे कृतं प्रह्म वसु रूद्र भागं ब्रह्मः' महर्षि वैशम्पायन बोले कि "प्रभु! हम न्यौदा में से मन्त्रों का अध्ययन कर रहे थे परन्तु अध्ययन की प्रतिक्रिया में यह आता रहा है कि 'यागां ब्रह्मे कृता', याग होना चाहिए, क्योंकि याग में एक महानता का हमें प्रायः दर्शन हो रहा है।"

मेरे प्यारे! देखो जब ऋषि ने कहा कि "हम याग के लिये आये हैं। राम! तुम्हारे यहाँ एक याग होना चाहिये।" मेरे प्यारे! देखो 'ऋषि' ने ब्रह्म ऋषि के वाक्यों को पान करते हुए भगवान् राम ने कहा, "यह तो हमारा सौभाग्य है, हम अवश्य याग में परिणित होना चाहते हैं।" मेरे प्यारे! देखो राम 'यागां ब्रहे कृतम्' सभा विसर्जित हो गयी। ऋषि-मुनि अपने कक्ष में जा पहुँचे। अपने-अपने कक्षों में जा पहुँचे तो मुनिवरो! देखो ऋषि का जैसा आसन था, उसी प्रकार उसमें रत हो गये। विश्राम गृह में विश्रामशाला में विश्राम करने लगे।

अयोध्या में याग-योजना

मेरे प्यारे! देखो राम ने इतने समय में यज्ञशाला का भी निर्माण किया। यज्ञं ब्रह्मः यज्ञं रुद्रा यागां विष्णु कृतं रूद्र समः' मेरे प्यारे! देखो जब याग की प्रतिभा का जन्म हुआ, वेदी का निर्माण हो गया। यज्ञशाला में अपनी-अपनी आभा को ले करके

पाण्डित्व विद्यमान है। मेरे पुत्रो! देखो मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है, बेटा! आज कि मानो जैसे हम राम की उस यज्ञशाला में विद्यमान हों और राम का वह क्रियाकलाप चल रहा हो, प्रारम्भ हो। मेरे प्यारे! देखो, 'ऋषि' ने 'अभ्योम् ब्रह्मः कृतं देवाः', मेरे प्यारे! देखो राम का यही विचार रहता था कि "अश्वमेध याग में परिणित होना है और वृष्टि यागों को जानना है और ब्रह्मयाग को, मेरे प्यारे! अपने हृदय में धारण करना है।" तो बेटा! विचार आता रहता है, नाना प्रकार के विचार गम्भीर मुद्रा में मुद्रित होते रहते हैं।

मेरे प्यारे! देखो याग व्यवस्था का कार्य सम्पन्न हो गया 'यागाम्' उन्होंने यज्ञशाला का निर्माण किया और निर्माण करके, बेटा! देखो उसमें नाना पाण्डित्व विद्यमान हो गये और विद्यमान हो करे जैसे, मुनिवरो! उन्होंने याग का प्रारम्भ किया, न्यौदा में मन्त्रों का उद्गीत गाया, तो मेरे प्यारे! देखो उसमें आनन्दयुक्त अपनी क्रियाओं में दृष्टिपात् व कृतियों में दृष्टिपात् नहीं हुआ। तो मेरे मुत्रो! मुझे कुछ ऐसा स्मरण आ रहा है, ऐसा प्रतीत हो रहा है जैसे मानो हम देखो यज्ञशाला का दिग्दर्शन कर रहे हों। मेरे प्यारे! जैसे ब्रह्मपुरी, मानो देखो साक्षात ब्रह्मा का आसन आ गया हो। याग प्रारम्भ होने लगा। याग में नाना और भी घटित घटनाएं होती रहती हैं।

मेरे प्यारे! देखो जैसे 'यागां ब्रह्मणे वृत्तं' याग का उन्होंने

प्रारम्भ किया तो याग में एक मन्त्र आया, 'चित्रो रथं ब्रह्मः चित्रं रूद्र वाचस्सुत प्रह्ना कृतं लोकाम्' मेरे प्यारे! व[illegible] का मन्त्र बड़ी अनूठी वार्ता प्रगट कर रहा है। हृदय में ज्ञान देने वाला वह चैतन्य देव है। वे हृदयङ्गम हो करके मानो एक उद्गीत गा रहे थे, 'सम्भवं ब्रह्मः चित्रं रथ ब्रहे वस्वञ्जनम्!' उन्होंने कहा, ''प्रभु! यह वेदमन्त्र यह कहता है कि यह याग का रथ बन करके द्यौ लोक को जाता है। प्रभु! उस द्यौ लोक वाले रथ को साक्षात्कार दृष्टिपात् करने के लिए आये हैं।''

मेरे प्यारे! देखो राम ने कहा, ''प्रियतम्!'' यह 'प्रियतम' का वाक्य तो उन्होंने प्रगट किया परन्तु ऋषि-मुनि अपने में निर्णय देने लगे। राम ने यह उद्घोष कर दिया, ''जब तक मुझे प्रभु, इसका दर्शन नहीं होगा तब तक मैं मानो देखो स्थली को नहीं त्यागूंगा।'' तो मेरे प्यारे! देखो 'यागां ब्रह्मः वसु सम्भवम्' वेद का मन्त्र, कहता है कि 'यज्ञमान का रथ बन करके द्यौ लोक को जाता है' तो मेरे प्यारे! वे इसी चिन्तन में लग गये। समय व्यतीत होने लगा। यही चिन्तन देखो आनन्द जल मग्न होने लगा कि हम 'यागां ब्रह्मे' हम कैसे यह स्वीकार करे?

अयोध्या-याग में महर्षि भारद्वाज

मेरे प्यारे! देखो विचार चलता रहा। इतने में याग शांत हो गया और इतने में महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज अपने अस्त्रों-शस्त्रों से क्या, अपने वाहनों में विद्यमान हो करके वहाँ

विराजमान हो गये। जब वहाँ विराजमान हो गये, "ब्रह्मण प्रह्मा सम्भवं लोकां वाचा' मेरे प्यारे! देखो भारद्वाज मुनि ने कहा, "हे राम! मैं तुम्हारे निमन्त्रण पर आया हूँ। परन्तु तुम्हारा याग शान्त क्यों हो रहा है? तुमने अग्निहोत्र नहीं किया है?" उन्होंने कहा, "प्रभु! अग्नि होत्र तो मैंने कर लिया है, परन्तु वेद-मन्त्र मुझे स्मरण आ रहे हैं और वह वेद-मन्त्र यह कहते हैं कि 'यज्ञमान का रथ बन करके द्यौ लोक में प्रवेश करता है' तो मैं उस द्यौ लोक वाले रथ को दृष्टिपात करना चाहता हूँ? भगवन्!" तो मेरे प्यारे! उन्होंने कहा, "बहुत प्रियतम।" 'ब्रह्मा वाचः सम्भवे'।

मेरे पुत्रो! मुझे ऐसा स्मरण आ रहा है कि भारद्वाज ने कहा, "हे राम! तुम यह जो शब्द उच्चारण कर रहे हो कि मैं रथ को दृष्टिपात् करना चाहता हूँ, तुम ब्रह्मवेत्ताओं का अपमान तो नहीं कर रहे हो? क्योंकि ब्रह्मवेत्ताओं का अपमान देखो सहन नहीं हो पायेगा। तो मैं जानना चाहता हूँ, तुम अपमान तो नहीं कर रहे हो?" राम ने चरण वन्दना करते हुए कहा, "प्रभु मेरे में इतनी सत्ता कहा हैं, जो मैं इन ब्रह्मवेत्ताओं का अपमान कर सकूं? मैं तो इनके चरणों की धूलि हूँ, चरणों की वन्दना करता रहता हूँ, प्रभु!'

मेरे प्यारे! देखो, यह वाक्य श्रवण करके भारद्वाज मुनि ने देखो ब्रह्मचारी रोहिणीकेतु और ब्रह्मचारिणी शबरी को कहा, "जाओ, कजली वनों से, अपनी विज्ञानशाला से वैज्ञानिक यन्त्रों

को लाया जाये।'' आज्ञा की देरी थी, बेटा! दोनों ने अपने वाहनों पर विद्यमान हो करके अपने आश्रम से कुछ अस्त्र-शस्त्र लिये, चित्र लिये वह उनको 'वर्णन गमनं प्रवाः', उन्होंने, दोनों ने वहाँ से गमन किया और भ्रमण करते हुए वे अयोध्या में आये।

द्यौगामी याग-रथ-चित्रों का दर्शन

मेरे प्यारे! देखो उन्हें साक्षात्कार दृष्टिपात् कराया, 'ब्रह्मणं ब्रह्मणकृतं देवो सम्भवा',। उन चित्रावलियों को यज्ञशाला में स्थिर किया गया और यह कहा कि ''अब तुम याग का प्रारम्भ करो।'' मेरे प्यारे! 'अग्नि यागाम्' अग्नि का चयन किया, अग्नि प्रदीप्त हो गयी और उसमें साकल्य परिणित करने लगे, तो बेटा! यज्ञशाला में जब आहुति देने लगे, 'स्वाहा' उच्चारण करने लगे, तो बेटा! देखो अपने में अपनेपन का दर्शन करने के लिऐ तत्पर हो गये और महर्षि वैशम्पायन के हर्ष की कोई सीमा न रही कि मानो देखो जो उन्हें साक्षात्कार चित्रों में दृष्टिपात् होने लगा। और भारद्वाज ने कहा, ''तुम याग, करते रहो और तुम्हारे 'स्वाहा' के शब्द, अग्नि के साथ मानो देखो तुम्हारे चित्र द्यौ लोक में जा रहे हैं। तुम्हारी यज्ञशाला का जितना आकार बना हुआ है उसी आकार का रथ बन करके वह द्यौ लोक में प्रवेश कर रहा है। 'हे ऋषिवर! हे राम! यह दृष्टिपात् करो। तुम्हारा चित्र उसमें लय हो रहा है!''

राम बड़े प्रसन्न हुए मग्नचित्त हो करके उन्होंने कहा, ''धन्य

है, प्रभु! आपने मेरे अन्तर्हृदय को, अन्तर्हृदय में एक वेदना भरण की वह वेदना प्रायः मानो मेरे अन्तर्हृदय में विद्यमान रहती थी।"

भारद्वाज का विज्ञान-यन्त्र-कौतुक

मेरे प्यारे! देखो यह वाक्य जब 'सम्भवा ब्रह्मे वाचम्', "देखो, राम! मेरे यहाँ ऐसे-ऐसे यन्त्र विद्यमान हैं, ऐसी-ऐसी चित्रावलियाँ हैं, मानो देखो जो भी तुम क्रियाकलाप कर रहे हो, उसका साक्षात्कार आता है। **मानो देखो कोई भी किसी प्रकार का क्रियाकलाप प्रारम्भ करता है, वह क्रियाकलाप मानो देखो प्रायः उसी को प्राप्त होने लगते हैं।"** तो मेरे प्यारे! विचार आता रहता है, कितना अनूठा हमारे यहाँ राष्ट्रवेत्ताओं का क्रियाकलाप रहा है। मानो याग में कितनी निष्ठा होते हुए भारद्वाज मुनि महाराज ने अपना कौतुक उद्बुध किया और आगे 'सम्भवा कृतम्'। मेरे प्यारे! देखो ऋषियों ने अपना एक नियम बनाया, "यागां भवि यागां कि प्रायः हम इस याग का प्रारम्भ, अवश्य मानो देखो याग में परिणित हो जायेंगे।"

मेरे प्यारे! मुझे कुछ ऐसा स्मरण है, वह याग लगभग एक-एक रूद्रभामा में चलता रहा। **भारद्वाज कहते हैं, "मेरे यहाँ ऐसे-ऐसे यन्त्र हैं। राम! मानो एक-एक रक्त के बिन्दु से उस मानव का चित्रण होता रहता है, जिस मानव का वह रक्त का बिन्दु हो। एक-एक बिन्दु में ब्रह्माण्ड का दर्शन है।**

एक-एक बिन्दु में चित्रावलियाँ निहित रहती हैं। एक-एक बिन्दु में, बेटा! देखो राष्ट्र और मानवीय तथ्य उसमें निहित रहते हैं।'' तो मेरे प्यारे! देखो ऋषि अपने में अनुभव और 'स्वाहा' कहता है तो चित्रों का दर्शन कर लेता है और तरंगें याग में परिणित हो करके और यही 'यागाम्', यही याग मेरे प्यारे! देखो मानव को द्यौ लोक में पहुंचाता है, द्यौ लोक में प्रविष्ठ कराता है।

मेरे पुत्रो! देखो याग प्रारम्भ रहा। परन्तु 'यागां भव प्रणं ब्रह्मः कृतं यागां भविते सम्भवा', बेटा! एक वर्ष तक वह याग प्रारम्भ रहा। एक वर्ष के पश्चात् मानो वह सम्पन्न हो गया। वह याग सम्पन्न हो करके, बेटा! ऋषि-मुनि अपने में मौन हो गये।

मेरे प्यारे! देखो आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह वाक्य कि मानव प्रेरित होता रहता है। प्रेरणा के आधार पर अपने वाक्यों को उद्बुध करता रहता है। मानव प्रेरित होना चाहिए। नाना प्रकार के याग, नाना प्रकार की वृत्तियाँ, बेटा! उसमें निहित रहती हैं। आज मैंने कुछ मानो याग के सम्बन्ध में अपने विचार दिये हैं कि याग अपने में कितना अनूठा है। **वेद के मन्त्रों पर 'स्वाहा' की धारा पर, अग्नि की तरंगों पर, बेटा! देखो यज्ञशाला का रथ बन करके द्यौ लोक में प्रवेश हो जाता है।** इसे सिद्ध कराया। परन्तु आज मैं अपने में इन विचारों को अधिक न देता हुआ मेरे प्यारे महानन्द जी भी अपने

दो शब्द उद्गीत रूपों में गाने को तत्पर हैं, मानो देखो अपने 'वृत्त', देखो जैसे इनकी प्रबलता है।

महानन्द जी के विचार--मेरे पूज्यपाद गुरुदेव! अथवा मेरे भद्र ऋषि-मण्डल! मेरे भद्र-समाज! अभी-अभी मेरे पूज्यपाद गुरूदेव चर्चा कर रहे थे। प्रायः याग संसार में अपनी स्थलियों पर रहा है और इन चित्रों का दर्शन करना, यह प्रायः परम्परागतों से ही माना गया है, कोई यह नवीन नहीं है।

मेरा अन्तर्हृदय, मेरा अन्तरात्मा मानो यज्ञमान के साथ रहता है और मैं यह कहता रहता हूँ, "हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे! प्रायः मेरी अन्तरात्मा में यही सदैव भव्यता रही है। 'यज्ञं ब्रह्मः' **उस यज्ञ के यज्ञमान का सौभाग्य है, जिनके गृहों में मानो देखो देवपूजा के द्वारा, याग के द्वारा द्रव्य का सदुपयोग होता होगा।** क्योंकि प्रायः मानव के अन्तरात्मा की यह भव्यता है कि वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करता रहे और मेरे तो अन्तरात्मा की यह भव्यता है कि वह अपने द्रव्य का सदुपयोग करता रहे और मेरा अन्तरात्मा तो सदैव यह उद्गीत गाता ही रहता है।

बहुत समय हो गया महाभारत काल के पश्चात् इन यागों का ह्रास भी हुआ मानो इन यागों में मांसों की आहुतियाँ भी दीं और देखो उसके पश्चात् भी याग अपनी स्थलियों में, प्रायः कोई न कोई उद्बुधता इसकी करता ही रहता है। क्योंकि **याग ऐसा**

क्रियाकलाप है, अन्तरात्मा से जिसका समन्वय रहता है। यह अन्तरात्मा की मानो एक ध्वनि है और वह ध्वनित होती रहती है, उसी को प्राप्त करके अपने में महान और राष्ट्र को ऊंचा बनाना हैं। प्रायः मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव को यह वर्णन कराते हुए कहा कि 'यागाम् ब्रह्मः' मानो देखो जब राष्ट्र अपने में याज्ञिक बन जाता है तो समाज में भी याग का चलन प्रारम्भ हो जाता है।

राष्ट्र में रूढ़िवाद

देखो आधुनिक काल का जो राष्ट्र है, प्रायः मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने इससे पूर्व काल में रूढ़िवाद के सम्बन्ध में विवेचना प्रगट की थी। परन्तु प्रायः जो रूढ़िवाद है, वह समाज के एक अन्धकार के रूप में मानो देखो रूढ़ि विचरण कर रही है और वही रूढ़ि राष्ट्र को मानो देखो अन्धकार में पहुंचा रही है। मैं यह कहता रहता हूँ 'हे राजन्! यदि तू अपने राष्ट्र को ऊँचा बनाना चाहता है तो तेरे राष्ट्र में याज्ञिक पुरुष होने चाहिए। हे राजन्! यदि तू अपने राष्ट्र को शान्ति में परिणित करना चाहता है तो तेरा एकोकी विचार होना चाहिए। मानो देखो नाना प्रकार की ईश्वर के नाम पर, धर्मों के नामों पर नाना प्रकार की रूढ़ियाँ नहीं रहनी चाहिए। यदि रूढ़ि इस प्रकार पनपती रहती है, तो एक समय आता है कि राजा के राष्ट्र में रक्तभरी क्रान्ति का संदेह बना रहता है। समाज में एक रक्त भरी-क्रान्ति मानो प्रायः उत्पन्न होती रहती है।

राजा का अध्वर्युवाद

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुओं से, आचार्यों से यह श्रवण किया है कि राजा के राष्ट्र में अध्वर्यु होना चाहिए। 'अध्वर्यु' राजा को होना चाहिए, क्योंकि उसमें हिंसा नहीं होनी चाहिए। जैसे मेरे पूज्यपाद गुरुदेव ने वर्णन कराते हुए कहा था कि अध्वर्यु ऊँचा होना चाहिए। तो वह अध्वर्यु है, अपने में महान बनता रहता है। इस 'याग' का नाम ही अध्वर्यु कहलाता है। इसीलिए मैं यह कहता रहता हूँ, कि ह्रास और उसका उत्थान समय-समय पर होता रहा है। यही काल उत्थान का है, द्वितीय काल वही मानो देखो ह्रास का आ जाता है। तो इसीलिए आज का विचार केवल यह कि मैं विशेष व्याख्यान या विचार नहीं दूंगा, पूज्यपाद गुरुदेव को इतना उच्चारण करने के लिए आया हूँ कि हे यज्ञमान! तेरे जीवन की प्रतिभा महान बनी रहे और तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे। **द्रव्य का सदुपयोग करना ही द्रव्य की रक्षा करनी है। द्रव्य का दुरुपयोग करना ही द्रव्य को अपने से दूरी कर देना है तो इसीलिए द्रव्य का सदुपयोग होना चाहिए। याग इत्यादि क्रियाकलापों में मानव को सदैव तत्पर रहना चाहिए।**

रूढ़िवाद का निराकरण

मेरे पूज्यपाद गुरुदेव अभी-अभी याग के सम्बन्ध में जो अपना उद्घोष कर रहे थे, अपना विचार दे रहे थे, उनका मन्तव्य

भी यही रहता है कि जब राष्ट्र में भिन्न प्रकार की जब धर्म के ऊपर रूढ़ि बन जाती है तो रूढ़ियाँ अपने में लाभप्रद नहीं हुआ करती हैं। मैंने बहुत पुरातन काल में यह कहा था—राष्ट्र यदि अपने राष्ट्र को उन्नत और शान्ति की वेदी पर ले जाना चाहता है तो राजा को चाहिए कि प्रत्येक रूढ़िवादियों के धर्म के आचार्य, जो स्वीकार करते हैं, सब एक पंक्ति में विद्यमान होने चाहिए। राजा को उसकी मध्यस्थता करनी चाहिए और वे अपने-अपने विचार दें। जो मानो देखो जो रूढ़ि बन रही है, ईश्वर के नामों पर, वह उसके ऊपर शास्त्रार्थ होना चाहिए। मानो देखो राजा ब्रह्मवेत्ता हो, शास्त्रार्थी भी ब्रह्मवेत्ता के स्तर का होना चाहिए। मानो देखो जब शास्त्रार्थ होता है, अन्तिम परिणाम का निर्णय होता है और वह निर्णय राजा देता है। मानो देखो उसी को, सब मान्य हो करके, मानो देखो राष्ट्र का उत्थान और रूढ़िवाद को समाप्त करना चाहिये। जहाँ विज्ञान से मानो दर्शन का अहिंसा पर स्थिर रहने वाला अन्तिम सूत्र हो, उसको अपनाना राष्ट्र का कर्त्तव्य है। यह प्रजा का कर्त्तव्य है। प्रजा उसी के आधार पर अपने राष्ट्र को उन्नत बनाती रहती है।

तो परिणाम, मैंने बहुत पुरातन काल में यह वाक्य वर्णन करते हुए कि 'वृतम्' मानो देखो उद्घोष रूप में कहा था कि राष्ट्र को अपने में क्रियात्मक बन करके अपने में सागर से पार हो जाना चाहिए। मानो देखो रूढ़ि राष्ट्र का ह्रास करती रही है। राजा रावण के काल में भी देखो रूढ़िवाद की स्थापना हो गयी

थी। उससे पूर्व काल में भी रही, परन्तु रूढ़ियाँ नष्ट हो गयीं तो मानो एक विष्णु राष्ट्र की स्थापना हो गयी। देखो रूढ़ियाँ जब तक पनपती रहेंगी; एक मानव मानव के रक्त का पिपासी बना रहेगा। क्योंकि रूढ़िवाद में राष्ट्रवाद है मानववाद नहीं है, मानो उसमें क्रियावाद है परन्तु क्रिया को अपनाने का वाद नहीं है। इसीलिए मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से निर्णय देते हुए कहा था कि राष्ट्र को यदि उन्नत बनाना है, महान बनाना है तो राजा के राष्ट्र में यह भिन्न-भिन्न प्रकार की ईश्वर के नामों पर रूढ़ियाँ नहीं रहनी चाहिए। **यह रूढ़ि ही मेरी पुत्रियों के श्रृंगारों को हनन करने वाली है। यही रूढ़ियाँ मानो देखो राष्ट्र में रक्त भरी क्रान्ति लाती हैं। ये रूढ़ियाँ ही मानो देखो भिन्न प्रकार के अभ्योदय कराती रहती हैं, तो मानो देखो समय पर रक्त बहने लगता है।**

यज्ञ में रूढ़िवाद

तो विचार आता है, मैंने अपने पूज्यपाद गुरुदेव को कई कालों में विचार देते हुए कहा था कि रूढ़िवाद समाप्त होना चाहिये और मानवीय दर्शनों का उद्घोष होना चाहिए। मानो याग के ऊपर नाना प्रकार का आक्रमण हुआ है। आक्रमण का परिणाम यह हुआ कि यागों में, देखो 'अजामेध याग' में बकरी की आहुति देना, 'अश्वमेध यागों' में घोड़े की आहुतियाँ प्रदान करने लगे। 'गो-मेध यागों' में गऊ की आहुति देने लगे। यह

महाभारत काल के पश्चात् जो वाम मार्ग सम्प्रदायों का जन्म हुआ, मानो देखो उससे मानवीयता और याग का ह्रास होता रहा।

अश्वमेध याग

मैंने बहुत पुरातन काल में अपने पूज्यपाद गुरुदेव से वर्णन करते हुए कहा था कि यह जो वाममार्गीय समाज की प्रणाली है, यह प्रणाली महाभारत काल के पश्चात् आयी और अर्थों का अनर्थ, मानो देखो यह रूढ़िवाद बन गया है। मानो 'अश्वमेध याग' में घोड़े को, 'अश्व' स्वीकार कर लिया परन्तु अर्थ को जाना नहीं। 'अश्व' नाम राजा का है और 'मेध' नाम प्रजा का। दोनों मिलकरके जब क्रियाकलापों में तत्पर होते हैं, तो उसका नाम याग है। याग करते हैं, राष्ट्र और समाज को ऊंचा बनाने के लिए।

अजामेध याग

'अजामेध' कहते हैं, जो विजय न होने वाला हो, वह 'अजय' कहलाता है और मानो उसकी वृत्तियों का नाम 'मेध' कहलाता है। तो इस अर्थ को न जान करके अर्थों का अनर्थ करते हुए मानो देखो रूढ़िवाद पनपता रहा। रूढ़िवाद इतना पनप गया कि मानो देखो एक-दूसरा रूढ़ि-अरूढ़ि के वाक्यों को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं रहा। यथार्थता की वेदी पर जाने के लिए मानो अपने में हरित हो गया।

तो विचार आता रहता है, मैं विशेष चर्चा न देता हुआ

केवल यह देखो यहाँ अर्थों का अनर्थ हो करके, मानो वाक्यों में वृत्तियाँ रूढ़ि बन गईं और उस रूढ़ि का ह्रास होना चाहिए। रूढ़ि के सम्बन्ध में कई काल में पूज्यपाद गुरुदेव को मैंने वर्णन किया। आज मैं विशेष चर्चा न देता हुआ केवल यह कि आज मेरा अन्तरात्मा बड़ा प्रसन्न हो रहा है, जहाँ हमारी यह आकाशवाणी जा रही है। वहाँ मानो एक याग की सम्पन्नता, याग की प्रतिभा में दृष्टिपात् कर रहा था। मेरा अन्तर्हृदय प्रसन्न युक्त हो करके सूक्ष्म रूपों में रमण किये जा रहा था। तो मानो हे यज्ञमान! तेरे जीवन का सौभाग्य अखण्ड बना रहे और अन्य समय पर तेरे गृह में द्रव्य का सदुपयोग होता रहे, क्योंकि द्रव्य का सदुपयोग करना ही द्रव्य को प्राप्त करना है। द्रव्य का दुरूपयोग करना ही अपने से दूरी करना है। उसका ह्रास हो जाता है।

यह आज का विचार मैं इसलिए दे रहा हूँ कि विचार तो बड़े विश्वसनीय हैं परन्तु देखो राष्ट्र इससे दूरी जा रहा है। राष्ट्र मानो जब स्वयं हिंसक हो जाता है, तो अंहिसावादी कौन बनेगा? मानो देखो इसलिए राष्ट्र को हिंसक नहीं बनना चाहिए, अध्वर्यु बनना चाहिए जैसे पूज्यपाद गुरुदेव अध्वर्यु की चर्चा कर रहे थे। **जो हिंसा से रहित है, मानो जो अंहिसामयी है, वही तो 'अध्वर्यु' कहलाता है**। तो यह विचार अब सम्पन्न होने जा रहा है। अब मैं अपने पूज्यपाद गुरुदेव से आज्ञा पाता हूँ। समय-समय पर अपने विचार देता रहता हूँ और विचारों में जो मानवीयता, गम्भीरता मानो निहित रहती है उसको प्रत्येक मानव को चिन्तन

का अपना विषय बना लेना चाहिए। यह आज का वाक्य समाप्त। अब मैं अपने वाक्यों को विराम दे रहा हूँ।

पूज्यपाद द्वारा उपसंहार—मेरे प्यारे ऋषिवर! आज मेरे प्यारे महानन्द जी ने अपने विचार दिये। इनके विचारों में प्रायः राष्ट्र के प्रति जो वेदना बनी रहती है वह बड़ी भव्यतम है। तो आज का विचार यह सम्पन्न होने जा रहा है। विचारों में एक महानता का दर्शन, मानवीयता की वृत्तियाँ, विज्ञान के ऊपर अपना विचार और 'सम्भवोवृत्तम्', तो ऋषि-मुनियों ने बड़ा गम्भीर अध्ययन किया। वैशम्पायन जैसे ऋषियों ने गम्भीर अध्ययन करने के पश्चात् उन्होंने याग इत्यादियों का चयन और उसमें रमण करने के लिए तत्पर रहे हैं। तो आज का विचार अब समाप्त। अब वेदों का पठन-पाठन।

गंगा नगर, राजस्थान
६-३-८८

गो-मेधावी के याग

देखो, मुनिवरो! आज हम तुम्हारे समक्ष पूर्व की भान्ति कुछ मनोहर वेद-मन्त्रों का गुणगान गाते चले जा रहे थे। यह भी तुम्हें प्रतीत हो गया होगा, आज हमने पूर्व से, जिन वेद-मन्त्रों का पठन-पाठन किया। हमारे यहाँ, परम्परागतों से ही उस पवित्र वेद-वाणी का प्रसारण होता रहता है, जिस पवित्र वेद-वाणी में उस परमपिता परमात्मा की महिमा का गुणगान गाया जाता है, क्योंकि वह परमपिता परमात्मा अनन्त है और सूक्ष्मतम है। मानो यह जो ब्रह्माण्ड हमें दृष्टिपात् आ रहा है यह ब्रह्माण्ड उसका गृह है, उसका सदन है और वह उसी में वास कर रहा है। तो इसीलिए परमपिता परमात्मा का यह जो अनूठा जगत् है, इसको प्राणीमात्र अपने में विचार-विनिमय का एक विषय बनाए हुए रहता है।

प्राणी मात्र का विचार-विषय

हमारे यहाँ परम्परागतों से ही ऋषि-मुनि मानो इसको अपना विचार बनाते रहे और मानवीयत्व में सदैव निहित रहे हैं और विचारते रहे हैं कि–'यह संसार क्या है?' **मानो यह तो सार्वभौम सिद्ध है कि परमपिता परमात्मा का यह जगत् है और प्राणीमात्र इसमें वास कर रहा है और उस परमपिता परमात्मा के सम्बन्ध में वह भिन्न-भिन्न प्रकार से उसे अपने**

में सिद्ध करना चाहता है। सिद्ध करता भी रहता है और उसके पश्चात् भी शेष रह जाता है। कैसा विचित्र है, बेटा! यह जगत्! कैसा विचित्र है, यह मानवीयत्व! मानो अपना सर्वत्र जीवन हूत करने के पश्चात् भी उस ब्रह्म का विषय एक अनूठा बना ही रहता है।

आज, बेटा! मैं इस सम्बन्ध में कोई विवेचना या विशेष चर्चाओं में जाना नहीं चाहता हूँ, विचार केवल यह है कि आज का हमारा वेद-मन्त्र नाना प्रकार के यागों का वर्णन कर रहा था। हमारे यहाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों का चयन और चलन परम्परागतों से रहा है। मानो इसी संदर्भ में मानव अपने में भिन्न-भिन्न प्रकार के यागों के ऊपर चिन्तन और मनन करता रहता है और परमपिता परमात्मा ही उन यागों का स्रोत माना गया है। परन्तु इस सम्बन्ध में भी विशेष विवेचनाओं में जाने के लिए हम नहीं आये हैं, केवल यह कि आज का हमारा वेद-मन्त्र क्या कह रहा है? वेद-मन्त्र भिन्न-भिन्न प्रकार की विवेचना दे रहा है। मानो वेद-मन्त्र बड़ा अनूठा और मानवीयत्व से, दर्शन से गुथा हुआ होता है, जिससे मानव को विशुद्ध मार्ग प्राप्त हो जाये और उसका वह पथिक बन सके।

आओ, मेरे पुत्रो! हम तुम्हें शेष वार्त्ता न्यौदा में वेद-मन्त्रों का उद्गीत गाते हुए प्रकट करायेंगे। हमारे यहाँ, भिन्न-भिन्न प्रकार की चर्चाएं होती रही हैं। हमारे यहाँ एक न्यौदा में मन्त्र होते मानो न्यौदा को भी, हमारे यहाँ वैदिक-साहित्य कहा जाता है

और वह न्यौदा में से मन्त्रों का अध्ययन करने वाले, ऋषिवर अपने में एक-एक वेद-मन्त्र के ऊपर अन्वेषण, अनुसन्धान और अनुवृत्तियों में लगे रहते हैं। आओ, मेरे प्यारे! आज हम उस परमपिता परमात्मा की जो महती है, उसकी अनन्तमयी जो धारणा 'अब्रहे' है, मानो 'गो-मेध याग' के सम्बन्ध में विवेचना हो रही है। यही चर्चा महर्षि वशिष्ठ मुनि आश्रम में प्रायः होती रहती थी।

श्रोत्रिय और ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मचारी

जब ब्रह्मचारी विद्यालय में प्रातःकालीन् यागों में परिणित होते उसके पश्चात् याग के सम्बन्ध में प्रायः विचार-विनिमय होता रहता था। इस सम्बन्ध में माता अरून्धती उनका उत्तर देती रहतीं, कहीं वशिष्ठ मुनि महाराज भी मन्थन किये हुए शब्दों का उद्घोष करते रहते थे। परन्तु उनके यहाँ दो प्रकार के ब्रह्मचारी रहते थे—एक क्षोत्रिय ब्रह्मचारी थे और एक ब्रह्ममयी ब्रह्मचारी थे। मानो जो पठन-पाठन और अपने में अपने-पन की प्रतिभा में रत होना है, वे श्रोत्रीय ब्रह्मचारी थे; परन्तु एक ब्रह्मचारी वे हैं जो ब्रह्मज्ञान में रत रहना चाहते हैं। और, ब्रह्मज्ञान में भी कौन-सी प्रवृत्ति? ऐसी, जिसको अपनाने सेँ हम नम्रतम् और विचारतम्, अपनी गम्भीर मुद्रा में मुद्रित हो करके शान्त हो जाएं। मानो, वे ब्रह्मवेत्ता विद्यालय में उनके यहाँ प्रायः ब्रह्मश्रोत्रिय कहलाते थे।

मेरे प्यारे! यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की आभा में रत रहने वाले ब्रह्मचारी रहे। मानो पठन-पाठन की पद्धतियों में रमन करना

और उनमें रत रहना। एक वह 'करोति सतम्' वेद-मन्त्र के ऊपर अन्वेषण करते रहते थे, विचारते रहते थे। जब लोकों का वर्णन आता है, एक-एक वेद-मन्त्र में, बेटा! ब्रह्माण्ड का चित्र उनके समीप आता है। तो प्रायः वह पठन-पाठन की पद्धतियों में महानता का दर्शन करते रहे। एक वह जो 'ब्रह्मं ब्रहे', बेटा! चरणों में ओत-प्रोत हो करके प्रातःकालीन् आचार्य से यह प्रश्न करना—'प्रभु! हम ब्रह्म 'क्षेत्रीय' बनना चाहते हैं!'

महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्र की याग चर्चा

स्वाध्याय के दो स्वरूप

मेरे प्यारे ! देखो, महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने इसी वेद-मन्त्र को ले करके, 'गो सतं गो रूद्रं भवेतां गो-मेधां यागा', मेरे प्यारे! महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने दो प्रकार की विवेचनाएं प्रगट कीं। सबसे प्रथम जब ऋषि ने यह प्रश्न किया, "प्रभु! मैंने कजली वनों में और कहीं दण्डक वनों में बड़ा स्वाध्याय किया।" **स्वाध्याय के दो स्वरूप माने गये हैं। एक स्वतः अपना अध्ययन करना है और एक मानो देखो बाह्य-जगत् का अध्ययन करना है।** बाह्य-जगत् में मानो देखो, नम्रता और 'ओजस्वतम्', उसका अध्ययन करना है कि हम कैसे संसार में अपने जीवन को व्यतीत कर सकते हैं। एक वह है, जो अपने में मानो देखो ब्रह्म का दर्शन करना चाहता है।

मेरे प्यारे! दो प्रकार का स्वाध्याय बन गया एक अपना

अध्ययन, कि 'हम कौन है?' हमारे शरीरों में निर्माणशाला निर्माण करने वाला, यह कौन है, जो नाना प्रवृत्तियों को जन्म दे रहा है?' 'वह कौन है?' मानो देखो इस वाक्य के ऊपर प्रायः, बेटा! विचार-विनिमय होता रहा है। उन्होंने कहा कि अपना स्वतः अध्ययन करना, जगत् का अध्ययन करना और उसे अपने में समाहित करना। और, यौगिक मुद्राओं में परिणित हो करके वह मानो देखो आत्मलोक, मानो पंच महाभूतों का जो एक समूह है, जहाँ आत्मा का वह लोक, गृह और सदन बना हुआ है, उसके ऊपर प्रायः हम विचारते रहते हैं। तो मेरे प्यारे! देखो यह एक प्रकार का 'नृत्य' होता रहा है।

आज मैं तुम्हें विशेष विवेचना न देता हुआ केवल दोनों ऋषि-मुनियों के विचार परस्पर मानो एक गम्भीर मुद्रा में मुद्रित होते रहे। महर्षि विश्वामित्र बोले कि "प्रभु मैं ब्रह्मवादी और ब्रह्मनिष्ठ, मानो देखो नम्रता में जाना चाहता हूँ।" तो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि "प्रभु! यह जो रचना है, ब्रह्माण्ड की जो रचना है, इस रचना के ऊपर तुम विचार-विनिमय प्रारम्भ करो। जब वह रचनाकार को रचना में दृष्टिपात् करता है, रचनाकार को उसके गर्भ में दृष्टिपात् करता रहता है तब यह सम्भव हो जाता है।"

जग-जीवन का स्रोत

बेटा! अग्रणीय ऋषि आगे अपना अनुसन्धान मानो प्रबल वृत्तियों में रत्त करा देता है। वह कहता है, 'हे प्रभु! मैं यह जानना

और चाहता हूँ कि यह जो समाज है, यह जो राष्ट्रवाद है, राष्ट्रवाद से समाजवाद है, क्या हे प्रभु! यह कैसे जीवित रहता है? इसका मानो देखो जीवन का क्या स्रोत्र बना हुआ है?" **मेरे पुत्रो! देखो महर्षि वशिष्ठ ने कहा कि "हे विश्वसंब्रह्मणे! हे ब्राह्मण! मानो देखो यह जो ब्रह्माण्ड, यह जो राष्ट्रवाद है, इसका जो स्रोत्र है, इसका जो प्राण है, वह मानो देखो ब्रह्मवेत्ता ऋषि कहलाते हैं।** जिस राजा के राष्ट्र में ब्रह्मवेत्ता ऋषि होते हैं, ब्रह्म को जानने वाले, ध्वनि वाले मानो देखो गान के रूप में, वेदों का गान गाने वाले जब राजा के राष्ट्र में विवेकी पुरुष होते हैं, ब्रह्मक्षेत्रीय पुरुष होते हैं, तो राजा का राष्ट्र और समाज पवित्र बनता रहेगा। मानो देखो यह वैसे ही पवित्र नहीं बनता है। यह अग्नि की आभा में रत होने से ऊँचा बनता है।" तो महर्षि ने इसका जब यह उत्तर दिया, उन्होंने कहा, "प्रभु! यह कैसे मानो राष्ट्र में उत्पन्न किये जा सकते हैं।" उन्होंने कहा "राजा जब ब्रह्मवेत्ता होता है, राजा के मस्तिष्क में रूढ़ियाँ नहीं होतीं तो वह राष्ट्र मानो देखो समाज को ऊँचा बना देता है। 'ईश्वरं ब्रह्मे रूढ़ं कृतं ब्रह्मः', क्योंकि संसार में पालन-पोषण की रूढ़ियाँ हो सकती हैं, राष्ट्रवाद की भी रूढ़ियाँ बन सकती हैं, माता-पिता भी रूढ़िवादी बन सकते हैं, पुत्र भी रूढ़िवादी बन सकता है क्योंकि रूढ़िवाद से पालना होती है, परन्तु जब ईश्वर के नामों पर जिस भी काल में रूढ़ियाँ पनपी हैं, उसी काल में मानो देखो राष्ट्र का ह्रास होता रहा है।"

यज्ञमान का द्यौ

मुनिवरो! देखो ऋषि ने जब यह वाक्य उच्चारण करते हुए

कहा कि "हे ऋषिवर! मैं एक समय महर्षि उद्दालक गोत्र में पहुँचा। शिकामकेतु उद्दालक गोत्र में जब मैं पहुँचा तो मानो, हे ऋषिवर! वहाँ 'ब्रह्मचारी-वृत्ते सम्भवा' भारद्वाज मुनि महाराज विद्यमान थे और महर्षि भारद्वाज मुनि महाराज यह चर्चा कर रहे थे कि 'महाराज! यह जो विज्ञान है, यह पनप रहा है और विज्ञान में तुम्हारा बड़ा सहयोग रहा है क्योंकि तुमने अपनी विज्ञानशाला में मानो देखो अग्नि की धाराओं पर विद्यमान होने वाले शब्दों के ऊपर विचार-विनिभय किया है यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान है और वह अपनी दिव्या देवी से कहता है, हे दिव्या! आओ हम अपने शब्दों को मानो द्यौ-लोक में पहुंचाना चाहते हैं। जब यज्ञमान यज्ञशाला में विद्यमान हो करके यह कहता है तो शब्द उच्चारण करता है, वह मन्त्र के प्रारम्भ में और पश्चात् में जो मानो देखो एक ध्वनि उत्पन्न करता है, 'स्वाहा' की वह मानो देखो द्यौ-लोक में जाने वाली ध्वनि है। और, द्यौ-लोक में जाने वाली उस ध्वनि् में, उसमें चित्र हैं, उसमें मानो देखो वह क्रियाकलाप भी विद्यमान है, मानो देखो वही तो अपने में रत हो करके, द्यौ-लोक में प्रवेश हो जाता है। वह द्यौ-लोक का स्वामी बन जाता है।" मुनिवरो! देखो यह 'दिव्यां ब्रह्मे' कि यज्ञमान कहता है, "हे दिव्यासे! मानो हमारा यह जो शब्द है, ध्वनि है, इसको ही पवित्र बनाना है, क्योंकि ध्वनि से समाज ऊँचा बनता है। ध्वनि से वायुमण्डल ऊँचा बनता है और ध्वनियों से मानो देखो मानव के एक-दूसरे पर परस्पर विचार पवित्र बन जाते हैं।" मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने जब यह वर्णन किया, उन्होंने कहा "सत्यं ब्रह्मे!' हे प्रभु!"

आचार्य का गो-मेध याग

मैं गो-मेध याग के सम्बन्ध में विचार-विनियम कर रहा था, गो-मेध याग के ऊपर मेरा विचार चल रहा था। वेद के पठन-पाठन में गो-मेध यागों का बड़ा वर्णन है। तो मुनिवरो! देखो, ऋषि ने जब यह कहा, तो वशिष्ठ मुनि कहते हैं कि—"कौन-सा गो-मेध जानना चाहते हैं?" अब विश्वमित्र 'कौन से', मानो देखो वह गो-मेध याग को नहीं जानते थे। उन्होंने कहा, "प्रभु! मैं तो इस सम्बन्ध में कुछ नहीं जानता हूँ कि यह 'गो-मेध याग' कौन-सा जानूं। मैंने तो केवल एक ही गो-मेध माना है। प्रभु! मैं नाना गो-मेधों की नहीं जानता हूँ।" मेरे पुत्रो! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, "हे ऋषिवर! हे ब्रह्मवेत्ता! मानो देखो वह जो 'गो-मेध याग' तुम कह रहे हो, **वह तो साधारण गो-मेध याग है, वह तो मानो देखो पशु की सेवा करना है। मानो उससे 'पय' को पान करना है और अपने में तेजोमयी बन करके ओज की उत्पत्ति करना है। वह तो ऐसा एक गो-मेध याग है।**

उसका दूसरा रूप जो गो-मेध याग का है, वह यह माना गया है कि देखो आचार्य के संरक्षण में ब्रह्मचारी अपना अध्ययन कर रहे हैं और जब ब्रह्मचारी अपना अध्ययन करते हैं तो मानो देखो 'गो-मेध, गो-मेधां ब्रह्मण ब्रहे', **अन्धकारमय को मेधावी बनाने के लिए, जब मानो आचार्य तत्पर होते हैं तो ब्रह्मचारी, छात्र, छात्रिकाओं को वे मानो देखो 'मेध' में परिणित कर देते हैं।** 'मेध' कहते हैं बुद्धि को, उसे मेधावी बना देते हैं और

मेधावी बना करके, बेटा! एक गो-मेध याग यह कहा गया है। राजा के राष्ट्र में जो गो-मेध याग होता है, वह बड़ा विचित्र याग है। **गो-मेध याग का अभिप्रायः यह कि विद्यालय पवित्र हों और विद्यालयों में आचार्य गो-मेध यागी हों, जो गो-मेध में परिणित करने वाले हों। अन्धकार से जो प्रकाश में पहुँचाने वाला हो, वह गो-मेध यागी होता है।"**

इन्द्रियों का गो-मेध याग

मेरे प्यारे! देखो, विश्वमित्र मौन होने लगे। ऋषि ने कहा, "हे विश्वामित्र! तुम मौन क्यों हो गये हो? मानो देखो 'मेधावी' बनने के और भी नाना प्रकार माने गये हैं। एक मेधावी यह है कि अपने में मानो देखो बुद्धि और मेधावी बनने के लिए हम ऋतम्भरा के क्षेत्र में और प्रज्ञावी बन जाते हैं। वह प्रज्ञावी बन करके ही मानो देखो अपनी इन्द्रियों को गो-मेध में ले जाते हैं। **गो नाम इन्द्रियों का है और मेध नाम, मानो देखो इन्द्रियों के ज्ञान को जानना है, जो इन्द्रियों में समाहित रहता है।"** जैसे, मुनिवरो! देखो पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कहलाती हैं, उनमें रूप, रस और गन्ध, मानो स्पर्श और शब्द इसमें जो विद्यमान रहता है। मानो देखो उन शब्दों को जानना, उनमें कितना विस्तार है, कितनी प्रतिभा है। मानो उसे जानने का नाम, मेरे प्यारे! देखो 'मेधावी' कहा जाता है। जब हम 'मेधावी क्षेत्र' में रमण करने लगते हैं तो मानो उसकी प्रतिभा हमें प्रायः अपने में ही दृष्टिपात् आती रहती है।

आध्यात्मिक गो-मेध याग

तो विचार आता है, बेटा! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। ऋषिवर अपने आचार्यों से यह प्रश्न कर रहे हैं, ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए कि ''हे ब्रह्मे वाचन्नमम्! मानो देखो सर्वत्र इन्द्रियों का जो विषय है, जैसे नेत्रों का विषय 'रूप' है, श्रोत्रों का विषय 'शब्द' है, मेरे प्यारे! देखो घ्राण का 'सुगन्ध' और 'दुर्गन्ध' है, मुनिवरो! देखो, इसी प्रकार त्वचा का 'स्पर्श' है और, मुनिवरो! देखो 'रसों का स्वादन' लेना, वह रसना का विषय माना गया है। ये पंच मानो देखो इन्द्रियाँ हैं, पँच महायागों का एक स्रोत्र माना गया है। मेरे प्यारे! देखो, उनका साकल्य बना करके, इनका चरू बना करके और वह, मुनिवरो! देखो, जो आध्यात्मिकवेत्ता अपने हृदयों में, जो मानो ज्ञान रूपी अग्नि का प्रादुर्भाव हो रहा है, ज्ञान रूपी अग्नि अपने में 'ज्ञानान्तं ब्रह्मे', जिसकी योगीजन मानो अग्नि प्रदीप्त करके और इन्द्रियों के विषय को उसमें हूत कर देते हैं, बेटा! वह मानो देखो एक 'गो-मेध याग' है। तुम कौन-सा जानना चाहते हो? कौन से गो-मेध में रत होना चाहते हो?''

वैज्ञानिक का गो-मेध याग

एक 'गो-मेध याग' वह होता है, मानो सूर्य की किरणों को 'गो' कहा जाता है। उसकी कान्ति को भी 'गो' कहा जाता है। नाना प्रकार की सूर्य की कान्ति और रश्मियों को अपने में धारण करता हुआ उनका एकोकीकरण करके नाना प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों

को निर्माण करता हुआ, नाना प्रकार की अग्नि का चयन करता हुआ वैज्ञानिक, मानो देखो वह भी एक गो-मेध याग कर रहा है।"

माता का गो-मेध याग

मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने अपने वाक्यों में और बड़ी विशुद्ध विवेचनाएं कीं उन्होंने कहा, "हे ब्रह्मजब्रहे! एक 'गो-मेध याग' माता करती है। जब माता के गर्भ स्थल में मानो शिशु विद्यमान होता है तो देखो नाना रूपों में माता जो ज्ञान देती है। वह कहती है कि—'मैं, मानो देखो गौमेध याग करूँ।' तो 'गो' यहाँ, बेटा! देखो वह देवत्त्व को कहा गया है और वह जो मानो देखो शिशु है, वह उसमें परिणित हो रहा है।" तो मुनिवरो! देखो, माता जब अपने में विवेचना में रत हो जाती है, कहती है—'हे आत्मा! तू मेरे गर्भस्थल में विद्यमान है, तू गो के तुल्य है, मैं तुझे 'मेध' बनाना चाहती हूँ।' तो बेटा! देखो माता ज्ञान और विज्ञान का अध्ययन करती हुई अपने में मौन हो करके शान्त्वना को प्राप्त करती है। बेटा! वह बालक को जन्म देती है तो वह भी एक 'गो-मेध याग' कर रही है।"

आत्मवेत्ता का गो-मेध याग

आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना ना देता हुआ, आज मैं विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ केवल क्या, महर्षि विश्वमित्र और मुनिवरो! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, इन्होंने अपनी विवेचनाएं प्रगट कीं। उन्होंने कहा—" 'गो-मेधां', देखो यहाँ आत्मा

आध्यात्मिक गो-मेध याग

तो विचार आता है, बेटा! मैं विशेषता में तुम्हें ले जाना नहीं चाहता हूँ। ऋषिवर अपने आचार्यों से यह प्रश्न कर रहे हैं, ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए कि "हे ब्रह्मे वाचन्नमम्! मानो देखो सर्वत्र इन्द्रियों का जो विषय है, जैसे नेत्रों का विषय 'रूप' है, श्रोत्रों का विषय 'शब्द' है, मेरे प्यारे! देखो घ्राण का 'सुगन्ध' और 'दुर्गन्ध' है, मुनिवरो! देखो, इसी प्रकार त्वचा का 'स्पर्श' है और, मुनिवरो! देखो 'रसों का स्वादन' लेना, वह रसना का विषय माना गया है। ये पंच मानो देखो इन्द्रियाँ हैं, पँच महायागों का एक स्रोत्र माना गया है। मेरे प्यारे! देखो, उनका साकल्य बना करके, इनका चरू बना करके और वह, मुनिवरो! देखो, जो आध्यात्मिकवेत्ता अपने हृदयों में, जो मानो ज्ञान रूपी अग्नि का प्रादुर्भाव हो रहा है, ज्ञान रूपी अग्नि अपने में 'ज्ञानान्तं ब्रह्मे', जिसकी योगीजन मानो अग्नि प्रदीप्त करके और इन्द्रियों के विषय को उसमें हूत कर देते हैं, बेटा! वह मानो देखो एक 'गो-मेध याग' है। तुम कौन-सा जानना चाहते हो? कौन से गो-मेध में रत होना चाहते हो?"

वैज्ञानिक का गो-मेध याग

एक 'गो-मेध याग' वह होता है, मानो सूर्य की किरणों को 'गो' कहा जाता है। उसकी कान्ति को भी 'गो' कहा जाता है। नाना प्रकार की सूर्य की कान्ति और रश्मियों को अपने में धारण करता हुआ उनका एकोकीकरण करके नाना प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों

को निर्माण करता हुआ, नाना प्रकार की अग्नि का चयन करता हुआ वैज्ञानिक, मानो देखो वह भी एक गो-मेध याग कर रहा है।"

माता का गो-मेध याग

मेरे प्यारे! देखो ऋषि ने अपने वाक्यों में और बड़ी विशुद्ध विवेचनाएं कीं उन्होंने कहा, "हे ब्रह्मजब्रहे! एक 'गो-मेध याग' माता करती है। जब माता के गर्भ स्थल में मानो शिशु विद्यमान होता है तो देखो नाना रूपों में माता जो ज्ञान देती है। वह कहती है कि–'मैं, मानो देखो गौमेध याग करूँ।' तो 'गो' यहाँ, बेटा! देखो वह देवत्त्व को कहा गया है और वह जो मानो देखो शिशु है, वह उसमें परिणित हो रहा है।" तो मुनिवरो! देखो, माता जब अपने में विवेचना में रत हो जाती है, कहती है–'हे आत्मा! तू मेरे गर्भस्थल में विद्यमान है, तू गो के तुल्य है, मैं तुझे 'मेध' बनाना चाहती हूँ।' तो बेटा! देखो माता ज्ञान और विज्ञान का अध्ययन करती हुई अपने में मौन हो करके शान्त्वना को प्राप्त करती है। बेटा! वह बालक को जन्म देती है तो वह भी एक 'गो-मेध याग' कर रही है।"

आत्मवेत्ता का गो-मेध याग

आओ, मेरे प्यारे! मैं विशेष विवेचना ना देता हुआ, आज मैं विशेष चर्चा न प्रगट करता हुआ केवल क्या, महर्षि विश्वमित्र और मुनिवरो! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज, इन्होंने अपनी विवेचनाएं प्रगट कीं। उन्होंने कहा–" 'गो-मेधां', देखो यहाँ आत्मा

को जानना भी गो-मेध कहा गया है। आत्मा को कैसे जाना जाता है? यह बड़ा विचित्र एक प्रसंग है। बेटा! आत्मा तो क्योंकि चेतना है। आत्मा ज्ञान युक्त है और बेटा! देखो 'ज्ञान और प्रयत्न' इसका मौलिक गुण कहा जाता है। आज हम आत्मवेत्ता कैसे बनें? मानो देखो आत्मा को जानना, कि इस संसार को त्यागना होगा। **इस संसार से विमुख हो करके ही, मेरे प्यारे! देखो पांचों ज्ञानोन्द्रियों का साकल्य एकत्रित करके, देखो आत्मवत् बनना होगा और वह आत्मवत् बन करके ही, मेरे प्यारे! देखो 'आत्मा में आत्मा का दर्शन' करता है।** आत्मवेत्ता ही तो दर्शन करता है? बेटा! तो आओ, मेरे प्यारे! वह ब्रह्मवेत्ता कहलाता है।"

ब्रह्माण्ड के दर्शन में गो-मेध याग

मेरे प्यारे! देखो महर्षि वशिष्ठ ने कहा, **"जो प्रत्येक इन्द्रियों के विषयों को जानता है, इन्द्रियों के विषयों को जान करके लघु मस्तिष्क में प्रवेश करता है, रेणकेतु मस्तिष्क में प्रवेश करता है, और ब्रह्माण्ड का दर्शन करता है व्यापक रूप से, तो मानो देखो वह मेधावी बन करके 'गो-मेध याग' कर रहा है और गो-मेधावी बन करके, बेटा! अपने को अन्तरिक्ष में प्रवेश करा रहा है।"**

धनुर्याग

मेरे पुत्रो! देखो यहाँ महर्षि वशिष्ठ मुनि कहते हैं, "हे विश्वमित्र! देखो तुम्हें भी नाना प्रकार के यागों में परिणित होना

है। जैसे हमारे यहाँ धनुर्याग का वर्णन आता रहता है। मेरे प्यारे! जैसे गो-मेध है, इसी के अग्रतियों में रहने वाला भ्रमण करने वाला, एक याग है, जिसे 'धनुर्याग' कहते हैं। यहाँ अस्त्रों-शस्त्रों को धनु कहते हैं। यहाँ सूर्य की किरणों को 'धनु' कहते हैं और आत्मा को मानो देखो जिसका लक्ष्य ब्रह्म को प्राप्त करना है। मेरे पुत्रो! देखो वह अपने में देखो जैसे धनुष, बाण और एक तरकश मानो उसके लक्ष्य में एक ही ब्रह्म दृष्टिपात् आ रहा है।" तो आओ, मेरे पुत्रो! में विशेष विवेचना न देता हुआ, केवल यह कि हमारे यहाँ मेधावी और गो-मेध याग करना है, तो बेटा! जिस प्रकरण का जो प्राणी होता है, वह उसी प्रकार के यागों में प्रवेश कर जाता है।

आओ, मेरे प्यारे! महर्षि विश्वमित्र ने कहा, "धन्य है, प्रभु! आपने मेरे हृदय में प्रकाश कर दिया है! प्रभु मैं तो यह किसी-किसी काल में श्रवण करता रहता था। जब मैं सुनीत नामक राजा था तो मेरे यहाँ एक पुरोहित आया करते थे। वह पुरोहित मुझे एक गाथा प्रगट करते रहते थे। आज मुझे वह गाथा स्मरण आ रही है। आपने मुझे क्या बना दिया है!" मानो एक अलंकारिक वार्ता का एक यर्थाथ वाक्य स्मरण आता रहता है। एक समय मनु काल में मनु वंशलज में मानो एक राजा हुए हैं, कृतिक मनु नाम के एक राजा हुए हैं और वह कृतिक राजा अपने में मानो अयोध्या का राष्ट्र उनका एक कृतियों में रत होता रहता था। तो राजा के यहाँ मानो कृतिक राजा के राष्ट्र में मानो एक-दूसरे का कोई ऋणी नहीं था। एक-दूसरे में मानो एक-दूसरा अपनी प्रीति की चर्चा करता

रहता था। आध्यात्मिकवेत्ता, मानो ब्रह्मवेत्ता उनके राष्ट्र में देखो 'नृत्य' करते रहते थे।

एक समय मानो देखो राजा भ्रमण करते हुए, कृतिक राजा अपने सोम मन्त्री के सहित भ्रमण करने के लिए मानो राष्ट्र में भ्रमण करने लगे। जब भ्रमण करने लगे तो सायंकाल का समय हो गया। सायंकाल के समय में उन्होंने क्या दृष्टिपात् किया, कि उन्होंने मानो एक नदी के तट पर, एक जलाशय के तट पर मानो एक ऋषि जिसके कोई वस्त्र नहीं हैं, वह मानो नग्न है। वह अपने प्रभु का स्मरण कर रहा है। उस ऋषि का नाम श्रुति नाम के ऋषि थे। तो वह जो श्रुति नाम के ऋषि थे, वह तपस्या कर रहे थे। तो राजा ने अपने मन्त्री से कहा, "हे प्रभु! हे मन्त्री गण! मेरे राष्ट्र में तो कोई निर्धन नहीं है, मानो धनहीन नहीं है, कोई भी प्राणी 'ऐसा' नहीं है। यह कैसे मुझे धनहीन दृष्टिपात् आ रहा है?" मेरे प्यारे! वह जब मुद्रा ले करके पहुंचे तो मुद्राओं को दृष्टिपात् करते हुए उन ऋषि ने कहा, "अरे किसी दीन को दे दो।" उन्होंने कहा, 'ब्रह्मणे वृत्तः'। बेटा! मुद्राएं ले करके वह मन्त्री ने यह जान लिया, 'यह मुद्रा सूक्ष्म उद्गीत रूपों में गा रहा है।' जब वह राजा के समीप पहुँचा तो राजा ने विशेष और मुद्राएं दीं और मन्त्री जब उनके समीप पुनः पहुंचे तो उन्होंने कहा, "हे ब्रह्मण ब्रहे मन्त्रीगण! किसी दीन को दे दो।" उन्होंने कहा, 'प्रभु! ब्रह्मे! 'दीनं ब्रह्मे'! आप से दीन नहीं है।" उन्होंने, बेटा! देखो यह वाक्य तो उच्चारण कर दिया, परन्तु मनों में यह रही कि 'यह मुद्रा सूक्ष्म है।' वह

राजा के समीप पुनः पहुंचे। उन्होंने कहा, 'प्रभु! यह तो कहता है किसी दीन को दे दो।'

राजा ने विचारा, "यह मुद्रा सूक्ष्म हो सकती है।" राजा उन मुद्राओं को ले करके मानो देखो स्वतः ऋषि के द्वार पर पहुंचे और ऋषि से कहा, "लीजिए भगवन्! यह मेरी सर्वत्र मुद्राएं!" उन्होंने कहा, "राजन्! मैंने कई काल में मन्त्री से भी कहा, आप से भी उच्चारण कर रहा हूँ, यह किसी दीन को दे दो।" राजा ने कहा, "प्रभु! मेरे राष्ट्र में आपसे दीन कोई नहीं है, क्योंकि मेरे राष्ट्र में एक-दूसरे का कोई ऋणी नहीं है। यहाँ प्रातःकालीन् मेरे राष्ट्र में, माता-पिता और पुत्रजन के प्रत्येक गृह में देखो प्रातःकाल देवपूजा होती है। माता-पिता ब्रह्मयाग करते हैं। ब्रह्म का चिन्तन होता है। न तो कोई ब्रह्म का ऋणी है राष्ट्र में और न देवताओं का कोई ऋणी है। क्योंकि देवताजन मेरे शरीरों में भ्रमण करते रहते हैं और शरीरों में भ्रमण करने के पश्चात् बाह्य-जगत् में भी वही देवत्त्व हैं। मानो प्रातःकालीन् ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी, माता-पिता मानो देखो सब याग करते हैं। विद्यालयों में देवपूजा होती रहती है। 'स्वाहा' की ध्वनि आती रहती है प्रातःकालीन् प्रत्येक गृह से। तो मेरे राष्ट्र में कोई दीन नहीं है। कोई एक-दूसरे का ऋणी नहीं है। ऋण को कोई मानव लेना नहीं चाहता, क्योंकि जब ऋणी ही कोई नहीं है तो हे भगवन्! मेरा मनु वंश अक्ष्वाकु के मानो हम पौत्र कहलाते हैं। **हे प्रभु! हमारे यहाँ यह शिक्षा है, राष्ट्रीय प्रणाली में की देखो स्वयं देवता बनना है और प्रजा को देवता बनाना है।**

मानो हम प्रातःकालीन् पंच-यागों का निर्माण करते रहते हैं। मानो देखो, इसीलिए हमारे राष्ट्र में कोई ऋणी नहीं है। कोई दीन नहीं है। तो इसीलिए आप इनको स्वीकार कर लीजिये। आप से दीन कोई नहीं है।'

ऋषि ने कहा, हे राजन्! में ऋणी नहीं हूँ। ''ममब्रहे' मैं दीन भी नहीं हूँ। हे राजन्! मानो मैं तो राजाओं का भी राजा हूँ।'' अब, मुनिवरो! देखो ऋषि ने जब ऐसा कहा तो राजा ने कहा, 'प्रभु! आप राजा हैं तो आप के द्वारा सेना कहाँ है? उन्होंने कहा कि **'ब्रह्मज्ञानी का संसार में कोई शत्रु नहीं हुआ करता है। जो ब्रह्मज्ञानी होता है, आत्मवेत्ता होता है, प्रभु का साक्षात्कार करता है, जो अपने में 'प्रभु का दर्शन' करता है और प्रभु को अपने में और अपने को प्रभु में जो स्वीकार करता है, उसे सेना की आवश्यकता नहीं हुआ करती।** मेरे प्यारे! देखो जब ऋषि से यह कहा गया कि ''महाराज! राष्ट्र को चलाने के लिए गति देने के लिए मानो आपका द्रव्य कहाँ है?' उन्होंने कहा, ''मुझे द्रव्य की कोई आवश्यकता नहीं होती। क्योंकि यदि मुझे आवश्यकता होती है, तो मैं पर्वतों का स्वर्ण बना लेता हूँ। मैं विचारों का पर्वतों का स्वर्ण बना लेता हूँ और वह स्वर्ण मेरे क्रियाकलापों में प्रायः आते रहते हैं।''

राजा को यह विश्वास हो गया कि वास्तव में यह स्वर्ण बना लेता होगा अन्यथा इतने द्रव्य को कौन त्यागता है! मेरे प्यारे! देखो राजा अपने मन्त्रियों के साथ अपने रथ पर विद्यमान हो करके

अयोध्या पुरी को उन्होंने गमन किया और भ्रमण करते हुए अपनी अयोध्या पुरी में आ गये। अयोध्या पुरी में आ करके, बेटा! जब रात्रि का काल हो गया और अपने कक्ष में पहुंचे तो मानो राजा के मन में यह विचार देखो बारम्बार चिन्तन में आता रहा, ''अरे, तुझे तो स्वर्णपति के द्वारा जाना चाहिए और स्वर्ण उससे बनवा लेना चाहिए। तेरा राष्ट्र स्वर्णपति बन जायेगा।'' मुनिवरो! देखो, राजा के मन में जब यह विचार आया तो मध्य रात्रि में अपने आसन् को त्याग करके वह उसी मानो जलाशय के तट पर ऋषि के द्वार पर पहुंचे। ऋषि ने कहा, ''आईये, राजन्!'' बेटा! वह विराजमान हो गये। ऋषि ने कहा, ''कहो, राजन्! कैसे आगमन हुआ?'' उन्होंने कहा, ''प्रभु! में इसलिए आया हूँ, मेरा जो राष्ट्र है, वह स्वर्णपति बन जाना चाहिए। हे प्रभु! मेरी इच्छा यह है कि आप राष्ट्र के लिए कुछ पर्वतों का स्वर्ण बना दीजिये।''

मेरे प्यारे! देखो ऋषि बड़े हर्ष ध्वनि में आ करके बोले, ''राजन्! बोलो दीन तुम हो या मैं हूँ? तुम मेरे द्वार पर मांगने आये हो!'' मेरे प्यारे! देखो राजा ने कहा—''प्रभु दीन तो मैं ही हूँ परन्तु मेरा स्वर्ण बना दीजीये।'' ऋषि ने कहा, ''तुम नित्यप्रति मेरे द्वार पर आते रहो, मैं तुम्हारा स्वर्ण अवश्य ही निर्माणित करूँगा।'' मेरे प्यारे! देखो राजा को नित्यप्रति उनके, ऋषि के आसन पर जाना, आचार्य को अपना गुरूत्व स्वीकार करते हुए, आचार्यत्व स्वीकार करके, बेटा! उनके चरणों में विद्यमान हो जाना। रात्रि-रात्रि मानो ब्रह्मज्ञान में चिन्तन करते हुए हो जाती। ऋषि यही उपदेश देता रहा।

ऋषि कहता है कि "हम अपने को प्रभु में दृष्टिपात् करने वाले बनें। जब प्रभु को अपने में और अपने को प्रभु में दृष्टिपात् कर लेते हैं, तो यह सर्व-जगत् स्वर्णपति बन जाता है। वह स्वर्णपति है संसार में, जिसे मानो किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। जो चिन्ता से रहित है, जो मानवीयत्व और ब्रह्म में सदैव संलग्न रहता है, वही तो मानो देखो स्वर्णपति कहलाता है।" मेरे प्यारे! देखो ऋषि को एक वर्ष हो गया इसी प्रकार का चिन्तन-अध्ययन कराते हुए। अपनेपन का अध्ययन करते रात्रि समय जब निद्रा की गोद में जाते तो मनस्त्व, प्राणत्व मानो इसके ऊपर अध्ययन करते रहते और यह कहते रहते कि सबसे महान् राजा वह है जो अपनी इन्द्रियों पर संयम करने वाला है। जो मन को एक सूत्र में लाने वाला है और इन इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को जान करके, जो याग में हूत करने वाला है। अरे, वही तो सर्वोपरि मानो स्वर्णपति कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो राजा ने एक समय भी नहीं कहा कि 'आप मेरा स्वर्ण निर्माण कर दीजिये।' मेरे प्यारे! कुछ समय के पश्चात् ऋषि ने कहा, "राजन्! आज तुम्हारा वह स्वर्ण बनाना चाहते हैं पर्वतों का, जिससे तुम्हारे राष्ट्र का निर्माण हो जाये, जिससे राष्ट्र तुम्हारा स्वर्णपति बन जाये।" मेरे पुत्रो! देखो उन्होंने कहा, राजा ने कहा, जो मानो देखो मनुवंश में उत्पन्न होने वाले राजा थे, उन्होंने कहा, "ऋषिवर! आपको धन्य है! जो स्वर्ण आप मेरा बनाना चाहते थे, प्रभु! वह मेरा स्वर्ण बन गया है!"

मेरे प्यारे! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने मानो देखो जब यह 'वाक्यं ब्रह्मे' श्रवण किया तो मानो महर्षि विश्वमित्र ने यह वाक्य कहा, "हे प्रभु! आपने तो मुझे मनु वंश के राजा की भांति, मुझे नम्रता का जो उपदेश दिया है, नम्रता की धारा मेरे अन्नर्हृदय में जो प्रवेश हो गयी है, मानो देखो मेरा स्वर्ण बन गया! प्रभु! मैं सर्वत्र मानो देखो ब्रह्मज्ञान में रत होने लगा हूँ! मेरी साधना परिपक्व होने जा रही है!"

मेरे प्यारे! देखो जब महर्षि दिश्वामित्र ने यह वाक्य उच्चारण किया और मनु वंश के राजाओं का वर्णन किया तो, बेटा! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का अन्तुर्हृदय प्रसन्न युक्त हो गया और प्रसन्न हो करके बोले, "धन्य है, 'त्वं ब्रह्मे वृत्तः।' " मेरे प्यारे! देखो ब्रह्मवेत्ता ने कहा, "हे ऋषिवर! तुम मानो देखो नाना प्रकार के याग को जानते हो।" उन्होंने कहा, "प्रभु! में कुछ नहीं जानता।" जब आपके चरणों में विद्यमान होता हूँ तो माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि ही मानो मेरे समक्ष दृष्टिपात् आते रहते हैं। उनके विचारों को मैं उद्‌गार रूप में, अपने में उद्‌गम करने लगता हूँ, विचार-विनिमय करने लगता हूँ। और वही विचार मानो देखो पूर्णिमा के चन्द्रमा की भान्ति मन्थन में ले जाता हूँ। तो प्रायः मुझे मानो देखो ब्रह्म ही ब्रह्म दृष्टिपात् आने लगता है।" तो मानो बेटा! जब ऋषि ने इस प्रकार अपने उद्‌गार प्रगट किये, उन उद्‌गारों में रत होने वाले महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, "धन्य है, ब्रह्म! धन्य है, ऋषिवर! आपका का जो तप है, वह पूर्ण-रूपेण बन गया है! 'धन्यं ब्रहे'!"

ऋषि कहता है कि "हम अपने को प्रभु में दृष्टिपात् करने वाले बनें। जब प्रभु को अपने में और अपने को प्रभु में दृष्टिपात् कर लेते हैं, तो यह सर्व-जगत् स्वर्णपति बन जाता है। वह स्वर्णपति है संसार में, जिसे मानो किसी प्रकार की चिन्ता नहीं होती। जो चिन्ता से रहित है, जो मानवीयत्व और ब्रह्म में सदैव संलग्न रहता है, वही तो मानो देखो स्वर्णपति कहलाता है।" मेरे प्यारे! देखो ऋषि को एक वर्ष हो गया इसी प्रकार का चिन्तन-अध्ययन कराते हुए। अपनेपन का अध्ययन करते रात्रि समय जब निद्रा की गोद में जाते तो मनस्त्व, प्राणत्व मानो इसके ऊपर अध्ययन करते रहते और यह कहते रहते कि सबसे महान् राजा वह है जो अपनी इन्द्रियों पर संयम करने वाला है। जो मन को एक सूत्र में लाने वाला है और इन इन्द्रियों की प्रवृत्तियों को जान करके, जो याग में हूत करने वाला है। अरे, वही तो सर्वोपरि मानो स्वर्णपति कहलाता है। मेरे प्यारे! देखो राजा ने एक समय भी नहीं कहा कि 'आप मेरा स्वर्ण निर्माण कर दीजिये।' मेरे प्यारे! कुछ समय के पश्चात् ऋषि ने कहा, "राजन्! आज तुम्हारा वह स्वर्ण बनाना चाहते हैं पर्वतों का, जिससे तुम्हारे राष्ट्र का निर्माण हो जाये, जिससे राष्ट्र तुम्हारा स्वर्णपति बन जाये।" मेरे पुत्रो! देखो उन्होंने कहा, राजा ने कहा, जो मानो देखो मनुवंश में उत्पन्न होने वाले राजा थे, उन्होंने कहा, "ऋषिवर! आपको धन्य है! जो स्वर्ण आप मेरा बनाना चाहते थे, प्रभु! वह मेरा स्वर्ण बन गया है!"

मेरे प्यारे! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने मानो देखो जब यह 'वाक्यं ब्रह्मे' श्रवण किया तो मानो महर्षि विश्वमित्र ने यह वाक्य कहा, "हे प्रभु! आपने तो मुझे मनु वंश के राजा की भांति, मुझे नम्रता का जो उपदेश दिया है, नम्रता की धारा मेरे अन्तर्हृदय में जो प्रवेश हो गयी है, मानो देखो मेरा स्वर्ण बन गया! प्रभु! मैं सर्वत्र मानो देखो ब्रह्मज्ञान में रत होने लगा हूँ! मेरी साधना परिपक्व होने जा रही है!"

मेरे प्यारे! देखो जब महर्षि विश्वामित्र ने यह वाक्य उच्चारण किया और मनु वंश के राजाओं का वर्णन किया तो, बेटा! देखो महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज का अन्तर्हृदय प्रसन्न युक्त हो गया और प्रसन्न हो करके बोले, "धन्य है, 'त्वं ब्रह्मे वृत्तः।' " मेरे प्यारे! देखो ब्रह्मवेत्ता ने कहा, "हे ऋषिवर! तुम मानो देखो नाना प्रकार के याग को जानते हो।" उन्होंने कहा, "प्रभु! में कुछ नहीं जानता।" जब आपके चरणों में विद्यमान होता हूँ तो माता अरून्धती और वशिष्ठ मुनि ही मानो मेरे समक्ष दृष्टिपात् आते रहते हैं। उनके विचारों को मैं उद्गार रूप में, अपने में उद्गम करने लगता हूँ, विचार-विनिमय करने लगता हूँ। और वही विचार मानो देखो पूर्णिमा के चन्द्रमा की भान्ति मन्थन में ले जाता हूँ। तो प्रायः मुझे मानो देखो ब्रह्म ही ब्रह्म दृष्टिपात् आने लगता है।" तो मानो बेटा! जब ऋषि ने इस प्रकार अपने उद्गार प्रगट किये, उन उद्गारों में रत होने वाले महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने कहा, "धन्य है, ब्रह्म! धन्य है, ऋषिवर! आपका का जो तप है, वह पूर्ण-रूपेण बन गया है! 'धन्यं ब्रहे'!"

ऐसा उच्चारण करने के पश्चात्, बेटा! देखो शान्त मुद्रा में मुद्रित हो गये। रात्रि हो गयी, मध्यरात्रि में, बेटा! विश्रामशाला में मानो विश्राम करने लगे। मानो प्रातःकाल हुआ। प्रातःकालीन् देखो अपनी क्रियाओं से, जो दैनिक क्रियाएं हैं, उनसे निवृत्त हो गये। **ऋषि की दैनिक क्रियाएं ये होती हैं कि प्रातःकालीन् मानो देखो संतोष से अपने को जागरूक करना है। मानो देखो सूर्य उदय होने से पूर्व अपने में मानो प्रभु का स्मरण करना। देव-याग में परिणित हो जाना; देवताओं का स्मरण करना। जो हमारे मानव शरीर में मानो पंच देवता सदैव भ्रमण करते रहते हैं, मानो देखो जिनको पृथ्वी, देखो गुरूत्व, तरलत्व और तेजोमयी यह परमाणुओं का अध्ययन करना और मानो देखो गति देने वाली वायु का अध्ययन करना और जहाँ वह गतिवान होते हैं, अन्तरिक्ष के ऊपर अध्ययन करना। यह मानो देखो अध्ययन करते-करते अपने में प्राण और देखो मन को इसके स्वरूप में दृष्टिपात् करना ही मानो देखो उनकी दैनिक चर्या कहलाती है।** वह दैनिक चर्या में रत हो करके, वह समाप्त हो करके, उसके पश्चात् वह आचार्य के समीप पहुंचे।

विश्वमित्र ने ऋषि से कहा, "प्रभु मेरे सुयोग्य कोई क्रियाकलाप आप वर्णन कीजिये जिससे मैं मानो देखो तुम्हारे चरणों से वृत्त हो करके, प्रभावित हो करके, प्रभु! मैं इस समाज को या संसार को या प्रभु के राष्ट्र में जो हम आये हैं, क्योंकि प्रभु के बड़े आभारी रहते हैं, प्रभु! कोई क्रियाकलाप उच्चारण कीजिये।" मेरे प्यारे!

देखो, इस समय महर्षि वशिष्ठ मुनि महाराज ने जब कई समय हो गये यह उदगार उत्पन्न करते हुए, उद्घोष करते रहे, तो महर्षि विश्वमित्र से एक समय वशिष्ठ ने कहा, "जाओ, यदि तुम देखो मेरी आज्ञा का पालन करना है, तो तुम धनुर्याग जानते हो, जाओ तुम देखो अयोध्या के राजकुमारों को ले करके तुम दण्डकवनों में एक 'धनुर्याग' करो। क्योंकि 'धनुर्याग' करना भी हमारा कर्त्तव्य है, क्योंकि देखो 'राष्ट्रं ब्रह्मे' जिस विद्या को हम ग्रहण किये रहते हैं, वह विद्या राष्ट्रीय भूमि पर हमने ग्रहण की है। परमपिता परमात्मा की छत्र-छाया में मानो उस विद्या का हमें प्रसार करना चाहिए। उस विद्या का हमें उद्घोष करना चाहिए। क्योंकि तुम धनुर्याग जानते हो। तुम राजा थे, तब देखो उसके पश्चात् राष्ट्रीय वातावरण में जो तुम्हारा जीवन रहा है, उसमें सदैव तुम मानो धनुर्यागी बने हो। मुझे प्रतीत है और उसके पश्चात् वह विद्या तुम्हारे समीप है। इस विद्या को तुम मानो देखो अयोध्या का राष्ट्र ऊँचा बनाने के लिए और उसमें आध्यात्मिक और देखो सात्विक वातावरण को प्रसारण करने के लिए तुम्हें 'धनुर्याग' करना होगा।"

मेरे प्यारे! देखो महर्षि विश्वमित्र ने वशिष्ठ की आज्ञा पाई और उन्होंने कहा, "धन्य है, प्रभु! आप जैसा भी मुझे उद्गीत रूपों में गायेंगे अथवा वचन कहोगे मैं उसको स्वीकार करूँगा।" मेरे प्यारे! देखो आध्यात्मिकवादी ब्रह्मवेत्ता बनने के लिए मानव कितना पुरूषार्थ, कितना परिश्रम करता रहता है! **बेटा! आत्म-उन्नति करना, यह मानव का सर्वोपरि मानो एक क्रियाकलाप माना**

गया है। शारीरिक बल हमारा ऊँचा हो तो आध्यात्मिक बल भी ऊँचा होना चाहिए। आध्यात्मिकबल ऊँचा होने से ही मानव देखो ब्रह्मवेत्ता बनता है, ब्रह्म निष्ठ बनता है, नम्रता का स्रोत आ जाता है। परमात्मा का मानो वह एक-एक कण कण में दर्शन करता है।

मेरे प्यारे! ऐसा जो अनूठा विचारक होता है, अपने में विचारों को धारयामी बनाता है, वह महान् बन जाता है। आज मैं, बेटा! विशेष चर्चा नहीं देने आया हूँ, केवल तुम्हें परिचय देने के लिए आया हूँ। और, वह परिचय क्या है? बेटा! जो मैंने तुम्हें आज परिचय दिया है, क्या संसार में, अपने को बनाना है। प्रतिभा को ऊँचा बनाना है। वेद की पवित्र विद्या को ले करके तुम्हें बुद्धिमान देव-पूजा में, मानो संगतिकरणों में तुम्हें परिणित हो जाना है।

तो मेरे प्यारे! देखो, उन्होंने दण्डक वनों में एक याग की रचना की, इसको हमारे यहाँ 'धनुर्याग' कहा जाता है, जिसकी चर्चाएँ, बेटा! मैंने तुम्हें कई काल में वर्णन की हैं, कई कालों में उसका उद्घोष किया है। **धनुर्याग का अभिप्रायः यह है कि देखो ब्रह्मचारियों को धनुर्याग में परिणित कराने का अभिप्रायः यह कि अस्त्रों-शस्त्रों की विद्या का अध्ययन कराना और मानो यन्त्रों का निर्माण करना, लोक-लोकान्तरों में जाना, अपने चित्रों का विज्ञान से दर्शन करना। उन चित्रों को मानो देखो अन्तरिक्ष में द्यौ-लोक में जाते हुए दृष्टिपात् करने का नाम, बेटा! धनुर्याग कहा जाता है।** धनुर्याग का अभिप्रायः यही

है, जो बेटा! देखो महर्षि विश्वामत्रि के संरक्षण में देखो हमारे यहाँ भगवान राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न, भरत इत्यादि सभी ने, बेटा! देखो उनके यहाँ धनुर्याग की शिक्षा को प्राप्त किया था। यह विद्यालय मानो दण्डक वनों में था।

बेटा! मुझे समय मिलेगा मैं प्रायः यह चर्चा तो किसी काल में करूँगा। आज का विचार तो केवल यह है कि आज हम परमपिता परमात्मा की आराधना करते हुए देव की महिमा का गुण-गान गाते हुए इस संसार-सागर से पार हो जायें। यह संसार ऐसा विचित्र है; **इस संसार को जानना, मानो इसमें प्रभु का दर्शन करना है। मेरे प्यारे! देखो यह ब्रह्माण्ड उस प्रभु का आयतन है, उसका गृह है, उसका सदन है। मानो वही सर्वज्ञता में वास करने वाला है। मेरे प्यारे! देखो परमपिता परमात्मा व्याप्त और व्यापक रूप से रहने वाला है। बेटा! व्यापकता का दर्शन, केवल प्रभु का होता है।**

तो यह है, बेटा! आज का वाक्य, आज के वाक्य उच्चारण करने का अभिप्रायः यह कि हमारे यहाँ आध्यात्मिकवाद, बेटा! देखो व्यष्टि से समष्टि में प्रवेश कराता रहा है। व्यष्टि से समष्टि में और समष्टि से मानो देखो प्रभु का और आत्मा का दर्शन करना। आत्मा का दर्शन यही है कि जब समष्टि में प्रवेश कर जाता है तो मनस्त्व और प्राणत्व दोनों को एक सूत्र में लाना। ये दोनों एक ही सूत्र के मनके हैं।

०८-०३-१९८८
गंगा नगर, राजस्थान

ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी के प्रवचनों से प्रकाशित पुस्तकें

क्रम	पुस्तक	मूल्य
१.	आत्म लोक	२५ रुपये
२.	आत्मा व योग साधना	
३.	अलङ्कार व्याख्या	३० रुपये
४.	यज्ञ प्रसाद अर्थात यज्ञ का महत्त्व	१६ रुपये
५.	धर्म का मर्म	१५ रुपये
६.	देवपूजा	१८ रुपये
७.	दिव्य राम कथा	७० रुपये
८.	महाभारत के रहस्य	१५ रुपये
६.	महाराजा रघु का याग	२० रुपये
१०.	मोक्ष प्राप्ति का मार्ग	२८ रुपये
११.	वनस्पति से दीर्घ आयु	२० रुपये
१२.	चित्त की वृत्तियों का निरोध	२५ रुपये
१३.	आत्मा, प्राण और योग	२० रुपये
१४.	पञ्च महायज्ञ	२० रुपये
१५.	अश्वमेध याग और चन्द्रसूक्त	३० रुपये
१६.	याग-मञ्जूषा	२५ रुपये
१७.	आत्म-दर्शन	२५ रुपये
१८.	पुत्रेष्टि-याग और मातृ-दर्शन	२५ रुपये
१६.	वैदिक प्रवचन (पुष्प ६२ तक)	प्रत्येक ७ रुपये
२०.	यौगिक प्रवचन माला (भाग १,२,३,४,५)	प्रत्येक ४० रुपये
२१.	शंका निवारण	—
२२.	वेद पारायण यज्ञ का विधि विधान	२५ रुपये
२३.	रावण इतिहास	३५ रुपये
२४.	याग और तपस्या	३५ रुपये
२५.	यज्ञ एवम् औषधि विज्ञान	३५ रुपये
२६.	यागमयी साधना	२५ रुपये
२७.	यागमयी सृष्टि	२५ रुपये
२८.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग 1)	१०० रुपये
२६.	अतीत का दिग्दर्शन (भाग २, ३)	—
३०.	Wisdom of the Ancient Rishies	

पूज्यपाद गुरूदेव ब्रह्मर्षि कृष्णदत्त जी महाराज